Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री क्षितीश वेदालंकार

राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८९
९२

6558

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 40-100 6558

R 4y-100

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 029/92 आगत संख्या 6558

पुस्तक— वितरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब—दण्ड लगेगा ।

18 DEC 1993 22 MAR 1991

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा

6558

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्श मण्डल

* क्षेमचन्द्र 'सुमन'
* जयप्रकाश भारती
* मोहनराज भण्डारी
* प्रो. धर्मवीर
* नवीन कुमार शर्मा
* डा. वेदप्रताप वैदिक
* धर्मवीर एम. ए.
* अनिल लोढ़ा
* वासुदेव शास्त्री
* डा. श्यामसिंह शशि
* डा. धर्मपाल
* डा. बाबूराम शास्त्री
* रासासिंह

•

ऐसा है मेरा मान्य मित्र !

प्यार का पुतला, अपनी धुन का धनी,
बात का सच्चा, ज्ञान का भण्डार।
वेद का भक्त, ईश विश्वासी,
और दयानन्द का सिपह सालार।
बोलने में जुबां का जादूगर,
और लिखने में काव्य का शृङ्गार।
आर्य जाति का दर्द सीने में,
देश के ग़म में वेदना साकार।
तोड़ता है विरोधियों का अहम्,
लेखनी है कि हाथ में तलवार।
धर्म, साहित्य, राजनीति का,
मार्मिक ज्ञाता, पारखी, अंगार।
हृदयबुद्धि का इक समन्वित रूप,
जिस की प्रतिभा में नित नवीन निखार।
ऐसा है मेरा मित्र मान्य क्षितीश,
जो तेहत्तर को कर गया है पार।
"दोस्त ! जीते रहो हज़ार बरस,
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार।"

—उत्तमचन्द 'शरर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा

6558

लब्ध-प्रतिष्ठ, बहुमुखी प्रतिभा के धनी राष्ट्रीय पत्रकार श्री क्षितीश वेदालंकार के 74वें जन्म दिवस के अवसर पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचयात्मक प्रस्तुतीकरण

सम्पादक
वीरेन्द्र कुमार आर्य

नया युगपुरुष, अजमेर-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Rastriya Patrakarita ke Purodha

Edited by

Verendra Kumar Arya

Rs. 125.00

मूल्य : एक सौ पच्चीस रुपये/प्रथम संस्करण
1989/प्रकाशक : नया युगपुरुष, केसरगंज, अजमेर
मुद्रक : श्री आर्य प्रिन्टर्स, अजमेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मेरे प्रेरणा-स्रोत, मेरे मार्ग दर्शक ! :	1	: वीरेन्द्र कुमार आर्य
निर्भीकता एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति :	3	: स्वामी सर्वानन्द सरस्वती
मेरे क्षितीश-हीरे हो, किन्तु कीचड़ में फंसे ! :	3	: स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती
शतवर्षी हों श्री क्षितीश जी :	4	: स्वामी आनन्द बोध सरस्वती
यशस्वी जीवन के धनी :	5	: स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती
एक समाजसेवी एवं स्नेही मित्र :	6	: विष्णु प्रभाकर
पत्र बोलते हैं ! :	6	: क्षितीश जी के पत्र
विलक्षण प्रतिभा के धनी :	10	: शिवकुमार शास्त्री
एक साहित्यधर्मी मित्र :	11	: गोपाल प्रसाद व्यास
प्रतिभा सम्पन्न पत्रकार :	12	: डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय
एक खरा व्यक्तित्व—भाई श्री क्षितीश जी :	16	: मोहनराज भण्डारी
एक निष्काम कर्मयोगी :	18	: सुभाष विद्यालंकार
श्री क्षितीश जी—सर्मपित और बहु आयामी व्यक्तित्व :	20	: देव कृष्ण व्यास
एक राष्ट्रवादी चिंतक और मूकसाधक :	23	: वीरेन्द्रसिंह पमार
श्री क्षितीश वेदालंकार के प्रति कुछ उद्गार :	27	: बलराज मधोक
पत्रकार शिरोमणि क्षितीश जी—कुछ संस्मरण :	28	: डॉ भवानीलाल भारतीय
भाई क्षितीश जी ! :	29	: नरेन्द्र विद्यावाचस्पति
निर्भीक पत्रकार-क्षितीश वेदालंकार :	32	: सरल कुमार
ते नरवर थोरे जगमांही :	35	: अशोक कौशिक
साहित्य और सिद्धांत के महान् साधक भाई क्षितीश जी :	46	: डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाबहार व्यक्तित्व के धनी
क्षितीश भाई : 50 : क्षेमचन्द्र 'सुमन'
उनका सबसे बड़ा दुर्गुण : 54 : गोविन्द प्रसाद केजरीवाल
तन से क्षीण, मन से पीन : 56 : ब्रह्मदत्त स्नातक
मैंने उनका नाम और यश
खूब भुनाया : 57 : दत्तात्रेय तिवारी
लगन के धनी क्षितीश जी : 65 : गंगाधर इंदूरकर
वे राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते हैं : 68 : शिवकुमार गोयल
राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा : 70 : जयप्रकाश भारती
अमृतवर्षी भ्राता : 72 : डॉ. श्यामसिंह शशि
गुण-कर्म दोनों से पण्डित : 76 : आनन्द प्रकाश राजवंशी
अथक समाजसेवी क्षितीश जी : 78 : विराज
बहुमुखी प्रतिभा के धनी होकर भी
इतने सरल : 80 : नरेन्द्र कुमार 'आलोक'
सम्पादक-शिरोमणि क्षितीश जी : 84 : सत्यप्रिय शास्त्री
श्री क्षितीश वेदालंकार—एक बहुमुखी
व्यक्तित्व : 88 : सच्चिदानन्द शास्त्री
पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार : 90 : डॉ. धर्मपाल
लेखनी और वाणी के धनी—
क्षितीश जी : 93 : मूलचन्द गुप्त
वेद पथानुयायी होने का लाभ : 95 : मनोहर विद्यालंकार
चरित्र बल : 99 : उत्तमचन्द 'शरर'
ईश क्षितेर्नो मनस : क्षितीशः : 100 : धर्मवीर शास्त्री
सादर तुम्हें प्रणाम : 102 : कुसुम विद्यारत्न
मेरे सहपाठी-निर्भीक पत्रकार और
ओजस्वी वक्ता : 106 : धीरेन्द्र कुमार विद्यालंकार
निश्छल समाज सेवी पत्रकार : 109 : श्रीमती डॉ. कुमुद सक्सेना
मेरे अजस्र प्रेरणापुन्ज : 110 : डॉ. वेदव्रत 'आलोक'
सहृदय और साहसी मेरे पिताश्री : 119 : श्रीमती विश्ववारा

पत्रकार के रूप में

मेरी पत्रकारिता : 129 : क्षितीश वेदालंकार
संपादकीय पृष्ठ : 147 : क्षितीश वेदालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार के रूप में

जब मैंने वैरियर एल्विन का पीछा किया : 169 : क्षितीश वेदालंकार
मिटी धुंद, जग चानन होया : 182 : क्षितीश वेदालंकार
तू मेरी राधा, मैं तेरा कृष्ण : 195 : क्षितीश वेदालंकार
कोयल से चमगादड़ तक : 205 : क्षितीश वेदालंकार
श्री कृष्ण की द्वारका : 209 : क्षितीश वेदालंकार

परिशिष्ट

वंशावलि : 217 : —
जीवन परिचय : 218 :
रचित और सम्पादित कृतियों का संक्षिप्त परिचय : 220 : डॉ. वेदव्रत 'आलोक'
उपाधि और सम्मान : 225 : —
सामाजिक कार्य : 226 : —
यात्राएं : 226 : —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

मेरे प्रेरणा-स्रोत, मेरे मार्ग-दर्शक !

श्री क्षितीश वेदालंकार की मेरे पत्रकार जीवन में विशेष भूमिका रही है। वस्तुत: पत्रकारिता के क्षेत्र में मुझे लाने के पीछे उन्हीं की प्रेरणा रही है और आज इस क्षेत्र में मेरा जो कुछ भी स्थान है, वह सब उन्हीं की प्रेरणा और मार्गदर्शन का परिणाम है।

मैं क्षितीश जी के लेख, जब से मैंने होश संभाला, तभी से पढ़ता आ रहा हूं। स्वाध्यायी आर्यसमाजी पिता के पुस्तकालय में आने वाली पत्र-पत्रिकाओं में मैं सबसे पहले इन्हीं के लेख को पढ़ता था। बाद में इनकी लेखनी का यही आकर्षण मुझे पत्रकारिता के क्षेत्र में भी ले आया। न मैं उनके लेख पढ़ता, न मेरी पत्रकारिता में रुचि होती।

पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश करने के प्रथम दिन से ही क्षितीश जी का मुझ पर वरद हस्त रहा है। मेरे तीन-चार वर्ष के सक्रिय पत्रकार जीवन में जब-जब भी मेरे सामने कोई कठिनाई आई तो उन्होंने आगे बढ़कर मेरा मार्गदर्शन किया और उससे मुझे बाहर निकाला है। कई बार अत्यन्त विषम परिस्थितियों में उन्होंने उदारतापूर्वक मुझे संकट से उबारा है। उनके मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति के प्रति इस स्नेहभाव को देखकर अनेक लोगों को मुझसे ईर्ष्या होनी स्वाभाविक ही है। आखिर ऐसे महापुरुषों का ऐसा स्नेह सबको कहाँ मिलता है।

पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में श्रद्धेय क्षितीश जी का स्थान बहुत ऊंचा है। साहित्य की अनेक विधाओं में उन्होंने लिखा है और वह सारा का सारा उल्लेखनीय है। पर्यटन, इतिहास, पुरातत्त्व आदि विषयों पर उन्होंने जो कुछ लिखा वह उपेक्षणीय नहीं है। व्यंग्य लेखन में भी वे सिद्धहस्त हैं। ललित निबन्ध के लेखन में तो वे मुझे अद्वितीय लगते हैं। इसके अतिरिक्त 'स्वेतलाना' नाम का एक उपन्यास भी उन्होंने लिखा है जो लोकप्रियता की चरम सीमा छू गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब पर लिखी क्षितीश जी की पुस्तक "तूफान के दौर से पंजाब" ने तो उन्हें देश के मूर्धन्य पत्रकारों की अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया है। इस दौर में पंजाब समस्या पर लिखी गई सभी पुस्तकों में उनकी पुस्तक सबसे श्रेष्ठ है और समस्या का वैसा विशद विवेचन किसी अन्य पुस्तक में नहीं मिलता।

दैनिक हिन्दुस्तान में लम्बे समय तक कार्य करने और उससे अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त क्षितीश जी ने साप्ताहिक "आर्यजगत्" का सम्पादन भार संभाला। अपने दस वर्ष के इस अवकाशोत्तर सम्पादन काल में इस लड़खड़ाते पत्र को उन्होंने आज आर्यसमाज का सबसे लोकप्रिय पत्र बना दिया है। आर्यसमाजी क्षेत्र से बाहर के लोगों में भी इसका सम्मानजनक स्थान है। आर्यसमाजी समाचार-पत्रों के इतिहास में यह अपने आप में एक उदाहरण है।

क्षितीश जी मेरे गुरु हैं, मार्गदर्शक हैं, जहां इस बात से मुझे गर्व का अनुभव होता है, वहीं एक दायित्व बोध भी मुझे घेरता है। यह दायित्व बोध मुझे निरन्तर प्रेरणा देता है कि मैं एक मूर्धन्य पत्रकार का शिष्य हूं, स्नेह-भाजन हूं और उनके इस स्नेह की लाज रखना मेरा कर्त्तव्य है।

क्षितीश जी सितम्बर, 89 में अपने जीवन के 74 वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस अवसर पर मैं यही कामना कर सकता हूं कि वे स्वस्थ एवं दीर्घ सुखी जीवन जीते हुए मुझे इसी प्रकार अपने आशीर्वाद का पात्र बनाए रखें।

—वीरेन्द्र कुमार आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भीकता एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति

—स्वामी सर्वानन्द सरस्वती,
अध्यक्ष यति मंडल

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि श्री पं. क्षितीश वेदालंकार जी का चौहत्तरवां जन्म दिवस मना रहे हैं। आर्य जगत में श्री वेदालंकार जी का सम्पादकीय पढ़ने को मिलता है, जो इनके धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, लोक व्यवहार के विस्तृत, गहन ज्ञान का परिचायक होता है। दो वर्ष पूर्व आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के उत्सव पर हम साथ-साथ रहे, उसके पश्चात् दो-तीन वार पत्र व्यवहार भी हुआ, जिससे पता चला कि अन्य गुणों के साथ-साथ श्री वेदालंकार जी में निर्भीकता, सौजन्य तथा शिष्टता का गुण भी वहुत ऊँचे स्तर का है तथा किसी भाव को व्यक्त करने, किसी बात का वर्णन करने की एक बड़ी अद्भुत शक्ति आपको प्रभु ने दी है। आप जहां उच्च कोटि के वक्ता हैं वहां एक सच्चे निर्भीक प्रहरी सम्पादक भी हैं। महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों पर इनकी अगाध श्रद्धा है। वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार में ही अपना जीवन लगाया है। सर्व शक्तिमान ईश्वर से प्रार्थना है कि सौ वर्ष की आयु से भी अधिक समय तक इनका इसी प्रकार जन्म दिवस मनाया जाता रहे।

—दयानन्दमठ, दीनानगर

मेरे क्षितीश-हीरे हो, किन्तु कीचड़ में फंसे !

—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती
पूर्व अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

क्षितीश जी के 74 वें जन्म दिवस पर बहुत-बहुत आशीर्वाद–मुझसे 11 वर्ष छोटे हैं। "आर्य जगत्" के यशस्वी सम्पादक हैं– जब-जब दिल्ली रहता हूं– आर्य समाज मन्दिर मार्ग में, प्रतिदिन उनसे मिलने की उत्सुकता होती है। वे एक अजीब विचारधारा के पोषक हैं– जिसे हिन्दुत्व की विचार-धारा कहा जाता है– जिसे समन्वय-भावना का नाम दिया गया है– हिन्दुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रत्येक सम्प्रदाय के साथ– उनकी सभी रूढ़िवादिताओं के साथ– पर, यह समन्वय ईसाईयों और मुसलमानों के साथ नहीं। "अनेकता में एकता"– पर इस अनेकता में मुसलमानों और ईसाइयों के विचार समन्वित नहीं हैं।

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की विचारधारा में असत्य, रूढ़ि, और अन्धविश्वास के साथ किसी समन्वय का प्रश्न उठता ही नहीं।

अगर क्षितीश जी की विचारधारा का क्षितिज कुछ और ऊँचा उठ जाय तो उनकी लेखनी में चार चाँद लग जाएं। क्षितीश जी कभी-कभी हिन्दू, इन्दु और चन्द्र– सब शब्दों को समन्वित करना चाहते हैं। वस्तुत: चन्द्रवंशी वह है, जो चन्द्र की गति के आधार पर सम्वत्सर की गणना करे। दर्शपौर्णमास की गणना में ऋतुओं की अनुकूलता नहीं रहती। और सूर्य के आधार पर की गयी गणना में पूर्णमासी एवं अमावस्या का मेल नहीं बैठता।

क्षितीश जी का अनुभव विभिन्न क्षेत्रों में बड़ा परिष्कृत है, उनकी पैनी सूझ राजनीतिक समस्याओं के प्रति भी अनोखी है।

"प्रेमचन्द" जी को लेखनी का धनी माना जाता था—क्षितीश जी भी लेखनी के धनी हैं। मुझे भी गर्व है, कि मेरा निकट का परिचय इस अद्भुत व्यक्ति से है, जिसे अवसर मिले तो संस्कृत में बोल भी सकता है, लिख भी सकता है,– केवल ऊपर से ही संस्कृत का पोषक नहीं है।

और क्या आशीर्वाद दूं, जिनसे इतनी "आत्मीयता" हो गयी हो— उनके लिए "आशीर्वाद" शब्द का कोई अर्थ नहीं। जन्मदिवस तो अभी बहुत बार क्षितीश जी के जीवन में स्वाभाविक रूप से आवेंगे।

—मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली

शतवर्षी हों श्री क्षितीश जी

– स्वामी आनन्दबोध सरस्वती
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्री क्षितीश वेदालंकार गुरुकुल कांगड़ी के उदीयमान स्नातक रहे हैं। संस्कृत के वह प्रकाण्ड विद्वान हैं। वेद आदि शास्त्रों पर वह अधिकार पूर्वक खोजपूर्ण भाषण देते हैं।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह 1939 में वह गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के साथ प्रथम जत्थे में वहां गए थे। उनकी आयु उस समय बहुत छोटी थी। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय निजाम सरकार के अत्याचारों को निजाम की जेलों में स्वयं रहकर देखा था। जिसका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक निजाम की जेल में विस्तार से किया है।

गुरुकुल के स्नातक बनने के उपरान्त उन्होंने दैनिक हिन्दुस्तान के संपादकीय विभाग में काम किया। पिछले 50 वर्षों में गुरुकुल कांगड़ी ने देश को अनेक ऐसे विद्वान दिए हैं जो संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के मूर्धन्य विद्वानों में स्थान प्राप्त कर चुके हैं। क्षितीश जी भी वेद विद्या में महर्षि दयानन्द व आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रति गूढ़ आस्था व निष्ठा के लिए समर्पित व्यक्ति हैं। उनकी भावनाएं उनके भाषणों से जनता पर स्वयं अभिव्यक्त हो जाती है। वह भारत के उन सपूतों में हैं, जो देश की एकता, अखण्डता व स्वतंत्रता के लिए सब प्रकार के बलिदान के लिए तैयार रहते हैं। वैदिक धर्म व हिन्दू समाज के लिए वह समर्पित श्रद्धालु हैं। हिन्दू जाति पर जब जब संकट आए उनकी लेखनी ने सदैव आगे बढ़कर काम किया है। आतंकवादियों से पंजाब जब हिल रहा था, तो क्षितीश जी ने हिन्दी और अंग्रेजी में "दहकता पंजाब" और 'स्टोर्म इन पंजाब', दो उल्लेखनीय ग्रन्थों की रचना की जिसका धार्मिक व राजनीतिक जगत् सदैव आदर करेगा।

क्षितीश जैसे प्रखर वैदिक विद्वान और भारत के सपूत पर राष्ट्र व आर्य समाज को बड़ा गर्व है। उनके 74 वें जन्म दिवस पर उन्हें बधाई देते हुए उनकी शतायु के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।

यशस्वी जीवन के धनी

—स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती

बड़ी प्रसन्नता है कि प्रसिद्ध आर्य पत्रकार श्री पं. क्षितीश वेदालंकार पर आप 'नया युगपुरुष' का विशेषांक निकाल रहे हैं। श्री क्षितीश जी का सम्मान करना सर्वथा उपयुक्त है। आपके इस प्रयास के लिए मैं आपको बधाई देता हूं।

उनके यशस्वी जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानने की मुझे भी अभिलाषा है। आप जो सामग्री प्रकाशित करेंगे उससे मेरी ज्ञान वृद्धि होगी, अतः प्रकाशन की प्रतीक्षा रहेगी।

—दयानन्द मठ, चम्बा (हि. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समाजसेवी एवं स्नेही मित्र

— विष्णु प्रभाकर
प्रख्यात साहित्यकार

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपकी पत्रिका बन्धुवर श्री क्षितीश वेदालंकार के 74वें जन्म दिवस के अवसर पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रही है। मेरी हार्दिक कामनाएं इसकी सफलता के लिए। मुझे विश्वास है कि यह विशेषांक क्षितीश जी की प्रतिष्ठा के अनुरूप होगा।

वे कर्मठ व्यक्ति, कुशल वक्ता और स्नेही मित्र हैं। वे सदा देश और समाज की उन्नति के प्रति समर्पित रहते हैं। मैं उनकी दीर्घ आयु की कामना करता हूं। चाहता हूं कि जीवन के अन्तिम क्षण तक वे इसी प्रकार अपने पथ पर अग्रसर होते रहें। जो चलता रहता है वही सतयुग में रहता है।

एक बार फिर हार्दिक शुभकामनाएं।

—818, कुण्डेवालान,
अजमेरी गेट, दिल्ली

पत्र बोलते हैं !

"सुपर्ण"
4-6-87

प्रियवर वीरेन्द्र,

चिरंजीव।

...... भाषा की शुद्धि के सम्बन्ध में तुम्हारी यह जागरूकता मुझे बहुत अच्छी लगी जबकि आधुनिक युवा लेखक इस प्रकार की कोई चिन्ता नहीं करते।

...... बंगला भाषा के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने एक बार अपने किसी साहित्यकार मित्र से पत्र लिखकर पूछा था कि 'अंगुलि' शब्द में 'इ' की मात्रा छोटी होनी चाहिए या बड़ी होनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। पुराने धुरन्धर लेखक तो भाषा की शुद्धि के सम्बन्ध में इतना ध्यान रखते थे, परन्तु आजकल के लेखक ?

तुम स्वस्थ और सानन्द होगे।

* * *

24-9-87

तुमने जो पत्रकारिता की लाइन चुनी है, यह तुम्हारा स्वेच्छा से स्वीकृत मार्ग है। इसलिए बाद में आने वाली कठिनाइयों को भी उसी उत्साह से सहना होगा। आर्य नेताओं की मनोवृत्ति किस प्रकार किसी भी स्वाभिमानी युवक को हतोत्साहित करने वाली होती है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। साथ ही यह भी जानता हूं कि किसी भी मंजिल तक पहुंचने के लिए कोई शार्ट कट नहीं होता। संगी-साथी हौसला ही बंधा सकते हैं। परन्तु मंजिल तक आगे बढ़ने वाले पांव तो अपने ही होते हैं। तुम जिस उत्साह से कार्य में लगे हो वही निरन्तर तुम्हारे लिए दीपशिखा का काम करेगा। ऐसे गतिशील पांवों को सभी का आशीर्वाद होता है, तो फिर मेरा क्यों नहीं होगा। चरैवेति चरैवेति।

तुम सदा स्वस्थ प्रसन्न रहो और अपने मिशन में सफल होवो यही कामना करता हूं।

* * *

14-4-88

चिरकाल के पश्चात् तुम्हारा पत्र मिला। मिलने का प्रोग्राम बनाते-बनाते भी बीच में बाधाएं आती रहीं—आजकल के जीवनक्रम के लिए यह अत्यन्त सामान्य और स्वाभाविक बात है। पिछले दिनों नया युगपुरुष 'तुम्हारे' सम्पादकत्व में निकलने की सूचना मिली थी, उससे और भी प्रसन्नता हुई थी। निःसन्देह तुम्हारे जैसे कर्मठ व्यक्ति के लिए इस मूषिकांजलि से काम नहीं चलता ....

दिल्ली कब आ रहे हो ?

* * *

2-5-88

तुम्हारा 25 अप्रैल का पत्र मिला। तुमने ......को प्रार्थना पत्र पुनः भेज दिया, यह अच्छा किया। अब इस विषय को प्रभु के भरोसे छोड़ दो। इसी में सुख है। निःसन्देह भविष्य में ऐसे अनेक अवसर आएंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम मई मास में दिल्ली आ रहे हो—यह जानकर प्रसन्नता हुई। बाहर कहीं नहीं जा रहा हूं।........

'नया युगपुरुष' भी मिला है। सभी विधाओं में लिखने का अभ्यास रहे तो अच्छा है। पत्रकारिता तो साहित्य का केवल एक अंग है।

तुम स्वस्थ प्रसन्न होगे।

* * *

11-6-88

........मैंने तुम्हें अनावश्यक रूप से झंझट में फंसा दिया। पर मेरे पास कोई और चारा भी नहीं था। जब मैं खुद झंझट में फंसा हूं तो तुम कैसे बचते। मित्रों और प्रियजनों के सहयोग से ही भार हलका हो सकता है।

मैं सोचता था—मई में तुम आओगे। पर मई गई, अब जून भून रही है। प्रियजनों का शुभ समाचार ही निदाघ ताप में हल्की फुहार बनकर आता है।

'नया युगपुरुष' भी आ रहा है। तुम्हारी कारस्तानी देख रहा हूं। जनता में इसका कैसा आदर है?

* * *

20-7-88

......मैं 1 जुलाई को तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करता रहा परन्तु निराशा ही हाथ लगी। उससे पहले भी जब तुम आए थे उस दिन जल्दबाजी में तुम्हारा कुछ आतिथ्य न कर सका, इसका मुझे अत्यन्त खेद है।

* * *

23-9-88

तुम बाजी मार गए। 16 सितम्बर को रात को ग्यारह बजे तुम्हारा बधाई का तार मिला। यह तुम्हारी जागरूकता और स्नेह का परिचायक है। तुम सदा स्वस्थ प्रसन्न रहो और अपने मिशन में लगातार प्रगति करते रहो, अपने तिहत्तरवें जन्म दिवस की बधाई के उत्तर में मेरी परमात्मा से यही प्रार्थना है।

* * *

29-9-88

.......तुमने एक उपयोगी परिचर्चा प्रारम्भ की है। आशा है, अन्य अनुभवी पत्रकार भी इस विषय पर अपने विचार देंगे।

समाचार-पत्र को धर्मोपदेष्टा नहीं बनाया जा सकता। वह उसका क्षेत्र नहीं है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसे कामशास्त्र का पन्ना बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाए। लोकप्रियता पाने के लिए न जाने लोग क्या-क्या पापड़ बेलते हैं। समाचार-पत्र की जिम्मेवारी जनता के प्रति पहले है, पत्र-स्वामी के प्रति पीछे। पर जनता के पीछे चलना उद्देश्य नहीं, उसे सही मार्ग पर चलाना उद्देश्य है। सात्विक भोजन का स्वादिष्ट होना भी उतना ही आवश्यक है, अन्यथा कोई खाने के लिए लालायित ही नहीं होगा।

* * *

31-10-88

दीपावली की बहुत-बहुत बधाई। तुम सदा स्वस्थ और सुखी रहो और जीवन में निरन्तर प्रगति करते रहो।

* * *

2-2-89

.......'ओ, मेरे राजहंस' पुस्तक तुम्हें मिल गई, कई दिनों तक तुम्हारा उत्तर न आने से मुझे चिन्ता हुई कि कहीं गुम न हो गई हो, क्योंकि रजिस्ट्री के बाद भी पुस्तकों का गुम हो जाना आजकल नितांत संभव है।

तुमने जिन तीन शब्दों के बारे में पूछा है उनके सम्बन्ध में तुम्हारी शंका तो ठीक है, परन्तु हिन्दीभाषियों में अन्त: और अन्तर—इन दोनों शब्दों में भेद न समझने से यह घपला हुआ है। अधिकांश लोग दोनों को एक ही समझते हैं और समानार्थक मानते हैं, जबकि वस्तुत: दोनों सर्वथा भिन्न शब्द हैं।.... वैसे भी जब कोई गलत चीज आम जनता में प्रचलित हो जाती है तब स्वयं व्याकरणकारों ने भी उसकी स्वीकृति की छूट की है। उसमें तर्क यही है कि लोक अर्थात् आम जनता विज्ञ जनों से कहीं अधिक बलवान् होती है। एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि हिन्दी अपने आप में स्वतन्त्र और समर्थ भाषा है, इसलिए संस्कृत के व्याकरण के अन्धानुकरण के लिए उसे बाधित नहीं किया जा सकता। आखिर स्वतन्त्रता में गलती करने का अधिकार भी तो कहीं न कहीं छिपा हुआ है।

* * *

23-3-89

तुम्हारा 11 मार्च का पत्र मिला था। मैं 18, 19 मार्च को तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करता रहा तुम नहीं आ पाए। नाराजगी की कोई बात नहीं है। ....

तुम स्वस्थ प्रसन्न होगे। होली की बधाई।

शुभाकांक्षी

(क्षितीश वेदालंकार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलक्षण प्रतिभा के धनी

श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार

—शिवकुमार शास्त्री

काव्य-व्याकरण तीर्थ, पूर्व सदस्य, लोकसभा

श्री क्षितीश जी को अब से लगभग 49 वर्ष पूर्व आर्यसमाज मशीन मुहल्ला जेहलम (वर्तमान पाकिस्तान) में मैंने सर्वप्रथम देखा था। उन दिनों मैं गुरुकुल धाम जेहलम में मुख्याध्यापक था। उस उत्सव में अनेक विद्वान् और वयोवृद्ध वक्ता पधारे थे। किन्तु उत्सव में मुख्य आकर्षण के केन्द्र क्षितीश कुमार जी थे। मेरे लिए विशेष रूप में, क्योंकि एक तो हम दोनों समवयस्क थे, उनका 74वां जन्मदिवस आ रहा है और मेरा 15 अक्टूबर को 75वां जन्म दिन है। इसके अतिरिक्त पारस्परिक आकर्षण का कारण तो अनिर्वचनीय होता है। संस्कृत के महाकवि भवभूति के शब्दों में, **"व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः"** मनुष्य से मनुष्य को जोड़ने वाला तो कोई आन्तरिक कारण होता है। किसी उर्दू के शायर के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं, आदमी आदमी से मिलता है। दिल मगर किसी से कम मिलता है।

इसके पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के वेद प्रचाराधिष्ठाता श्री पं. यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार के विशेष अनुरोध पर मैं भी 1 जनवरी सन् 1945 को पंजाब सभा में महोपदेशक होकर आ गया। फिर तो हम दोनों ही पंजाब, फ्रण्टियर और क्वेटा ब्लोचिस्तान तक साथ-साथ वर्षों घूमते रहे।

पाकिस्तान बनने के बाद हमारी जीवनधारायें विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो गयीं। श्री क्षितीश जी दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादकीय विभाग में चले गये और मुझे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने दिल्ली का वेद प्रचाराधिष्ठाता बनाकर भेज दिया। दिल्ली में रहने के कारण हमारा मिलना जुलना भी निर्बाध रूप से चलता रहा। 'हिन्दुस्तान' दैनिक से सेवा निवृत्त होने पर मेरी प्रेरणा पर ही श्री रामनाथ सहगल और उनके सहयोगी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के अधिकारी सभा के मुख पत्र 'आर्य जगत्' के सम्पादनार्थ उन्हें अनुरोध पूर्वक ले आये और यहां उनका आना **'रत्नं समागच्छतु कांचनेन'** 'अंगूठी में नग' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला हुआ।

श्री क्षितीश जी विलक्षण प्रतिभा के स्वामी हैं। उन्होंने गम्भीर विद्वत्ता और गहरी पेठ के परिचायक अनेक ग्रंथ हिन्दी और अंग्रेजी में लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। हां, बेचारी संस्कृत अभी तक उनकी प्रतिभा की ओर टकटकी लगाये बैठी है। सभा और विद्वद्-गोष्ठी प्रसंगों में वे अवश्य संस्कृत के ऋण को चुकाते रहते हैं।

श्री क्षितीश जी भाषण और लेखन में अनोखी सूझ रखते हैं। हैदराबाद के सत्याग्रह पर 'निजाम की जेल में' और सिखों के सम्बन्ध में 'पंजाब तूफान के दौर से' उनके ग्रन्थ अद्वितीय हैं। 'आर्य जगत्' में उनके सम्पादकीय अच्छे-अच्छे दैनिकों से भी उत्कृष्ट और जानदार होते हैं। हाल में ही नेपाल के ऊपर जो सम्पादकीय उन्होंने लिखा, वैसा किसी भी हिन्दी दैनिक में नहीं लिखा गया।

अब क्षितीश जी भी वार्धक्य के घेरे में आ रहे हैं। यद्यपि अब भी वे 'आर्य जगत्' के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं और स्मारिकाओं के सम्पादन का इतना काम करते हैं कि उन पर ज़फ़र का यह शेर पूर्णतया चरितार्थ होता है—

ज़फर इस आलमे पीरी में तेरे वो इरादे हैं
कि जिनमें थक के रह जाती जवानों की जवानी है।

मैं उनके 74वें जन्म दिवस पर उनके दीर्घायुष्य और कार्यक्षम जीवन के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूं।

—एम-87, साकेत, नई दिल्ली

एक साहित्यधर्मी मित्र

— गोपाल प्रसाद व्यास
पूर्व सहायक सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान

श्री क्षितीश वेदालंकार मेरे मित्र और पुराने साथी पत्रकार हैं। बड़े सहृदय, बड़े अध्यवसायी, विचारक, सुवक्ता, कर्त्तव्यनिष्ठ और आर्यसमाज के प्रति पूर्णरूप से समर्पित।

क्षितीश जी जिस काम को हाथ में लेते हैं उसे पूरी निष्ठा और ईमानदारी से करते हैं। वह मूलतः साहित्य के आदमी और सुलेखक हैं, लेकिन पत्रकारिता और समाज का कार्य प्रतिक्षण उनके साहित्य-रस को सोखता रहता है। उन्होंने यात्रा-वृत्तांत तथा ऐसी ही जो पुस्तकें लिखी हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे साहित्यधर्मी हैं। पंजाब-समस्या पर उन्होंने जो लिखा है, वह उनकी पत्रकारिता की अलग से पहचान है।

वह तो आर्यसमाज को छोड़ेंगे नहीं अगर समाज उनको साहित्य के लिए छोड़ दे तो हिन्दी को एक सशक्त हस्ताक्षर मिल जाएगा।

क्षितीश जी का व्यक्तित्व स्नेहिल है। वह अपने सम्बन्धों का निर्वाह करते हैं। घर-परिवार और अपने परिकर में सबसे सुसंस्कृत व्यवहार करते हैं। मैंने उन्हें क्रोध करते कभी नहीं देखा। आ भी जाता है तो उसे पी जाते हैं, बोलते नहीं। वह जिस विषय पर लिखते हैं, अध्ययन करके लिखते हैं, विचार पूर्वक लिखते हैं। वह पंडित तो हैं ही, मृदुभाषी और अत्यन्त व्यावहारिक भी हैं। मेरे पड़ोसी हैं। आए दिन मिलना होता रहता है। मैं उन्हें उकसाता हूं, छेड़ता रहता हूं और उत्तेजित भी करता रहता हूं। पर, उनके मानस में कंकड़ी तो क्या पत्थर भी फेंको तो तरंगे उठती हुई दिखाई नहीं देतीं। मन में अवश्य कुछ होता होगा, पर जुबान पर नहीं आता। मैं उन्हें बदलने को कहता हूं। पुरानी परम्परा और लीक से हटने को कहता हूं। अपने अमूल्य समय को आर्य समाज की पत्रकारिता से निकलकर किसी बड़े काम में लगाने को उत्साहित करता हूं। वह महसूस तो करते हैं, परन्तु अपने सिद्धांत और स्वभाव से विवश हैं।

क्षितीश जी जो भी हैं, जैसे भी हैं, एक आदर्श व्यक्ति हैं। मैं उनकी कद्र करता हूं। गर्व करता हूं कि जीवन में मुझे ऐसा मित्र मिला। भगवान उन्हें सुखी और स्वस्थ रखे तथा कार्य करने के लिए लम्बी आयु प्रदान करे।

—बी-52, गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-110049

प्रतिभा-सम्पन्न पत्रकार

—डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय
समाचार सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान

वरिष्ठ पत्रकार, प्रतिभा सम्पन्न लेखक, प्रखर राष्ट्रप्रेमी और आर्यसमाज के अध्ययनशील प्रवक्ता श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार के साथ मुझे हिन्दुस्तान दैनिक में बीस वर्ष से अधिक समय तक काम करने का सुअवसर मिला है। सौभाग्य से अब कई वर्षों से मैं उसी कालोनी में उनके पड़ोस में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता हूं। इस प्रकार लगभग तीन दशकों से हम एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं।

तब और अब

एक कर्मठ और दृढ़ संकल्प वाले पत्रकार के रूप में क्षितीश जी ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया। मैं उनका कनिष्ठ सहयोगी था। आज पत्रकारिता मिशन नहीं रह गई है। सभी प्रकार के अच्छे-बुरे और योग्य-अयोग्य व्यक्ति पत्रकार बन गये हैं। जिन युवकों और युवतियों की पत्रकारिता में रुचि नहीं होती, वे भी 'कैरियर' की दृष्टि से पत्रकार बन जाते हैं। आजकल अखबार भी शुद्ध आर्थिक लाभ कमाने की दृष्टि से निकाले जा रहे हैं। इसलिए इस पवित्र कार्य में भी अनेक अशोभनीय बातें हो रही हैं। कलम की आजादी पर अंकुश लग रहे हैं। सबसे चिन्ताजनक बात यह है कि हाल के वर्षों में पेशेवर असामाजिक तत्व और माफिया प्रवृत्ति के लोग भी छोटे-बड़े समाचार-पत्रों के संवाददाता बन गए हैं। क्षितीश जी इनसे सर्वथा भिन्न प्रकार के पत्रकार हैं। वे लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, गणेश शंकर विद्यार्थी, विष्णु पराड़कर, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी आदि उत्कृष्ट पत्रकारों द्वारा डाली गई राष्ट्रीय पत्रकारिता की परम्परा के संवाहक हैं। उस राष्ट्रीय पत्रकारिता के मूल्य थे :— देश प्रेम, जन सेवा, आर्थिक-सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष और स्वामी विवेकानन्द व महातमा गांधी के दरिद्रनारायण की मुक्ति की उत्कट अभिलाषा। श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार की प्रतिभा-सम्पन्न लेखनी को मैंने सदा इन्हीं उत्कृष्ट मूल्यों के प्रति समर्पित पाया।

पत्रों की भाषा

पत्रकारों के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, साहित्य, भूगोल और इतिहास का अच्छा ज्ञान हो, राजनीतिक घटनाचक्र में रुचि हो और समाचारों की महत्ता जानने-परखने की सूक्ष्म दृष्टि हो। समाचार पत्र सुशिक्षितों और अल्पशिक्षितों दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए निकाले जाते हैं। अतएव समाचार पत्रों की भाषा विशिष्ट होती है। समाचार पत्रों की भाषा सरल, सुबोध होने के साथ-साथ घटना के अनुरूप भावाभिव्यक्ति करने वाली होनी चाहिए। परन्तु दुःख की बात है कि आजकल के अधिकांश हिन्दी समाचार पत्रों की भाषा में गिरावट आ रही है। शब्दों का सही चयन नहीं किया जाता और प्रूफ की अशुद्धियां भी बहुत होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षितीश जी को संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। उनकी भाषा मँजी हुई, सरल, सुबोध तथा प्रभावी होती है। हमें यह अच्छी तरह याद है कि 'हिन्दुस्तान' में काम करते समय वे हम लोगों की भाषा सुधारने के लिए कितना ध्यान देते थे। स्वयं मेरी भाषा में भोजपुरी का कुछ ऐसा प्रभाव था कि मैं कई शब्दों को गलत लिख देता था। क्षितीश जी बड़े प्यार और स्नेह-पगे शब्दों में गलती की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते थे। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय विषयों, इतिहास, भूगोल, दर्शन, साहित्य सब में उनके अच्छे व गूढ़ ज्ञान के कारण हम सब हमेशा उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे।

दुर्भाग्य से आज कल समाचारपत्रों के कर्मचारियों व पत्रकारों में भी श्रमपूर्वक काम करने, अनुशासन मानने, समय से कार्यालय आने और अपनी सीट पर बैठे रहने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। समाचार पत्रों मे नये व पुराने दोनों प्रकार के पत्रकारों में अनेक ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनमें ये प्रवृत्तियां नहीं हैं। सही है कि सारा माहौल नहीं खराब हुआ है। परन्तु कुछ गलत प्रवृत्तियां तो नजर आ ही रही हैं। इनके कारण समाचार-पत्रों का काम संतोषजनक ढंग से नहीं हो रहा है।

मैं प्रगतिशील विचारधारा का व्यक्ति हूं। मुझे ट्रेड यूनियन आन्दोलन तथा वर्ग संगठन और वर्ग संघर्ष की अवधारणा में दृढ़ विश्वास है। परन्तु आजकल यूनियन बाजी के नाम पर वर्ग संघर्ष तथा वर्ग-चेतना की भावना ही उपेक्षित होती जा रही है और कामचोरी व अनुशासनहीनता की प्रवृत्तियां बल पकड़ रही हैं। यह चिन्ताजनक स्थिति है।

'हाथ न बिगाड़े'

एक कहावत है कि 'बेगार करे, पर हाथ न बिगाड़े' यानि यदि बिना पारिश्रमिक के भी कोई काम विवशता में करने भी पड़े तो भी कलाकार को खराब काम नहीं करना चाहिए। क्योंकि खराब काम करते करते कलाकार की कला ही नष्ट हो जाती है और उसका हाथ बिगड़ जाता है। यह बात पत्रकारों पर भी लागू होती है। श्रम, निष्ठा, कला की उपेक्षा करने वाले नये पत्रकार अच्छे पत्रकार नहीं बन सकते और अच्छे भी खराब बन सकते हैं।

आदरणीय क्षितीश जी को पत्रकार कला में महारत हासिल है। उन्होंने आजीवन श्रमपूर्वक निष्ठा के साथ दिल लगा कर उत्कृष्ट कार्य किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। काम के प्रति उपेक्षा और लापरवाही उन्हें बहुत खलती है। वास्तव में वे आदर्श श्रमजीवी पत्रकार हैं।

सहृदयता

पत्रकारिता व अन्य प्रकार के लेखन में निपुणता तो क्षितीश जी में है ही, वे मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत अच्छे इन्सान हैं। 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' ही उनकी अभिलाषा है। छल-कपट-दंभ-अहंकार से दूर, मित्रों के सुख में सुखी, दु:ख में दु:खी। कुछ लोग मित्रों व परिचित व्यक्तियों की प्रगति, उनके नेक कामों व यश से दु:खी हो जाते हैं। ईर्ष्या भाव त्याग नहीं पाते। क्षितीश जी इन दुर्गुणों से दूर सहृदय व्यक्ति हैं। उनका व्यक्तित्व उदार, गम्भीर एवं गरिमा-युक्त है। स्वाधीनता आन्दोलन, विशेषत: क्रांतिकारियों पर प्रकाशित मेरी पुस्तकों को देख-पढ़ कर वे हमेशा हृदय से प्रसन्न हुए हैं। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई है, और प्रोत्साहित किया है। यही नहीं, अध्ययन के लिए सामग्री भी दी है।

विनोदी स्वभाव

क्षितीश जी व्यंग्य-विनोद में भी निपुण हैं। सुसंस्कृत हंसी मजाक करते हैं। किसी का दिल दुखाने वाला मजाक उन्हें पसन्द नहीं। मुझे याद है-'हिन्दुस्तान' के पुराने साथियों में स्व. शिवकुमार विद्यालंकार व स्व. विद्यासागर वशिष्ठ आदि के मजाक का वह ऐसा गुदगुदी भरा सुसंस्कृत उत्तर देते थे कि सभी उसका आनन्द लेते थे।

आर्यसमाज के क्षेत्र में श्री क्षितीश जी के गहन अध्ययन, विद्वत्तापूर्ण प्रवचन, तथा गहरी आस्था चर्चित रहती है। स्वाधीनता आन्दोलन में आर्य-समाज के योगदान की बातें वे मुझे बड़े चाव व जोश के साथ सुनाते हैं। जब वे इस विषय पर बात करते हैं तो उनकी भावमुद्रा दर्शनीय हो उठती है। एक प्रतिबद्ध एवं अध्ययनशील व्यक्ति तथा बड़े भाई का भाव सहज ही उभर आता है। वास्तव में मैं पत्रकारिता व लेखन के क्षेत्र में उनको अपना गुरुतुल्य अग्रज मानता हूं। मैं उनकी विद्वत्ता व सहृदयता का कायल हूं। मैं उनके दीर्घ सुखी, स्वस्थ व सक्रिय जीवन की हार्दिक कामना करता हूं।

—बी-55 गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-110049

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक खरा व्यक्तित्व—भाई श्री क्षितीश जी

—मोहनराज भण्डारी
समाचार-सम्पादक, दैनिक नवज्योति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही आपाधापी का एक ऐसा दौर चला कि कुछ कहते नहीं बनता। यह आपाधापी राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित रहती तो भी बात कुछ समझ में आती, लेकिन यह दौर सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में भी धड़ल्ले से प्रवेश कर गया। आज यह समझना भी कठिन है कि जिसका अभिनन्दन या स्वागत किया जा रहा है वह अभिनन्दन या स्वागत योग्य है भी या नहीं। चापलूसों की एक ऐसी जमात खड़ी हो गई है कि वह निकम्मे से निकम्मे नेता, पत्रकार, साहित्यकार एवं समाजसेवी को आनन-फानन में पुजवा देती है और ऊंचे से ऊंचे नेता, पत्रकार, साहित्यकार एवं समाजसेवी को उपेक्षा की भट्टी में फेंक देती है।

हमें स्मरण है कि लगभग 15 वर्ष पूर्व समाजसेवी भाई कलयंत्र जी ने हमें एक पत्र में लिखा था कि प्रमुख समाजसेवी, देशभक्त और राजस्थान के जाने-माने अपने समय के प्रमुख पत्रकार स्व. श्री रामनारायण जी चौधरी, जिन्हें महात्मा गांधी का हिन्दी सचिव एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 10 वर्षों तक भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के साथ देश-सेवा का कार्य करने का अवसर मिला था तथा जिन्हें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में लेने की पेशकश भी की गई मगर उन्होंने पक्के गांधीवादी होने के कारण सत्ता में आने से इन्कार कर दिया था, का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जाये। जब हमने श्रद्धेय चौधरी जी से इस बारे में चर्चा की तो उन्होंने अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि आजकल हल्के स्तर के लोग ही ज्यादातर अपने लिये अभिनन्दन अथवा स्वागत-समारोह आयोजित करते हैं। ऐसे दूषित वातावरण में मेरा अभिनन्दन समारोह करना उचित नहीं है। यद्यपि श्रद्धेय चौधरी जी का तर्क तो सही था लेकिन मेरी दृष्टि में यह व्यावहारिक नहीं था क्योंकि अच्छे और सच्चे लोग इस तरह पीछे हटने लगे तो निकम्मे लोगों को पूरी तरह छा जाने का अवसर सहज ही उपलब्ध हो जायेगा और हो भी ऐसा रहा है। खैर।

हाल में 'नया युगपुरुष' पाक्षिक अजमेर के सम्पादक वीरेन्द्र कुमार आर्य, स्वतन्त्रता सेनानी एवं वरिष्ठ पत्रकार भाई श्री क्षितीश जी वेदालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 74वें जन्म दिवस पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपने पत्र के विशेषांक हेतु कुछ लिखने के सिलसिले में मिले और वेदालंकार जी की 'निज़ाम की जेल में' तथा 'तूफान के दौर से पंजाब' नामक दो पुस्तकें देखने को दे गये।

उक्त दोनों पुस्तकों को सरसरी नजर से ही देख पाया और मुझे लगा कि भाई वीरेन्द्र आर्य की सूझबूझ के साथ न तो कोई स्वार्थ है और न कोई लाग-लपेट। आज ऐसे लोगों का स्वागत या अभिनन्दन करने की कौन सोचता है जो गिरोहबन्दी से दूर रहकर अपने साधना के पथ पर चलते रहते हैं।

यद्यपि दिल्ली के अधिकृत (पुराने) हिन्दी दैनिकों के प्राण भाई श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार से तो हमारा बहुत निकट का सम्पर्क रहा लेकिन भाई क्षितीश जी के सम्पर्क में आने का अवसर नहीं मिला। फिर भी भाई क्षितीश जी के नाम से कुछ परिचित इसलिये हूं कि हम दोनों का कार्य-क्षेत्र एक लम्बे अर्से से पत्रकारिता ही चला आ रहा है।

भाई क्षितीश जी स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ ही अच्छे लेखक, साहित्यकार और वरिष्ठ पत्रकार भी हैं। इन्होंने आर्य-सत्याग्रह में उस समय भाग लिया जब इनकी स्नातक की परीक्षा का एक माह शेष था। वैसे जीवन की पगडण्डी में डिग्री का एक बड़ा सम्बल होता है लेकिन धुन के धनी स्वयं के जीवन के बारे में कब सोचते हैं? भाई क्षितीश जी भी जीवन को सजाने-संवारने के रास्ते को छोड़कर देशभक्ति के मार्ग पर निकल पड़े।

22 जनवरी, 1939 को गुरुकुल के छात्रों ने हैदराबाद दिवस मनाया और 28 जनवरी को महात्मा नारायण स्वामी के आह्वान पर बिना आगे-पीछे की कुछ भी सोचे गुरुकुल के 14 विद्यार्थी, श्री क्षितीश जी के साथ हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लेने चल पड़े। इस सत्याग्रह के दौरान कितनी सूझबूझ से काम लेना पड़ा और हृदय दहलाने वाली पीड़ाओं को सहना पड़ा, उसकी आसानी से आज कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

भाई क्षितीश जी ने जहां निजाम की हुकूमत में जेल की पीड़ाओं को साहस के साथ अहिंसात्मक तरीके से झेला वहां उन्हें देश-विदेश में घूमने का भी खूब अवसर मिला। जब ऐसे व्यक्ति पत्रकारिता एवं लेखन के क्षेत्र में आते हैं तो निश्चय ही समाज को लाभ मिलता है।

भाई क्षितीश जी की चिन्तनशीलता और स्पष्टवादिता से सम्बन्धित कुछ पंक्तियां उन्हीं की दो पुस्तकों से हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे पाठकों को उन्हें समझने में निश्चय ही मदद मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निजाम की जेल में" में वे लिखते हैं—"किसी भी दृष्टि से यह आर्य सत्याग्रह का सम्पूर्ण इतिहास नहीं है . अनेक अन्य जत्थों की आप बीती इससे भी अधिक मार्मिक, रोमांचक और घटना-प्रधान हो सकती है, पर लेखक को तो हर हालत में अपनी लक्ष्मण रेखा (अत्यन्त सीमित साधनों की परिधि) का ही पालन करना था ।" अर्थात् इस पुस्तक की सामग्री व चित्र क्षितीश जी के जत्थे तक ही सीमित हैं ।

इसी तरह "तूफान के दौर से पंजाब" (द्वितीय संस्करण) में भाई क्षितीश जी लिखते हैं—

"इन्दिरा गांधी की हत्या की भविष्यवाणी इतनी जल्दी सत्य हो जायेगी, यह कल्पना नहीं थी । मन को झकझोर डालने वाली इस निर्मम हत्या के पश्चात् देश में जो माहौल बना है, उसमें लीपापोती की नहीं, खरेपन की जरूरत है । यदि अब भी सच्चाई को सही रूप में पेश नहीं किया गया तो वह राष्ट्र के भविष्य के लिये खतरनाक साबित होगी ।"

ऐसे स्पष्टवादी और चिन्तनशील व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर चर्चा का कोई सिलसिला शुरू होता है तो निश्चय ही देशभक्ति की दबी चिंगारियों को शुद्ध व ताजा हवा मिलती है और आज दमघोटू के वातावरण में ऐसी हवा की अनिवार्य रूपेण निरन्तर आवश्यकता है ।

— 62, महावीर कॉलोनी,
पुष्कर रोड, अजमेर

एक निष्काम कर्मयोगी

—सुभाष विद्यालंकार
पूर्व सूचनाधिकारी, दिल्ली-प्रशासन

आज से पचास वर्ष पहले मैंने क्षितीश जी को सबसे पहली बार देखा था । तब वे विद्यार्थी थे । गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के जो ब्रह्मचारी हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लेने गये थे, उनमें क्षितीश जी प्रमुख थे । आर्य-समाज के इस सत्याग्रह की अभूतपूर्व सफलता के पश्चात् ये ब्रह्मचारी निजाम की जेल से मुक्त होकर गुरुकुल लौटे थे । इन सत्याग्रही ब्रह्मचारियों के स्वागत समारोह में क्षितीश जी ने बन्दी जीवन के अपने अनुभव सुनाये थे । तब मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथी, पांचवीं कक्षा में रहा होऊंगा। यह मेरा उनके साथ प्रथम मानसिक परिचय था।

पिछले पचास वर्षों में यह परिचय निरन्तर घनिष्ट होता गया है। वे सच्चे अर्थों में मेरे बड़े भाई बन गये हैं। व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन का ऐसा पक्ष नहीं है जिसमें उन्होंने मेरा मार्ग दर्शन न किया हो। और यही आत्मीयता उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष की चर्चा कर पाने में मेरी सबसे बड़ी बाधा बनी हुई है।

वैदिक वाङ्मय, संस्कृत साहित्य और हिन्दी के विद्वान् लेखक, ओजस्वी वक्ता, पत्रकार, समाज सुधारक, पर्यटक तथा प्रबुद्ध चिन्तक भाई क्षितीश जी ने अपनी योग्यता और सेवा के आधार पर देश की राजधानी के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में न केवल अपना अद्वितीय स्थान बना लिया है अपितु वे पत्रकार और आर्यसमाज के कर्मठ निष्ठावान कार्यकर्ता के नाते देश और समाज का सही मार्गदर्शन भी करते आ रहे हैं।

एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि कोई व्यक्ति जीवन में जो काम नहीं करना चाहता कई बार उसे परिस्थितिवश वही काम करना पड़ता है। क्षितीश जी जीवन में अपना कार्यक्षेत्र संकुचित नहीं बनाना चाहते थे। इसीलिए वे आर्यसमाज से सम्बद्ध संगठनों और संस्थाओं में काम करने के लिए कभी उत्सुक नहीं रहे। किन्तु उनकी अप्रतिम विद्वत्ता और योग्यता के कारण आर्य समाज को विवश हो उन्हें अपनाना पड़ा। आर्यसमाज में इन दिनों विद्वानों और संन्यासियों का नितान्त अभाव है। जो गिने-चुने विद्वान हैं भी, उन्हें आर्यसमाज के अधिकारी सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान नहीं करना चाहते। किन्तु क्षितीश जी ने आर्यसमाज को कभी अपनी स्वार्थ सिद्धि का आधार नहीं बनाया। इसीलिए अपनी विद्वत्ता और योग्यता के कारण आर्य जगत् में उनका अपना अद्वितीय स्थान है। यह भी एक कटु सत्य है कि आर्यसमाज ने भले ही क्षितीश जी को कभी कोई महत्वपूर्ण पद न दिया हो— क्योंकि इधर उनकी न रुचि है न प्रवृत्ति—इसके बावजूद राजधानी और भारत का आर्य जगत्, क्षितीश जी के बिना अपूर्ण है। उनको पढ़ने-लिखने का शौक है, इसीलिए वे पदलिप्सा से कोसों दूर हैं। आर्यसमाज के कर्णधारों ने उनकी योग्यता का पूरा लाभ उठाने का सच्चे हृदय से कभी प्रयत्न नहीं किया। इसका कारण शायद यही रहा हो कि आर्यसमाज के नेताओं में और क्षितीश जी के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई क्षितीश जी ने अपना तन-मन-धन आर्यसमाज को अर्पण किया। उनकी विचारधारा प्रखर राष्ट्रवादी है। साम्प्रदायिकता उन्हें छू नहीं गई। समसामयिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में उनकी चिन्तनशैली निराली है। जिन्होंने पंजाब की वर्तमान राजनीतिक समस्या के बारे में उनकी पुस्तक पढ़ी है, वे जानते हैं, क्षितीश जी ने इस समस्या का जैसा सन्तुलित और समीचीन विश्लेषण किया है, पंजाब की समस्या का वैसा विशद विवेचन देश के अन्य राजनीतिक चिन्तक नहीं कर पाये।

भाई क्षितीश जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए खपाया है। वे सच्चे अर्थों में निष्काम कर्मयोगी हैं। पैसे और प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अपने सिद्धान्तों को तिलांजलि देकर जीवन में कभी किसी से समझौता नहीं किया।

डी-6, गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-49

श्री क्षितीश जी–समर्पित और बहु आयामी व्यक्तित्व

– देवकृष्ण व्यास
पूर्व सहायक सम्पादक 'हिन्दुस्तान'

जीवन-यात्रा में जिन महारथियों ने मुझे प्रेरित और प्रभावित किया उनमें क्षितीश जी भी एक हैं। उनसे परिचय लगभग तीन दशक पूर्व हुआ था और तब से आज तक अपनी आत्मीयता से वह मुझे कृतार्थ करते आ रहे हैं। इस लम्बी अवधि में उनके व्यक्तित्व के अनेक रूप मैंने देखे हैं। प्रत्येक रूप में सफल और यशस्वी होकर उन्होंने अपना विशिष्ठ स्थान बना लिया है।

दैनिक "हिन्दुस्तान" में जब मैं उप सम्पादक बनकर आया तब कई दिग्गज पत्रकार इस प्रतिष्ठित पत्र से जुड़े हुए थे। संपादक थे श्री मुकुट विहारी वर्मा, और सर्वश्री शोभालाल गुप्त, हरिकृष्ण त्रिवेदी और गोपाल-प्रसाद व्यास उनके प्रमुख सहयोगी थे। क्षितीश जी उन दिनों डेस्क पर काम कर रहे थे। समय पर आना, समय पर जाना, व्यर्थ के विवादों में कभी न उलझना और फालतू समय में पुस्तक या अखबार पढ़ना उनका प्रतिदिन का क्रम था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 029 92 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 36558

"हिन्दुस्तान" में ग्राने से पहले क्षितीश जी 'ग्रर्जुन' में पत्रकार शिरोमणि पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति के साथ काम कर चुके थे। उनकी प्रतिभा को 'हिन्दुस्तान' में पल्लवित ग्रौर पुष्पित होने का ग्रवसर मिला। समाचार-सम्पादन के साथसाथ उन्होंने सामयिक विषयों पर लेख लिखना भी प्रारम्भ किया। सुगठित भाषा में लिखित उनके विचारपूर्ण लेखों की सर्वत्र सराहना होने लगी। कई वर्षों तक फीचर सम्पादन का कार्य भी उनको सौंपा गया। जो भी काम उन्हें दिया गया, उसे उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ किया।

योग्यता ग्रौर कठोर परिश्रम के बल पर ही क्षितीश जी उप सम्पादक से बढ़ते बढ़ते सहायक संपादक के पद पर पहुंचे। कई वर्षों तक उन्होंने 'हिन्दुस्तान' के रविवारीय संस्करण का सम्पादन भी किया। सुरुचिपूर्ण रचनाग्रों के द्वारा उन्होंने इस संस्करण को काफी चमकाया। रविवारीय संस्करण के सम्पादन के साथ साथ क्षितीश जी 'यत्र तत्र सर्वत्र' ग्रौर ग्रग्रलेख भी लिखा करते थे। रविवार को प्रकाशित होने वाला ग्रग्रलेख विशिष्ठ साहित्यिक शैली में लिखा जाता था।

इस ग्रग्रलेख में उनकी विद्वत्ता की छाप स्पष्ट दिखाई देती थी। कुशल ग्रनुवादक के रूप में भी उनकी ख्याति थी। कई बार महत्वपूर्ण ग्रौर जटिल अंग्रेजी में ग्राए लेख ग्रनुवाद के लिए उनको दिये जाते थे। जनसेवा के लिए पत्रकारिता में ग्राए क्षितीश जी ने एक समर्पित ग्रौर सफल पत्रकार के रूप में यश ग्रर्जित किया है। "हिन्दुस्तान" से ग्रवकाश ग्रहण करने के बाद उन्होंने 'ग्रार्य जगत्' के सम्पादन का कार्य हाथ में लिया जिसे ग्राज भी वे ग्रत्यन्त कुशलता से सम्पन्न कर रहे हैं।

गुरुकुल से प्राप्त वेदालंकार की उपाधि को सार्थक करने के लिए उन्होंने वेदों के प्रचार प्रसार को भी ग्रपने जीवन का लक्ष्य बनाया। ग्रार्य समाज के सत्संगों ग्रौर सम्मेलनों में वैदिक धर्म ग्रौर ग्रार्य संस्कृति के प्रचारक ग्रौर प्रवक्ता के रूप में भी उन्होंने ग्रच्छी लोकप्रियता प्राप्त की है। प्रबुद्ध विचारक ग्रौर प्रभावशाली वक्ता होने के कारण भी उन्हें काफी सम्मान प्राप्त है। दक्षिण हैदराबाद में ग्रपने ग्रत्याचारों के लिए कुख्यात निजामशाही के विरुद्ध सत्याग्रह करने पर उन्होंने कारावास की सजा भी भोगी। संतोष का विषय है कि भारत सरकार ने स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में उनको सम्मानित किया है।

पत्रकारिता की व्यस्तता ग्रौर ग्रार्यसमाज की गतिविधियों के बावजूद क्षितीश जी लेखन का कार्य भी निरन्तर करते चले ग्रा रहे हैं। विविध विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पंजाब की समस्या पर लिखी गई उनकी पुस्तक का अंग्रेजी ग्रौर ग्रन्य भाषाग्रों में ग्रनुवाद भी हुग्रा है।

पर्यटन, प्राकृतिक चिकित्सा ग्रौर ग्रध्यात्म में उनकी गहरी रुचि है। हिमालय के दुर्गम स्थानों की उन्होंने साहसिक यात्राएं की हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के मेरे प्रयोगों के बारे में भी वह काफी दिलचस्पी लेते रहे हैं। नियमित दिनचर्या ग्रौर सात्विक ग्राहार के कारण ही वे जीवन के इस संध्याकाल में भी ग्रत्यन्त सक्रिय हैं।

समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने में क्षितीश जी ग्राज भी महत्वपूर्ण भूमिका ग्रदा कर रहे हैं। पिछले दिनों दिल्ली की पत्रकार कालोनी गुलमोहर पार्क में स्पोर्ट्स-कम-कम्यूनिटी सेंटर के पदाधिकारियों ने शराबघर (बार) खोलने के बारे में मतदान कराने का कार्यक्रम घोषित किया तो उन्होंने इसका डटकर विरोध किया। जब मुझे मालूम हुग्रा कि शराबघर को रुकवाने के लिए क्षितीश जी भूख हड़ताल करने के लिए तैयार हैं, तो मैंने भी इस शुभ कार्य में उनका साथ देने का निश्चय किया। हम दोनों के संकल्प ने कालोनी का माहौल बदल दिया। महिलाग्रों ने हस्ताक्षर ग्रभियान शुरू किया जिससे शराबघर के विरुद्ध जनमत तैयार हो गया। इससे घबराकर कम्युनिटी सेंटर के पदाधिकारियों ने शराबघर के प्रश्न पर मतदान स्थगित कर दिया।

क्षितीश जी "योगः कर्मसु कौशलम्" में ग्रास्था रखते हैं। कर्मयोगी की तरह ग्रपने ग्रादर्शों को साकार करने में व्यस्त हैं। स्वतन्त्रता सेनानी, पत्रकार, लेखक ग्रौर समाज सुधारक तो वह हैं ही, पर सबसे बड़ी बात यह है कि वह एक ग्राला इन्सान हैं। सरल ग्रौर सौम्य व्यवहार से उन्होंने ग्रपने भक्तों ग्रौर प्रशंसकों की संख्या काफी बढ़ा ली है। प्रभु उन्हें दीर्घायु प्रदान करे।

—सी-31, गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-110049

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक राष्ट्रवादी चिन्तक और मूकसाधक

—वीरेन्द्रसिंह पमार, आयुर्वेदशास्त्री
पूर्व सम्पादक 'अमेरिकन रिर्पोटर' और व्यवस्थापक 'आर्गनाइजर'

ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं जो समाज और राष्ट्र के उत्थान को अपना जीवन लक्ष्य मानकर उसी की सिद्धि के लिये सतत प्रयत्न करते रहते हैं। उनके विचार और आचरण में विषमता नहीं होती, वे **"यन्मनसा ध्यायति तत्कर्मणा करोति"** का परिपालन करके एक उदाहरण उपस्थित करते हैं। "सादा जीवन उच्च विचार" उनका आदर्श रहता है। वे **"सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव"** का पालन करते हुए सम्मान और प्रतिष्ठा के पीछे नहीं दौड़ते, वे तो प्रतिक्षण अपनी कर्त्तव्य परायणता की ओर ही दृष्टि रखते हैं। तथा—**"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"** एवं **"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः"** के अनुसार उनका विश्वास रहता है कि कर्म करना उनका अधिकार है, किन्तु फल उनके हाथ में नहीं है। आसक्ति रहित कर्म करने से लक्ष्य प्राप्ति अवश्य होती है। इन गुणों का मूर्तिमान रूप ढूंढ़ने हमें दूर नहीं जाना होगा। इसका दर्शन "आर्यजगत्" के सम्पादक श्री क्षितीश वेदालंकार में पूर्णरूपेण मिल जायेगा।

व्यक्ति के भविष्य का निर्माण सामान्यतः पैतृक संस्कार तथा शिक्षा के द्वारा होता है। क्षितीश जी को यह लाभ पूरी तरह मिला। जिस परिवार में उनका जन्म हुआ, उस पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव था। उनकी शिक्षा गुरुकुल में हुई जिसने 'सोने में सुहागा' का काम किया। प्रारम्भ में गुरुकुल ज्वालापुर, फिर कुरुक्षेत्र, तत्पश्चात् गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में रहकर उनका विद्यालयीय अध्ययन पूर्ण हुआ। दशम श्रेणी के बाद तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ शिक्षण संस्था गुरुकुल कांगड़ी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। यहां 1935 से लेकर स्नातक होने तक उन्होंने वेद, दर्शन, मनोविज्ञान, तुलनात्मक धर्मशास्त्र तथा अन्य विषयों का गहन अध्ययन किया। यहां पर क्षितीश जी के बाल्यकाल के संस्कार दृढ़ हो गये और राष्ट्रभक्ति की भावना बलवती हो गई। यही कारण था कि वे 1939 के हैदराबाद सत्याग्रह में कूद पड़े और सर्वप्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ ही अपने साथियों के जत्थे का नेतृत्व करते हुए जेल गये। वहां उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक प्रकार की यन्त्रणाएं सहनी पड़ी, किन्तु वे विचलित नहीं हुए। यह वर्ष उनकी महाविद्यालयीय शिक्षा का अन्तिम वर्ष था और सभी गुरुजनों का आग्रह था कि वे शिक्षा सम्पूर्ण करने के बाद ही सत्याग्रह में शामिल हों। परन्तु निज़ाम सरकार द्वारा हिन्दुओं पर किये जा रहे अमानवीय अत्याचारों के कारण उनका मन इतना उद्वेलित हो गया था कि अपने भविष्य की परवाह किये बिना वे उस यज्ञ में अपने जीवन की प्रथम आहुति देने के अपने निश्चय पर अटल रहे। इस सत्याग्रह का विस्तृत वर्णन क्षितीश जी द्वारा लिखित पुस्तक "निज़ाम की जेल में" में मिलता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि उनकी योग्यता, प्रतिभा और समर्पण की भावना तथा शैक्षणिक उपलब्धियों पर प्रसन्न होकर गुरुकुल के शिक्षाधिकारियों ने उन्हें, स्नातक परीक्षा में न बैठ पाने पर भी वेदालंकार की उपाधि से गौरवान्वित किया।

धर्म-निरपेक्षता और मिली जुली संस्कृतियों से बनी राष्ट्रीयता की परिभाषा उन्हें स्वीकार नहीं। क्षितीश जी की मान्यता है कि भारत देश मूलतः हिन्दुओं का है; उसकी प्राचीन संस्कृति और परम्परा में निहित सर्व-धर्म समभाव की भावना तथा देश के ऐतिहासिक तथा धार्मिक स्थान ही हमारी राष्ट्रीयता के साक्षी हैं। यह हिन्दू राष्ट्र है, और इसका आधार वेद है। इसके बिना हिन्दू जाति का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। यहां के सभी निवासी हिन्दू हैं—बौद्ध, जैन, सिख, मुसलिम, ईसाई, फारसी आदि सभी हिन्दू हैं; और यह भारत भूमि सभी की मातृभूमि है। इसे सम्प्रदायों के आधार पर बांटना हमारी राष्ट्रीयता पर प्रहार करना है। इस अलगाववादी विचारधारा को धूर्त्त अंग्रेज शासकों ने अपने शासन को मज़बूत करने के लिये हमारी शिक्षा में और हमारे साहित्य में प्रविष्ट कर दिया है। हम अज्ञानवश आज भी उन दुष्ट विचारों पर विश्वास करके अपनी राष्ट्रीयता की व्यवस्था को विकृत रूप दे रहे हैं।

क्षितीश जी की दृष्टि दार्शनिक है, वे स्वतन्त्र विचारक हैं। घटनाओं का विश्लेषण एवं उनका वर्णन उनके स्वतन्त्र चिन्तन का द्योतक है, और उनकी वर्णन शैली उनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय देती है। वे निर्भीक समालोचक हैं और संस्थागत अथवा सामाजिक दोषों और भ्रष्टाचार के कटु आलोचक हैं। परन्तु व्यक्ति के चरित्रहनन में उनकी लेखनी कुंठित हो जाती है। उनको दोषों से घृणा है परन्तु वे प्रत्येक व्यक्ति को प्रेमभाव से देखते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो उनसे मिलने आता है वह उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त हो जाता है। संभवतः यह शिक्षा उन्हें महर्षि दयानन्द के चरित्र से मिली हो।

भारत के अतीत के गौरव तथा इतिहास में उनकी विशेष रुचि है। 'हिन्दू' शब्द का उद्भव, वे प्रचलित विश्वास के आधार पर 'सिन्धु' शब्द से नहीं मानते। उनका मत है कि यह शब्द 'इन्दु' शब्द का अपभ्रंश है। इन्दु शब्द चन्द्रमा का पर्यायवाची है और इस शब्द का प्रयोग यूनान और चीन के निवासियों ने महाभारत कालीन चन्द्रवंशी (अर्थात् भरतवंश) राजाओं के लिये किया था। वही शब्द कालान्तर में 'हिन्दू' बन गया। मोएन जोदड़ों तथा हड़प्पा के अवशेषों को वे महाभारत कालीन अथवा 5000 वर्ष पुराने मानते हैं। उनकी दृष्टि में तथाकथित सिन्धु सभ्यता आर्य सभ्यता का ही अंग है, अनार्य सभ्यता का नहीं, जैसा कि पाश्चात्य विद्वान मानते हैं। इसके लिए उनके पास प्रमाणों की कमी नहीं है। वे कहते हैं कि द्वारकापुरी, जिसे सोने की नगरी कहा जाता था, भारत प्रवेश का द्वार थी। उसी मार्ग से यहां के निवासी अरब और अफ्रीका के देशों से व्यापार करते थे। यहां का ओखा मंडल बाणासुर की पुत्री ऊषा के नाम पर है। उसका विवाह श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ हुआ था। बाणासुर असीरिया का राजा होने के कारण 'असुर' कहलाया। असीरिया के इतिहास में उसका उल्लेख बनीपाल के नाम से मिलता है।

घटनाओं का निष्पक्ष विश्लेषण पंजाब की स्थिति पर लिखी उनकी पुस्तक "तूफान के दौर से पंजाब" में मिलता है। इसमें पाठक को यह पता चल जाता है कि हिन्दू-सिख के बीच विषबीज अंग्रेज शासकों ने बोया और प्रमादवश हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के नेताओं ने, विशेषतः कांग्रेस ने उसे मूर्त्तरूप दिया—उस विषवृक्ष का फल आज हमारे सामने आ रहा है।

वे कहते हैं कि स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों और अन्धविश्वास को मिटाने के लिये ही आर्यसमाज की स्थापना की थी। परन्तु जिस संस्था पर देश के भविष्य को सुधारने की जिम्मेदारी थी, वही आज आपसी कलह, विद्वेष और स्वार्थ साधन का केन्द्र बन रही है। अछूतोद्धार, निरक्षरता निवारण, धर्मान्तरण को रोकना तथा समाज को स्वस्थ और राष्ट्रभक्त बनाने के कार्य अब आर्यसमाज की पुस्तकों के विषय बनकर रह गये हैं। जन्मना जातिप्रथा, जिसे स्वामीजी मिटाना चाहते थे, आज पहले से भी कहीं अधिक हो गई है। 'आर्य जगत्' में बराबर चर्चा करते रहने पर भी समाज में चेतना जाग्रत नहीं हो रही। जो कुछ भी हो 'मैं अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न कर रहा हूं, फल ईश्वराधीन है।' अपने लेखों द्वारा क्षितीश जी आर्य-समाज की वर्त्तमान दशा पर सदस्यों का उद्‌बोधन करते रहते हैं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि समाज की चिन्ता करने वाले व्यक्तियों के बजाय सर्वत्र स्वार्थ साधकों की भीड़ बढ़ती जा रही है।

क्षितीश जी से मेरा सम्पर्क 1952 में हुआ था, जब वे 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में काम करते थे। मैं उस समय यू. एस. आई. एस. (अमेरिकी सूचना विभाग) के हिन्दी विभाग में सम्पादक था। अपने प्रथम मिलन में ही उनके मिष्टभाषी सुस्मित व्यवहार से मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मैं उन्हें अपने हार्दिक स्नेह का पात्र मानने लगा और आज भी उनके प्रति मेरी आस्था उसी प्रकार है। उनकी विद्वत्ता, सूझ बूझ तथा उनके अनुभवों का लाभ मुझे बराबर मिलता रहता है।

क्षितीश जी का चिन्तन राष्ट्रवाद से ओतप्रोत है। उनका राष्ट्रवाद केवल भावनाओं पर आधारित नहीं है, अपितु वे राष्ट्रवाद का प्रतिपादन तर्क और ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अपने ढंग से करते हैं। उनके राष्ट्रवाद पर "यह अपना है, इसलिये अच्छा है" यह कहकर संकुचितता का आरोप नही लगाया जा सकता, क्योंकि वे इसे पूरे ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि ईसाइयत या इस्लाम में राष्ट्रवाद नहीं है, क्योंकि वे केवल अपने मज़हब और अपने पैगम्बर को ही महत्त्व देते हैं, किसी राष्ट्र को नहीं। किसी गैर-मुस्लिम और गैर-ईसाई राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा सदा इसीलिये डांवाडोल रहती है। पर इस देश के निवासियों ने चिरकाल के संघर्ष के बाद विभिन्न विचारों के साथ सह-अस्तित्वपूर्वक जीना सीखा और मतों या सम्प्रदायों को महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने भारत-भक्ति को भी अपने धर्म का अंग माना। समस्त स्मृतियां और पुराण इसके साक्षी हैं। राम और कृष्ण भी उनको इसीलिए पूज्य हैं क्योंकि वे राष्ट्र पुरुष हैं। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम ने उत्तर भारत और दक्षिण भारत को एक सूत्र में बांधा, तो श्री कृष्ण ने पूर्वी और पश्चिमी भारत को। जो लोग उक्त दोनों महापुरुषों के इस राष्ट्रीय कार्य को बिना समझे केवल उनकी पारिवारिक घटनाओं को महत्त्व नही देते, वे इतिहास के साथ न्याय नहीं करते।

इसके अतिरिक्त उन्होंने आर्य समाज को साम्प्रदायिकता की ओर जाने से रोकने के लिये एक नया नारा दिया है। वे कहते हैं—आर्यसमाज की दो भुजायें हैं: एक वेद और दूसरी राष्ट्र। इन दोनों भुजाओं का समान महत्त्व है। इनमें से एक भी भुजा न रही तो आर्यसमाज लूला और लंगड़ा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगा । इसी नारे को वे ऐसा व्यावर्त्तक लक्षण मानते हैं जो ग्रार्यसमाज को ग्रन्य सभी धार्मिक, सामाजिक ग्रौर राजनीतिक संस्थाग्रों से ग्रलग करना है । केवल वेद की बात करने वाले उन्हें पसन्द नहीं हैं, ठीक इसी प्रकार केवल राष्ट्र की बात करने वाले भी । वे वेदाधारित राष्ट्र को ही राष्ट्रवाद की ग्रसली कुंजी मानते हैं । पाठक सोचकर देखें कि क्या भविष्य में राष्ट्रवादी चिन्तन के लिये यह सुदृढ़ ग्राधार नहीं बन सकता ?

ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसा दूरदर्शी प्रखर राष्ट्रवादी, चिन्तक ग्रौर मूकसाधक चिरायु प्राप्त करके चिरकाल तक समाज का मार्गदर्शन करता रहे ।

–2, यू. बी., जवाहरनगर
दिल्ली–110007

श्री क्षितीश वेदालंकार के प्रति कुछ उद्गार

—बलराज मधोक
अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ

श्री क्षितीश वेदालंकार के साथ मेरा परिचय तब से है जब वे दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सह-सम्पादक थे । परन्तु उनको ग्रौर उनके चिन्तन को निकट से देखने, समझने ग्रौर मूल्यांकन करने का ग्रवसर उनके द्वारा "ग्रार्य जगत्" के सम्पादक पद संभालने के बाद मिला । उसके बाद उनकी प्रतिभा, स्वतन्त्र चिन्तन ग्रौर ग्रार्यसमाज तथा हिन्दुत्व के प्रति उनकी लगन ग्रौर निष्ठा का जो परिचय मिला उसने उन्हें मेरी नजरों में बहुत ऊंचा उठा दिया ।

क्षितीश जी मौलिक विचारक होने के साथ प्रभावी वक्ता ग्रौर लेखक भी हैं । 'ग्रार्य जगत्' के माध्यम से उनके चिन्तन को जो व्यापक ग्रभिव्यक्ति मिल रही है, उसके कारण सारे देश में उनके प्रशंसकों की संख्या बढ़ रही है ।

उनकी सत्य निष्ठा ग्रौर बेबाकी के कारण 'ग्रार्य जगत्' का रूप एक दिशा बोधक का बन गया है । इसी कारण ग्रार्यसमाज द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाग्रों में उसने ग्रपने लिए विलक्षण स्थान बना लिया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री क्षितीश जी के जीवन ग्रौर चिन्तन, कथनी ग्रौर करनी में मेल है। ग्राज के युग में जब नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है ग्रौर ग्रधिकांश लोग केवल "गुफ्तार की गाज़ी" बनते जा रहे हैं—क्षितीश जी का जीवन उनके लेखों ग्रौर पुस्तकों की ग्रपेक्षा ग्रधिक प्रभावी ढंग से बोलता है ग्रौर दूसरों को प्रभावित करता है।

ऐसे युगपुरुष के 74 वें जन्म दिवस पर मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूं ग्रौर परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि वे वैदिक ग्रादर्श के ग्रनुसार कम से कम सौ वर्ष तक देश ग्रौर समाज को ग्रपने मौलिक चिन्तन ग्रौर ग्रनुकरणीय जीवन से लाभान्वित करते रहें।

—जे-303, शंकर रोड़
राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

पत्रकार शिरोमरिण क्षितीश जी : कुछ संस्मरण

–डॉ भवानीलाल भारतीय
ग्रध्यक्ष, दयानन्द शोधपीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

क्षितीश जी से मेरा परिचय उस समय से है जब वे हिन्दुस्तान दैनिक में थे। उस समय भी उनके लेखों को पढ़ने का ग्रवसर मिलता ही था। मैंने उनका भाषण कई वर्ष पहले ग्रार्यसमाज सरदारपुरा (जोधपुर) के वार्षिकोत्संव में सुना। उनकी पुस्तक 'जातिभेद का ग्रभिशाप' भी पढ़ी। जब उन्होंने हिन्दुस्तान के सम्पादकीय विभाग से ग्रवकाश ले लिया, तब तो वे ग्रार्यसमाज के ग्रौर ग्रधिक निकट ग्रा गये। ग्रब उन्हें 'ग्रार्य जगत्' जैसे पत्र का सम्पादन कार्य मिला जो ग्रार्य प्रादेशिक सभा के मुख पत्र की भूमिका का वहन तो करता ही है, ग्रार्यसमाज के पत्रों में सर्वाधिक पढ़ा जाने वाला लोकप्रिय पत्र भी है।

निश्चय ही क्षितीश जी का व्यक्तित्व ग्रार्यसमाज के लिये पूर्णतया समर्पित है। प्राय: ग्रार्य पत्रों के सम्पादन के कार्य की गुरुता को बहुत कम ग्रांका जाता है। इसके कई कारण भी हैं, किन्तु उन कारणों में न जाकर हम यही कहना चाहेंगे कि क्षितीश जी इस कार्य को जिस निष्ठा तथा संकल्प से कर रहे हैं वह सर्वथा उनके ग्रनुरूप ही है। उनकी लेखनी में बल है ग्रौर पाठक उनकी रचनाग्रों को रुचिपूर्वक पढ़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद सत्याग्रह के कारावास संस्मरणों को जिस हृदयग्राही शैली में उन्होंने लेखनी बद्ध किया तथा पंजाब की वर्तमान अराजकतापूर्ण स्थिति का ऐतिहासिक संदर्भ में मूल्यांकन करते हुए उन्होंने जो विशालकाय किन्तु शोधपूर्ण ग्रन्थ लिखा वह उनकी लेखन क्षमता का परिचायक है। उनकी 74 वीं वर्षगांठ के अवसर पर हम उनकी दीर्घायु के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

भाई क्षितीश जी !

—नरेन्द्र विद्या वाचस्पति
पूर्व सम्पादक 'लोकमत', सहायक सम्पादक
'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'

वर्षों पहले की बात है। उन दिनों हिन्दी के एक दैनिक और साप्ताहिक पत्र के सम्पादन के सिलसिले में नागपुर में कार्यरत था। अचानक एक दिन शाम को सदर स्थित हमारे ठिकानें पर भाई क्षितीश जी पधारे। एक पुराने स्नेही कुलबन्धु को उस दूरस्थ नगर में देख कर दिल प्रसन्न हो उठा। पूछा—"सब कुशल तो है।" उन्होंने अपने कुशल समाचार देने के बाद कहा—इस बार कुलभूमि के लिए कुछ धन एकत्र करने के लिए संकल्प किया था। इरादा था कि हैदराबाद एवं भोपाल में पुराने परिचय के बल पर कुछ धनसंग्रह कर लूंगा, पर दोनों ही स्थानों पर कुछ अशान्ति होने से वहां जाना सम्भव नहीं हुआ। अब सोचता हूं कि तुम्हारा यहां थोड़ा परिचय है, यदि सम्भव हो तो नागपुर में ही कुछ कार्य कर लिया जाए। स्नान-विश्राम के बाद जब कुछ सांस लेने की फुरसत मिली तो बोले—यदि फुर्सत हो तो श्री कृष्ण गुप्त जी (तत्कालीन मन्त्री,आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश-विदर्भ) से मिलना है। चलोगे ! मैं तुरन्त तैयार हो गया। गुप्त जी के न्यूकालोनी स्थित ठिकाने पर पहुंचने पर मालूम हुआ—गुप्त जी सख्त बीमार हैं। उनकी पत्नी ने कहा—डाक्टर ने किसी से भी मिलने से मना किया हुआ है। अभी हम पूछताछ कर ही रहे थे कि अन्दर से गुप्त जी की आवाज आई—"कौन हैं?" उनकी पत्नी ने कहा—सदर से नरेन्द्रजी आए हैं और उनके साथ गुरुकुल से कोई क्षितीश हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त जी बोले—'दोनों को आने दो।' हमारे अन्दर जाते ही गुप्तजी के रोगी शरीर में जैसे कोई नई उमंग भर गई हो। हम दोनों ने असमय आने के लिए क्षमा मांगी तो गुप्त जी बोले—'आज बहुत दिनों बाद मैंने अपने अतरंग मित्रों को देखा है।' हमने उनके स्वास्थ्य-लाभ की शुभकामना के साथ लौटना चाहा तो गुप्त जी ने कहा—आप की नागपुर यात्रा का मिशन क्या है। हमने बहुत टालने की कोशिश की तो उन्होंने हाथ जोड़कर आग्रह किया। यात्रा का लक्ष्य सुनते ही उन्होंने एक चैक काट कर उसे क्षितीश जी को देते हुए कहा—"अस्वस्थ हूं। अधिक कुछ नहीं कर सका। दुःख है। यह पत्र-पुष्प ही लीजिए।" फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले—"क्षितीश जी सोना आदमी हैं। 1941 में आर्यसमाज ने देश भर के आर्यबन्धुओं को निर्देश दिया था कि सब आर्य भाई-बहन आगामी जनसंख्या में अपने को आर्य लिखाएँ तो यह क्षितीश जी ही थे, जिन्होंने मध्यप्रान्त और बरार के शहर-शहर में घूम कर इस लक्ष्य को पूर्ण करने की अलख जगाई। प्रदेश में जो कुछ हुआ, उसके लिए मैं और आर्यसमाज क्षितीश जी को कभी नहीं भूल सकते। उन जैसा कर्मठ संगठनकर्त्ता समाज में कठिनाई से मिलेगा।"

* * *

उस बात को पचास वर्ष से अधिक समय हो गया। वर्षों तक एक कुल संस्था में साथ पढ़े, साथ खेले-कूदे, साथ ही भागीरथी के तट पर घूमे उसकी जलधाराओं में कूदे, गहन वन-प्रान्तों में भटके, उन दिनों के संस्मरणों अथवा उनके बाद के परिष्कृत व्यक्तित्व का पूर्ण मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। यह कहना अधिक अच्छा होगा कि उनका बहु आयामी व्यक्तित्व है। वह एक सफल पत्रकार,सूक्ष्म विवेचक,सुपठित आर्य विद्वान् और एक अच्छे घुमक्कड़ यात्री, पर्यटक और गम्भीर तथा सरस लेखन में सिद्धहस्त हैं। विद्यालय में अध्ययन के समय उनका प्रारम्भिक नाम क्षेत्रपाल था, उनके साहित्य गुरुओं ने कहा यह नाम तुम्हारे और संस्था के व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है। उन्होंने स्वयं अपना नाम बदल कर क्षितीश कर लिया। विद्यालय, महाविद्यालय में खूब अच्छा बोलते थे, अच्छा लिखते थे। दिल लगाकर पढ़ते थे। परन्तु जब उन्हें लगा कि अब यहां की जरूरी पढ़ाई से भी कहीं ज्यादा सत्याग्रह में अपना विनम्र योग देना कहीं ज्यादा है तो एक क्षण का संकोच किए बिना वह हैदराबाद सत्याग्रह में सम्मिलित हो गए। वहां उन्होंने कितने कष्ट झेले, वहां उनकी कितनी अग्नि परीक्षा हुई, उस सब की एक लम्बी कहानी उनके संस्मरणों में गुंथी हुई है। इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रसंग उनके जीवन में एक बार दुबारा भी आया था। जब पूर्वी पाकिस्तान सुलग रहा था और जब वह दिल्ली के एक हिन्दी दैनिक में अपना सम्पादकीय उत्तरदायित्व निबाह रहे थे, तब भी वह दूसरों के बासी समाचार और जानकारी से सन्तुष्ट न हुए और बांगला भूमि गए। उस विक्षुब्ध बंग-भूमि के विक्षोभ और हाहाकार से उपजे जन-संगठन और नए बंग सन्देश की झांकियां उनके विस्तीर्ण यात्रा-वृत्तान्त और संस्मरणों की बानगी उनकी 'बंगला देश : स्वतन्त्रता के बाद' नामक पुस्तक में मिलती है। उस समय के बंग देश की जानकारी और उनकी सूक्ष्म दृष्टि गजब की है।

इसी प्रकार जब पंजाब विक्षुब्ध हुआ, वहां आंतकवाद और सम्प्रदाय-वाद का घिनौना खेल शुरू हुआ तो इस सारे घटनाचक्र की पृष्ठभूमि उन्होंने अपने एक बहुचर्चित 'तूफान के दौर से पंजाब' ग्रन्थ में प्रस्तुत की। पंजाब में आतंकवाद और सम्प्रदायवाद को समझने में उनकी इस पुस्तक से जितनी मदद मिल सकती है उतनी उस दौर से निकली अन्य किसी पुस्तक से नहीं।

* * *

क्षितीश जी जल्दी ही अपने जीवन की हीरक-जयन्ती मनाएंगे। हृदय से यही मंगल-कामना है कि वह अपने जीवन की शताब्दी अवश्य मनाएं। वह 'आर्यजगत्' के यशस्वी सम्पादक हैं। उनकी गुणवत्ता और यशस्विता इसलिए अधिक सार्थक है कि वह स्वयं गुरुकुल संस्था की अमूल्य कलानिधि हैं और 'आर्य जगत्' पत्र डी. ए. वी. संस्थाओं का एक मुखपत्र। जिन दो संस्थाओं का व्यावहारिक जीवन में कम सामंजस्य होता है, उन दोनों का साहचर्य क्षितीश जी ने भली प्रकार निभाया। यह उनकी कुशलता है।

पत्रकारिता और सभाओं के मंचों पर उनकी वाग्मिता मन्त्रमुग्ध करने वाली है, उन क्षेत्रों में वह यशस्वी रहे हैं। दैनिक पत्र में कार्य करते हुए उनके लिखे ललित और साहित्यिक अग्रलेखों के तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इसी तरह उनके आर्य जगत् में लिखे सम्पादकीय अग्रलेखों को संजोकर सम्पादित कर कई ग्रन्थ रत्न प्रकाशित हो सकेंगे, इसका भी पूरा भरोसा है। परन्तु इससे भी कहीं अधिक क्षितीश जी से अपेक्षित है। वे किसी संस्था के केवल 'क्षेत्रपाल' न बनें, परन्तु पर्यटन, इतिहास, वर्तमान युग में कोई स्थायी मूल्य का अमर ग्रन्थ लिख सकें तभी वह अपने 'क्षितीश' नाम को सार्थक कर सकेंगे। लेखन, भाषण, पत्रकारिता, पर्यटन आदि जिस क्षेत्र में उन्होंने प्रयत्न किया, उन्हें यश मिला। पूर्ण विश्वास है कि स्थायी अमर साहित्य सृजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के क्षेत्र में जब वह प्रयत्नशील होंगे तब उसमें भी उन्हें यशस्विता अवश्य मिलेगी।

वह शतायु हों, उनकी लेखनी और वाणी **'न दैन्यं न पलायनम्'** का व्रत निभाती हुई 'अदीन' रह कर निरन्तर सृजन करती रहें, वह जीवन में और भी अधिक यशस्वी हों, यही हार्दिक मंगल कामना है।

—अभ्युदय, बी—22.
गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-110049

निर्भीक पत्रकार–क्षितीश वेदालंकार

—सरल कुमार
सहायक सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान

पंडित क्षितीश वेदालंकार निश्छल, निर्मल एवं निरभिमान व्यक्ति हैं। वे बनावट से कोसो दूर हैं। वे सच्चे कर्मयोगी हैं। उनसे परिचित कोई भी व्यक्ति इससे असहमत नहीं हो सकता।

मैंने उन्हें सदैव चिंतन, मनन, लेखन, गम्भीर विचार-विनिमय में निमग्न देखा है। मैं बरसों उनके सान्निध्य में रहा हूं और उनकी भाव-मुद्राओं का अर्थ भी जानने का प्रयत्न करता रहा हूं।

वे देखने में जितने साधारण हैं, गुणों में उतने ही असाधारण हैं। वे एक धारा बन चुके हैं। उस धारा में अनेक लोग बहे हैं और बहे जा रहे हैं। उनके व्यक्तित्व की छाप न पड़े, एक बार भी उनके सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति उन्हें भूल जाए, उनसे मार्गदर्शन पाने वाला उनका आभारी न हो,उनके तर्कपूर्ण विचार सुनने वाला अपनी मान्यताएं बदलने को बाध्य न हो, या उनकी विद्वत्ता का कायल न हो, यह नहीं हो सकता। वे प्रकृति से उदार और सत्य के पुजारी हैं। उन्होंने अपना स्नेह दोनों हाथों से लुटाया है।

पत्रकार के रूप में 27-28 वर्ष उनके साथ कार्य करने का मुझे सौभाग्य मिला है। लेकिन फिर भी मुझे उन्हें अपना साथी पत्रकार बताने में हिचक होती है, क्योंकि वह मेरे लिए केवल अग्रज नहीं, गुरु और मार्गदर्शक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी कुछ हैं। मैंने उनसे इतना कुछ पाया है कि उनका मूल्यांकन करने में असमर्थ हूं। उन्होंने एक प्रकार से मेरी जीवनधारा ही मोड़ दी है।

क्षितीश जी कद-काठी में छोटे हैं, लेकिन संकल्प के धनी हैं। कृत संकल्प होने पर कोई भी कार्य उनके लिए बड़ा नहीं रह जाता। शास्त्रीय विद्वत्ता, साहित्य ज्ञान, इतिहास और देश काल की स्थिति की जानकारी के सम्बन्ध में उनकी तुलना नहीं। वे उच्च कोटि के वक्ता हैं, और आश्चर्य नहीं कि इस विषय में उनकी सर्वत्र ख्याति है। मैंने उन्हें विद्वानों की सभाओं में श्रोताओं को अपने ज्ञान और धारा-प्रवाह भाषणों से चमत्कृत करते देखा है। अन्य जिन महानुभावों ने विविध विषयों पर उनके भाषण सुने हैं, वे साक्षी होंगे कि वह बड़ी-बड़ी सभाओं को घंटों मंत्र-मुग्ध किए रखते हैं। उनको सुनने के बाद व्यक्ति अतृप्त-सा रह जाता है।

मुझे अपने व्यक्तिगत अनुभवों से अधिक उनकी पत्रकारिता के विषय में लिखना चाहिये। उनमें वे सभी गुण हैं, जो एक सफल पत्रकार में होने चाहिये। उनमें अपूर्व देशभक्ति, जनता के प्रति दायित्व-बोध एवं सहानुभूति, सदा देश के उज्ज्वल भविष्य में आस्था, राजनीतिक सामाजिक आर्थिक समस्याओं की गहरी समझ, प्रभावशाली भाषा एवं लेखन शैली, छोटी से छोटी घटना पर भी उसके फलितार्थों पर चिंतन करना और सबसे ऊपर उसे पत्रकार-धर्म के निर्वाह के लिए उसे पाठकों तक पहुंचाने की उत्सुकता प्रचुर परिमाण में हैं। निर्भीकता पत्रकार का सबसे बड़ा गुण है जो उनमें कूट कूट कर भरा है। जन कल्याण के लिए वे समर्पित हैं और उन्होंने सामाजिक बुराईयों और राजनीतिक भूलों को उजागर करने में अपनी लेखनी को कभी कुण्ठित नहीं होने दिया।

वे बड़े सत्य शोधक हैं। जब तक कोई बात प्रमाणित नहीं हो जाती या जिसका प्रमाण वह न दे सकते हों, उसका उपयोग कहीं नहीं करते। असल में प्रामाणिक लेखन उनकी विशेषता रही है। मेरा यह मानना है कि सत्य के प्रति उनके आग्रह और जनहित के लिए उनके समर्पण ने ही उन्हें एक सफल पत्रकार, उच्च कोटि का लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता, सफल व्याख्याता और यायावर बनाया है। हैदराबाद सत्याग्रह और पंजाब के सिक्ख पृथकतावाद पर उनकी पुस्तकों ने तहलका मचा दिया है। वे इन विषयों की प्रामाणिक-ऐतिहासिक दस्तावेज मानी गई हैं।

भारत के प्रमुख दैनिक समाचार पत्र "हिन्दुस्तान" में उन्होंने बड़े ही प्रभावी एवं सारगर्भित अग्रलेख लिखे, जो भविष्य में शोधार्थियों को अतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को समझने में सहायक होंगे। उनके रविवासरीय ललित अग्र लेखों के तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जो पाठकों में बड़े लोकप्रिय सिद्ध हुए। सोद्देश्यता, साहित्यिकता, भाषा-सौष्ठव, सरलता और चुटीलापन उनकी विशेषता है। कटुतम बात भी उन्होंने मधुर शब्दों में लपेटकर ऐसे ढंग से कही है कि समझदार सुधी जन मन ही मन खिल उठते हैं।

यह बहुत कम लोगों को पता है कि क्षितीश जी की गम्भीर मुद्रा के पीछे उनका सहज विनोदी रूप भी छिपा है। उनकी सरल हंसी प्रभावित किए बिना नहीं रहती। वे अच्छे व्यंग्यकार हैं, जो मीठी चुटकी लेते हुए पाठकों की बांछे खिला देते हैं। "हिन्दुस्तान" के "यत्र-तत्र-सर्वत्र" स्तम्भ के पाठक उनको भूल नहीं सकते। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता में सम्पादन व समाचार-सज्जा के नये मापदण्ड स्थापित किए, जिनके लिए उन्हें एकाधिक बार पुरस्कृत भी किया गया।

पत्रकारिता तलवार की धार पर चलने के समान होती है। निहित-स्वार्थ वाली शक्तियां, शासन और सत्ताधारी पत्रकारों से रुष्ठ ही रहते हैं। क्षितीश जी ने कभी किसी की चापलूसी नहीं की। इसका खामियाजा भी उन्होंने कम नहीं उठाया। मेरा यह मानना है कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी होते हुए भी मूलतः वे पत्रकार ही हैं और अब भी पत्रकारिता में ही संलग्न हैं। सत्यान्वेषण और सत्य को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना उनका व्यसन है। वे अपनी लेखनी से बुद्धिजीवियों व युवकों में प्राण फूंकने और समाज को जागृत करने की क्षमता रखते हैं।

श्री क्षितीश वेदालंकार से मैंने एकलव्य की भांति शिक्षा पाई है, लेकिन उसकी तरह गुरु दक्षिणा देने में असमर्थ रहा हूं। मैंने उनसे शुद्ध, संयत, सुसंस्कृत, भाषा लिखना, उनकी नकल करते हुए सही शब्दों को संजोना-सीखने का प्रयास तो किया है, लेकिन बहुत सफल नहीं हुआ। मेरे लेखन में उनकी जैसी अभिव्यक्ति नहीं आई। मैं उनके गुणों को आत्मसात् नहीं कर सका। जीवन में उनकी सादगी, नियमितता, वचन-बद्धता, कर्त्तव्य निष्ठा, सदाचार और उनकी वाणी की मधुरता ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। गुरु होकर जब वे बराबरी का व्यवहार करते हैं तो मेरा सिर आदर से झुक जाता है।

उनकी यायावरी ने भी मुझे बहुत ललचाया है। हिमालय में पर्वता-रोहण, उनके द्वारा वैरियर एल्विन का बस्तर के जंगलों में पीछा, उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागालैंड, नेपाल एवं पूर्वांचल की यात्राओं, हैदराबाद आर्य-सत्याग्रह के उनके संस्मरणों को मैंने उनसे जितनी बार सुना, उतनी बार उनसे रोमांचित हुए बिना नहीं रहा। आखिर मुझे भी यायावर बना ही दिया। उनके साहसिक कार्य और खतरों की चिन्ता किए बिना सत्यान्वेषण के लिए उनकी लगन मेरे लिए प्रेरणा के स्रोत बन गए हैं। उन्होंने अपने बाद की पीढ़ी के युवा पत्रकारों को कष्ट-साधना की राह दिखाई जिस पर चलना सब के बूते की बात नहीं।

मैं स्वयं को उनके बहुत निकट पाता हूं। इसलिए भावी योजनाओं के बारे में कुछ कहने का अधिकारी हूं। वे अब भी कुछ नई पुस्तकों के लिए सामग्री जुटा रहे हैं जिनके पूरा होने की प्रतीक्षा है। पत्रकार के रूप में उनकी लेखनी निरन्तर चल रही है। समसामयिक समस्याओं पर उनके लेखों से पाठक अब भी प्रभावित होते हैं।

वे 73 वर्ष कब पार कर गये, पता ही नहीं लगा। इतनी आयु में भी उनमें संकल्प और उत्साह की कमी नहीं है। वह जो कुछ भविष्य में कर जाना चाहते हैं, उसके लिए ईश्वर उन्हें साधन भी अवश्य उपलब्ध करेगा, यह मेरा अन्तःकरण कहता है।

—सी-26, गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-49

ते नरवर थोरे जगमांही

—अशोक कौशिक

'स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः' यह भागवत पुराण का वचन है। इसका अर्थ है— सन्त लोगों के पदार्पण से स्वयं तीर्थ ही पवित्र होते हैं। मैंने इस पुराणवाक्य का यहां पर प्रयोग इसलिये किया है क्योंकि मेरा और क्षितीश जी का परिचय 'आर्य जगत्' के माध्यम से हुआ है। और तब मैंने देखा है कि आर्य जगत् के कारण पण्डित जी की नहीं अपितु पण्डित जी के कारण 'आर्य जगत्' की ख्याति है अर्थात् उनके आगमन से 'आर्य जगत्' रूपी तीर्थ पवित्र हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग सवा चार वर्ष पूर्व मैं 'आर्य जगत्' में आया। उससे पूर्व पण्डितजी का और मेरा प्रत्यक्ष परिचय कम ही था, बस पहचान भर थी। एक बार सन् 1970 में जब मैं गुरुदत्त अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन कर रहा था तो उस समय मुझे उसके लिये पण्डित जी का लेख मिला था। उसको पढ़ कर मैं उनकी लेखनी का कायल हुआ था। दैनिक हिन्दुस्तान में मैंने उनके लेख पढ़े थे, किन्तु उनके द्वारा लिखित सभी लेखों में तो उनका नामोल्लेख होता नहीं था, अतः तब यह समझ पाना कठिन होता था कि इस स्तम्भ में यह लेख किसका होगा।

पण्डित जी की जन्म तिथि के विषय में भी मुझको आर्य जगत् के माध्यम से ही ज्ञान हुआ था। सितम्बर 1985 में श्री क्षेमचन्द्र सुमन के जन्म दिवस पर आर्य जगत् में एक लेख प्रकाशित हो रहा था। उस समय बात करते हुए पण्डित जी के मुख से निकल गया— 'हम दोनों की एक ही जन्म-तिथि है और राशि का नाम भी दोनों का 'क्ष' अक्षर से है।' उस समय मुझे विचार आया कि पण्डित जी पर किसी ने क्यों नहीं लिखा। उससे अगले वर्ष उनकी जन्म-तिथि पर मैंने एक-एक छोटा सा लेख पण्डित जी एवं सुमन जी, दोनों पर दिया था। तब तक मेरा उनसे एक वर्ष का परिचय हो गया था और विगत चार वर्ष से मैं उनके निकट सम्पर्क में हूं इसलिये कह सकता हूं कि अब मैं उनको 'कुछ-कुछ' जानता हूं।

इस अवसर पर मेरे मानस पटल पर सुमन जी की दो पंक्तियां उभर रही हैं—

जानता मैं जो विपद् की, आंधियों में मुस्कुराते।
वे व्रतीजन ही जगत में, शीर्ष का हैं स्थान पाते॥

भागवत पुराण के उस कथन में और सुमन जी की इन पंक्तियों में पर्याप्त साम्य है। पण्डित जी आधिकारिक रूप से आज आर्यसमाज के किसी शीर्ष पद पर भले ही प्रतिष्ठित न हों किन्तु उन्हें समाज में शीर्ष का स्थान प्राप्त है—इसमें दो राय नहीं हो सकतीं।

उन्हीं शीर्षस्थ पण्डित क्षितीश कुमार वेदालंकार के जीवन का संक्षिप्त परिचय यहां पर देने का प्रयास कर रहा हूं।

आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा :

नितान्त अपठित पिता की अत्यन्त सुपठित संतति पण्डित क्षितीश कुमार वेदालंकार का जन्म पुरानी दिल्ली के एक पुराने मौहल्ले में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16-9-1916 को हुआ था। उनके पिता लाला मानकचन्द अपठित भले ही रहे हों किन्तु उनका रहन-सहन, शील-स्वभाव अत्यन्त शिष्ट था। वे सरल स्वभाव के मृदुभाषी, विनम्र और सामर्थ्यानुसार हर किसी जरूरतमन्द की सहायता करने के लिये सदा तत्पर रहने वाले व्यक्ति होने के साथ-साथ धुन के धनी और कार्य-कुशल भी थे। वे कपड़े का व्यापार करते थे। उस युग में मानचेस्टर और लंकाशायर से सीधे उनके 'मानक' के कोडनेम से तार आया करते थे। वे स्वयं अनपढ़ होने के कारण अपने अंग्रेजी पढ़े लिखे क्लर्क से कहते कि 'तार में लिखे अंग्रेजी के अक्षर मुझे बता दो।' और फिर वे उस तार का उत्तर तार से ही तुरन्त दिलवा देते।

उनके विषय में यह भी विदित हुआ कि किसी स्कूल या पाठशाला की शक्ल न देखने पर भी वे वहीखाते की विद्या में, मुनीमगिरी में, इतने कुशल थे कि अपने परिचित वर्ग में वे 'उस्ताद जी' के नाम से विख्यात थे। 'उस्तादजी' जैसे उनके नाम का पर्याय ही बन गया था। वे जुबानी हिसाब किताब में माहिर माने जाते थे। एक बार आर्यसमाज के उस युग के विद्वान् पं. व्यासदेव शास्त्री ने उनकी एतद्विषयक कीर्ति सुन कर उनसे कहा कि 'हम आपकी परीक्षा लेंगे और यदि आप उसमें उत्तीर्ण हो गये तो भविष्य में हम भी आपको गुरु मान लेंगे।' अगले दिन सचमुच ही गणित का बहुत ही टेढ़ा-सा प्रश्न सोच-साच कर वे आये और लाला मानकचन्द को उसका मौखिक उत्तर देने को कहा तो दूसरी ओर एक मुनीम को कागज पर उस प्रश्न को हल करने के लिये कह दिया। उस्तादजी ने डेढ़ मिनट में प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा— 'इस उत्तर में केवल एक पाई कम या अधिक हो सकती है।' दूसरे मुनीम को कागज पर प्रश्न हल करने में पूरे चालीस मिनट लगे और तब पता लगा कि उस्तादजी के उत्तर में सचमुच में ही एक पाई का अन्तर था। उसके उपरान्त श्री व्यासदेव जी जब भी उनसे मिलते, सदा अत्यन्त श्रद्धाभाव से उन्हें 'गुरुजी' कहकर नमस्कार करते। अस्तु।

पण्डित जी की प्रारम्भिक शिक्षा दिल्ली के चर्खेवालान के कर्मशियल हाई स्कूल में हुई थी। कक्षा 3 तक वहां पढ़ने के बाद उनको गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में भेज दिया गया। तब तक मानकचन्द जी आर्यसमाज और विशेषतया पं. रामचन्द्र देहलवी के सम्पर्क में आ चुके थे। उनके क्रियाकलापों से प्रभावित होने के कारण उनके ही परामर्श से उन्होंने अपने पुत्र को गुरुकुल में पढ़ाने का निश्चय किया। महाविद्यालय ज्वालापुर में वे एक वर्ष में ही तीसरी कक्षा में पहुंच गये। क्योंकि हिन्दी और गणित आदि तो पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही आती थी, संस्कृत और उसका व्याकरण नहीं आता था। सो एक वर्ष में तीसरी कक्षा में पहुंचना ही था। ममतामयी मां जब अपने पुत्र को मिलने के लिये एक बार ज्वालापुर गई तो पढ़ाई के साथ-साथ बालक के सुपोषण की दृष्टि से उसे गुरुकुल कुरुक्षेत्र में भर्ती करा दिया।

गांधी जी का प्रभाव :

गुरुकुल कुरुक्षेत्र में भर्ती होते समय बालक क्षितीश की आयु दसेक वर्ष की रही होगी। चौथी पांचवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते उनके विचारों में किशोरावस्थोचित उबाल आना आरम्भ हुआ। सन् 1929-30 की बात होगी। भारत में गांधी की आंधी आरम्भ हो चुकी थी। इस किशोर मन पर भी गांधी के आंदोलन का रंग चढ़ना आरम्भ हुआ। छठी कक्षा में पहुंचने पर केवल खद्दर पहनने का संकल्प कर लिया। अपने पिता के साथ उस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर गये तो अपने लिये वहां से खद्दर खरीद कर एक कमीज और नेकर सिलवा ली। गुरुकुल कुरुक्षेत्र में तब तक खद्दर का कपड़ा नहीं आता था। वहां के ब्रह्मचारी मिल के कपड़े की ही कमीज और नेकर पहनते थे। ये अपनी उसी एक कमीज और नेकर को मैला हो जाने पर धो लेते और सूखने पर पहन लेते। एक कमीज और नेकर कब तक चलती ? एक बार दोनों फटे तो फिर समस्या उत्पन्न हो गई। एक मास तक केवल एक लंगोटी पहन कर ही आश्रम और विद्यालय में रहते और जाते रहे। अन्त में इनके हठ के आगे झुककर गुरुकुल के अधिकारियों ने इनके लिये अलग से एक खद्दर का थान मंगवाया।

लगभग उन्हीं दिनों गांधी जी ने सत्याग्रह आरम्भ किया तो विद्यार्थी क्षितीश ने आचार्य महोदय के सम्मुख इच्छा व्यक्त की कि 'सत्याग्रह आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के लिये मैं पढ़ाई छोड़ना चाहता हूं।' आचार्य महोदय ने बालक को अनेक प्रकार से समझाने का यत्न किया किन्तु सब व्यर्थ। बालक अपने आग्रह पर अटल रहा तो आचार्य महोदय ने उसके पिता को इसकी सूचना दी। पिता उन दिनों रावलपिण्डी में थे। वहां गुरुकुल में आकर पुत्र को समझाने का यत्न किया। वह नहीं माना तो उसे गुरुकुल से गांव वाले घर में ला कर रख दिया और स्वयं अपने कार्य पर वापस रावलपिण्डी चले गये। एक मास बाद वहां से लौटने पर पिता ने पुत्र से पूछा, अब बोलो, क्या कहते हो ? पुत्र समझ गया कि सत्याग्रह में तो कोई जाने नहीं देगा। अतः कह दिया, 'पढ़ाई तो गुरुकुल में ही करूंगा।' इस प्रकार पुनः गुरुकुल कुरुक्षेत्र पहुंच गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित जी का कट्टर गांधीवादी होना ही हम दोनों के परिचय का भी कारण बना। सन् 1948 के अन्त की बात होगी। मैं उन दिनों संघ का प्रचारक था। गांधी जी का वध हो चुका था और संघ पर प्रतिबन्ध लग गया था। अधिकांश प्रचारक, अधिकारी, स्वयंसेवक पहले ही पकड़े गये थे या फिर प्रतिबन्ध के विरुद्ध सत्याग्रह करके बन्दी बन गये थे। जो थोड़े भूमिगत कार्य कर रहे थे उनमें से मैं भी था। मैं संघ के कार्य से लखनऊ गया था और वहां से वापस दिल्ली आ रहा था कि रेल के डिब्बे में गांधी जी के वध, संघ पर प्रतिबन्ध और उसके सत्याग्रह पर कुछ लोगों में विवाद उठ खड़ा हुआ। तब मैंने देखा कि एक श्वेत खादीधारी नाटा सा युवक गांधीवाद की प्रतिष्ठा के लिये सहयात्रियों से जूझ रहा है। मुझ सहित अधिकांश यात्री उनके विचारों से सहमत नहीं थे, मैं तब कुछ बोल नहीं सकता था, अतः चुप रहा। किन्तु उनके तर्क से मैं प्रभावित हुआ यद्यपि उनके निष्कर्ष से मैं पूर्णतया असहमत था। यही मेरा उनका प्रथम परिचय था। विवाद शान्त होने के उपरान्त मैंने उनसे परिचय किया, तब मुझे उनका नाम आदि विदित हुआ। उस समय वे दैनिक 'वीर अर्जुन' में कार्यरत थे और उपदेशकी उनका पुराना पेशा होने के कारण अवसर मिलने पर उसको भी निभाते थे। आर्य समाज के किसी वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देकर वे दिल्ली लौट रहे थे।

गुरुकुल कांगड़ी :

गुरुकुल कुरुक्षेत्र में आठवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त कर नवीं तथा दसवीं के लिये उनको गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ जाना पड़ा। 1934 तक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में पढ़े और दसवीं उत्तीर्ण करने के उपरान्त गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में पहुंच गये। वे बड़े ही मेधावी थे। सदा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते थे। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेकर प्रथम स्थान प्राप्त करके स्वयं गौरवान्वित होते और अपनी कक्षा तथा अपनी संस्था को भी गौरवान्वित करते। वे जब गुरुकुल कांगड़ी में 11वीं कक्षा के छात्र थे तभी वहां संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन हुआ और उसमें उन्होंने 13वीं और 14वीं कक्षा के अन्यतम डिबेटरों को पराजित कर प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

वाद-विवाद प्रतियोगिताओं के अतिरिक्त वे साहित्य की विभिन्न गतिविधियों में भी भाग लेते रहे। विद्यालय की हस्तलिखित पत्रिका में लेख लिखते। स्व-निर्मित संस्कृत श्लोकों की अन्त्याक्षरी में बढ़चढ़ कर भाग लेते। खेलों में रुचि कम नहीं थी। हॉकी और बॉली-बाल उनके प्रिय खेल थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि खेल के क्षेत्र में उनकी कोई उपलब्धि नहीं है। उसका कारण भी उनकी अकुशलता नहीं अपितु चयनकर्ताओं की यह भावना थी कि अच्छे पढ़ाकू विद्यार्थी अच्छे खिलाड़ी नहीं हो सकते। यद्यपि एक बार दस मील की दौड़ में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। पर्यटन और भ्रमण में भी उनकी खूब रुचि रही है। विद्यार्थी जीवन में ही हिमालय की अनेक यात्राओं के साथ-साथ वे कैलाश मानसरोवर तक हाथ मार आये थे। पत्रकार और उपदेशक जीवन में तो उन्हें देश भ्रमण का अच्छा अवसर मिला तो उन्होंने भारत का कोई सीमान्त पादाक्रान्त किए बिना नहीं छोड़ा।

हैदराबाद सत्याग्रह :

गुरुकुल कांगड़ी में पण्डित जी अन्तिम वर्ष में थे कि तभी आर्यसमाज की ओर से हैदराबाद सत्याग्रह का बिगुल बज उठा। हैदराबाद सत्याग्रह क्यों करना पड़ा, इसकी कहानी लम्बी है, वह पृथक् लेख अथवा पुस्तक का विषय है और पण्डित जी ने इस विषय पर 'निजाम की जेल में' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी भी है। संक्षेप में इतना बताना आवश्यक है कि निजाम ने अपने राज्य में हिन्दुओं का रहना दूभर कर दिया था, पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना-पढ़ाना, अपने विद्यालय अथवा समाचारपत्र चलाना, इतना ही नहीं बाहर से भी हिन्दू समाचार पत्रों का मंगाना आदि सब पर प्रतिबन्ध लगाने के साथ-साथ उसने छल-बल से हिन्दुओं का धर्मान्तरण करना भी आरम्भ किया हुआ था। निजाम के अत्याचार और अनाचार की यह सूची वहुत लम्बी है। ऐसे में आर्यसमाज जैसी संस्था भला किस प्रकार चुप बैठी रहती, और आर्यसमाज आह्वान करे तो पण्डित जी भला किस प्रकार शान्त और चुप बैठे रहते।

ज्यों ही पण्डित जी ने सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय किया तो इनकी कक्षा के अन्य साथियों ने और स्वयं मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य ने उनके इस निश्चय का विरोध किया। कहा गया कि एक तो वे दुबले-पतले और छोटे से हैं, जेल की भीषण यातना नहीं सह पायेंगे। दूसरे यह उनका अन्तिम वर्ष है, उनको उपाधि मिलने वाली है। जनवरी 1939 को गुरुकुल कांगड़ी में सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी का तार पहुंचा था और फरवरी के अन्तिम सप्ताह में स्नातक परीक्षा होने वाली थी। किन्तु पण्डितजी की प्रेरणा से ही गुरुकुल के कुछ विद्यार्थियों ने इस सब को तिलांजलि दी और सत्याग्रह यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये निकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े। पण्डित जी उस जत्थे के नेता थे और यही आर्य-सत्याग्रह का सबसे पहला जत्था था।

गुरुकुल कांगड़ी से दिल्ली आये। दिल्ली में सत्याग्रहियों के माता-पिता नाते-रिश्तेदार आदि सभी ने समझाने का यत्न किया, किन्तु सबका यत्न विफल हुआ। किसी भी सत्याग्रही ने वापस मुड़ने का नाम नहीं लिया। माताओं और बहनों का रोना भी उनको उनके निश्चय से डिगा नहीं पाया। आखिरकार दिल्ली से विदा हुए। वर्धा आदि स्थानों पर रुकते हुए हैदराबाद पहुंचे और 5 फरवरी 1939 को योजनाबद्ध रूप से सत्याग्रह करके कारागार रूपी 'कृष्ण मन्दिर' में पहुंच गये। (उन दिनों कारागार कृष्ण मन्दिर नाम से ही प्रसिद्ध हो रहा था।) जेल जीवन कोई क्लब जीवन तो होता नहीं, वह तो यातनाओं और ताड़नाओं का जीवन था, और फिर उस पर निजाम की जेल। क्या-क्या नहीं करना पड़ा और क्या क्या नहीं सहना पड़ा। आर्यसमाज और देश के लिये इन ब्रह्मचारी सत्याग्रहियों ने सब सहा, किन्तु मुख से उफ तक नहीं की।

मुझे इस अवसर पर भोज की पंक्तियां स्मरण हो रही हैं—

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधिः,
विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्षसकुलं,
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

—"लंका को जीतना है, समुद्र को भी पार करना है, रावण जैसा राक्षस राज शत्रु है, युद्धभूमि में सहायता करने वाले केवल वानर जाति के लोग हैं। इतने पर भी बिना रथ पैदल चलने वाले राम ने राक्षसकुल को नष्ट कर दिया। सच ही कहा है कि सफलता दृढ़ संकल्प से ही मिलती है, न कि बढ़िया उपकरणों से।"

हैदराबाद सत्याग्रह में ब्रह्मचारियों तथा अन्य आर्य बन्धुओं के दृढ़-संकल्प से ही दशाननरूपी निजाम पर विजय प्राप्त की गई। 5-2-1939 को सत्याग्रह करके निजाम की जेल में गये और 17-8-1939 को सब के साथ जेल से बाहर आ गये।

वेदालंकार की स्नातक परीक्षा तो फरवरी के अन्त में या मार्च के आरम्भ में ही सम्पन्न हो गई, जब पण्डित जी निजाम की कारा में बन्द थे। जैसा कि हम पहले ही लिख आये हैं कि पढ़ने में वे तेज थे और सदा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम श्रेणी में अथवा प्रथम स्थान पर रहा करते थे। अतः गुरुकुल के शिक्षा पटल ने उनके विगत वर्षों के अध्ययन को ध्यान में रखकर उनको इस योग्य समझा कि स्नातक परीक्षा दिये बिना ही उन्हें वेदालंकार की उपाधि से विभूषित किया जाय। इस प्रकार जब पण्डित जी जेल में थे तभी उनका उपाधि-पत्र उनके घर पहुंच गया।

उपदेशक के रूप में :

वक्तृता में पण्डितजी का कमाल तो उनके विद्यार्थी जीवन में ही देखा जा चुका था और हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर अपने जत्थे का नेतृत्व करते हुए उन्होंने अपने नेतृत्व एवं संगठन शक्ति का प्रमाण भी प्रस्तुत किया था। अतः जेल से बाहर निकलने के उपरान्त उनको सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने उपदेशक बना कर मध्य प्रदेश और विदर्भ में प्रचारार्थ भेज दिया। सन् 1941 की जनगणना समीप थी। पण्डित जी का कार्य था जन-जन को जागृत कर मतगणना के अवसर पर स्वयं को 'आर्य' लिखाने के लिये तैयार करना। पण्डितजी ने इसमें भी कीर्तिमान स्थापित किया। जनगणना होने पर मध्यप्रदेश और विदर्भ की जनता ने स्वयं को 'आर्य' लिखवाने में अनुपात की दृष्टि से सारे भारत का रिकार्ड तोड़ दिया था, जिन्हें देखकर अंग्रेज अधिकारी भी चकित रह गये थे।

1941 में उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तर्गत उपदेशक के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया और 1947 में देश विभाजन तक वे बड़ी लगन से अपना दायित्व पूर्ण करते रहे। इस दिशा में भी उन्होंने कम यश नहीं कमाया। इसी बीच सन् 1944 में पण्डित जी का विवाह सम्पन्न हुआ। बिना किसी दान-दहेज के उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह किया, जिसका 30 ग्रामों की पंचायत ने घोर विरोध किया। किन्तु वर और वधू दोनों के परिवार पक्के आर्यसमाजी थे, इसलिये अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। पण्डित जी की पत्नी भी गुरुकुल हाथरस की स्नातिका हैं और अपने विवाह में कन्या से सम्बन्धित मन्त्रों का उन्होंने स्वयं उच्चारण किया। गांव वाले यह देखकर आश्चर्य चकित थे। उस युग में तो नव-वधू को घूंघट में घुटी-दबी रहना होता था। किन्तु ये वर-वधू दोनों ही विलक्षण थे। विवाह के एक सप्ताह पूर्व से पण्डितजी के श्वसुर गृह के बाहर आर्यसमाज का प्रचार चल रहा था जिसमें अनेक विद्वान् और भजनोपदेशक आये हुए थे। विवाह वाले दिन शाम को कार्यक्रम का समापन होना था। पण्डित जी जैसा विख्यात उपदेशक नगर में विद्यमान हो और वहां उसका प्रवचन न हो, यह कैसे सम्भव था। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने श्वसुर गृह के बाहर खुले प्रांगण में पण्डित जी का जात-पात के विरोध में बड़ा मार्मिक व्याख्यान हुआ, जिसमें भारी भीड़ उमड़ पड़ी। उसी व्याख्यान से कार्यक्रम का समापन हुआ।

कर्त्तव्यपरायण एवं विदुषी पत्नी

पण्डित जी सन् 1947 के मध्य तक प्रतिनिधि सभा के उपदेशक रहे। अर्थात् विवाहोपरान्त चार वर्ष तक वे निरन्तर समाज की सेवा में ऐसे लगे रहे कि सप्ताह-दस दिन में कभी एकाध दिन के लिये घर जाते और फिर दौरे के लिये निकल पड़ते। कदाचित ऐसे ही जनों के लिये कालिदास ने कुमार सम्भव में लिखा है—

क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्।

पति को अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ाने का मूल कारण सती-साध्वी पत्नियां ही होती हैं। यदि पण्डित जी की नव-विवाहिता पत्नी भी आग्रह करती कि 'छोड़ो इस उपदेशकी को यायावरी जीवन को' तो कदाचित पण्डित जी को सोचने के लिये विवश होना पड़ता। किन्तु लगता है कि इनकी पत्नी ने हर-हाल में खुश रहने का मन्त्र जपते हुए इनको कभी समाज सेवा से विरत होने को नहीं कहा। भले ही स्वयं कितना ही कष्ट सह लिया।

ऐसी विदुषी पति-परायणा और अपने पति के जीवन के साथ तादाम्त्य स्थापित करने वाली सत्पत्नी भी सौभाग्य से ही प्राप्त होती है।

अपने उपदेशक जीवन में पण्डितजी प्रतिवर्ष गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर कांगड़ी में उपस्थित रहते थे और व्याख्यान भी देते थे। गुरुकुल में पण्डित जी के व्याख्यान की धूम रहती थी। जब आर्यसमाज बच्छोवाली के वार्षिकोत्सव पर इनका पहला व्याख्यान हुआ, तब महाशय कृष्ण ने उन दिनों अपने पत्र 'प्रकाश' में इन पर लेख लिखते हुए इन्हें नवीन शैली का वक्ता और आर्यसमाज को नई उपलब्धि बताया था। उनकी इस शैली के कारण ही चारों ओर से उनकी मांग रहा करती थी। यही स्थिति आज भी है। आज भी, दिल्ली ही नहीं, अपितु दूरस्थ प्रदेशों के आर्य जन भी पण्डितजी से अपने नगर के वार्षिकोत्सवों में आने का आग्रह करते रहते हैं।

कुशल पत्रकार के रूप में

'सफल उपदेशक सफल पत्रकार भी बने, यह आवश्यक नहीं है' यह कह कर एक प्रसिद्ध पत्र के प्रसिद्ध सम्पादक ने इनको अपने पत्र में स्थान नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। किन्तु दैनिक अर्जुन और दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादकीय विभाग में कार्य करके पण्डित जी ने इस कथन को भी झुठला दिया। पण्डित जी ने 1947 से 1952 तक दैनिक अर्जुन में और उसके बाद 1952 से 1979 तक दैनिक हिन्दुस्तान में कार्य किया। इन दोनों ही पत्रों में पण्डितजी के कार्य की सदा सराहना हुई। यह दूसरी बात है कि चाटुकारिता के दुर्गुण से विहीन और सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति को उसका प्राप्तव्य नहीं मिल पाया। इस कारण इनको कितनी मानसिक यातना झेलनी पड़ी इसे वे ही जानते हैं। किन्तु इन्होंने कभी झुकना नहीं सीखा। पण्डित जी अपने सिद्धान्त से नहीं डिगे और न उन्होंने चाटुकारिता को अपनाया। दैनिक हिन्दुस्तान में पण्डित जी ने अनेक स्तम्भों में अनेक प्रभावी लेख लिखे और अन्तिम तीन वर्षों में तो वे निरन्तर 'रविवारीय' सम्पादकीय भी लिखते रहे, जिन्हें साहित्यिक जगत में खूब सराहा गया।

अध्ययन और भ्रमण पण्डितजी का शौक रहा है। आयु और शरीर ने अब भ्रमण की अभिलाषा को विराम लगा दिया है, किन्तु अध्ययन निरन्तर जारी है। उस अध्ययन का ही यह परिणाम है कि पण्डितजी जीवन के यथार्थ से सदा जुड़े रहे। इस प्रसंग में 'बच्चन' की ये पंक्तियां बड़ी सार्थक हैं—

करे कोई निन्दा दिन-रात, सुयश का कोई पीटे ढोल।
किये अपने कानों को बन्द, रही बुलबुल डालों पर डोल॥

पण्डित जी विगत 10 वर्ष से 'आर्यजगत्' से जुड़े हुए हैं। इस अवधि में पत्र ने कितनी प्रगति की है, यह आर्यसमाज के क्षेत्र में चर्चा का विषय बना रहता है। आर्य जगत् में प्रकाशित होने वाले सभी पत्र-पत्रिकाओं के कर्ता-धर्ता जब अपनी स्थिति का विश्लेषण करने बैठते हैं तो वे 'आर्य जगत्' की प्रगति और उन्नति का उल्लेख किये बिना नहीं रहते।

शत्रु पर भी मित्र-दृष्टि

विगत 5 वर्ष से मैं उनके सहयोगी के रूप में कार्यरत हूं। इस अवधि में मुझे उन्हें अत्यन्त निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनके सरल स्वभाव का वर्णन करूं तो कहना होगा—

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु फूलहि फलहि पर हेत।
इत ते वे पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

जी हां, यह वस्तुस्थिति है चाटुकारिता नहीं। मैंने देखा है कि एक सज्जन लाठी लेकर उनके पीछे पड़े रहे, क्योंकि ये उनके तथा-कथित लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं छापते थे। वे उनको आस्तीन का सांप, भयंकर विषधर, कुत्ते की औलाद, आर्य समाज का कलंक, चुल्लूभर पानी में डूब मरने योग्य, नितान्त निर्लज्ज आदि और भी न जाने क्या गालियां देते रहे। पण्डित जी ने उनकी किसी गाली का कोई उत्तर नहीं दिया। उनके मत में भर्तृहरि के अनुसार—

जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम्।

—जो जिसके पास है वह वही तो दे सकता है। और जब इसी अवधि में उन गाली देने वाले सज्जन को स्वतन्त्रता सेनानी माने जाने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने लगी तो पण्डित जी ने समिति के सम्मुख आग्रह किया कि 'वे स्वतन्त्रता सेनानी रहे हैं, अतः उनको पेंशन प्राप्त होनी ही चाहिये।' उसके पत्थर मारने का यह फल पण्डित जी ने उसको दिया। कभी किसी का अपकार न करना और सबको मित्र की दृष्टि से देखना पण्डित जी का स्वभाव है।

पण्डित जी के परिवार में पत्नी के अतिरिक्त दो पुत्र तथा पुत्र-वधुयें और चार पौत्र हैं। दो कन्यायें अपने-अपने परिवार में सुस्थापित हैं। सभी सन्तानें सुपठित और सुनियोजित हैं। जहां किसी युग में समय पर वेतन न मिलने के कारण अखबारों की रद्दी बेच कर उन्होंने अपने दिन निकाले वहां आज नई दिल्ली की पत्रकारों की बस्ती में उनका अपना मकान है, बड़े पुत्र का अपना प्रकाशन एवं मुद्रण का स्थापित व्यवसाय है और पुत्रवधू बैंक की अधिकारिणी है। और द्वितीय पुत्र आई. आई. टी. में प्राध्यापक हैं और अभी हाल में वे इसी कार्य के निमित्त एक वर्ष के लिये सपरिवार अमेरिका गये हैं। उनकी दूसरी पुत्रवधू भी अध्यापिका हैं।

सिद्धान्तनिष्ठ दृढ़व्रती

वर्तमान समय में पत्रकारों के विषय में लोगों के मन में विचित्र धारणायें होती है। उन्हीं की बस्ती के सामुदायिक केन्द्र में पत्रकार-जन 'मधुशाला' की स्थापना के लिये कटिबद्ध थे। पण्डित जी को पता चला तो उन्होंने उसके विरोध में भूख-हड़ताल की घोषणा कर दी। उनके दृढ़ निश्चय के सम्मुख उन लोगों को झुकना पड़ गया। वे अब भविष्य में इसकी स्थापना नहीं कर पायेंगे। स्वयं पत्रकार और पत्रकारों की संगति तथा उनकी ही बस्ती में रहते हुए वे बदरंग नहीं हुए। ऐसे ही लोगों के लिये रहीम ने कहा था—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते,

येषां न चेतांसि त एव धीराः ।।कु. सं.।।

—उन्हीं व्यक्तियों को दृढ़ निश्चय वाला कहा जा सकता है, जो कठिनाइयां आने पर भी विचलित नहीं होते। अपने इस कर्त्तव्य से पण्डित जी दृढ़ निश्चयी सिद्ध हुए हैं।

गागर में सागर को समेटना सहज नहीं है और न यह सबकी सामर्थ्य में ही है। मैं भी स्वयं को सर्वथा असमर्थ पा रहा हूं। अतः अपने कुछ मानसिक उद्गार ही, जो मैं विगत पांच वर्षों से अपने मन में संजोये हुए था, उन्हें यहां व्यक्त करने का प्रयास किया है। पण्डित जी लेख के नहीं, पुस्तक के विषय हैं। यही कारण है कि उनके विचार-पक्ष पर, उनकी रचनाओं पर, यहां कुछ भी नहीं कह पाया हूं। उस महत्वपूर्ण पक्ष पर फिर कभी।

अन्त में—

मन्थन गति शिथिल न हो, हां और त्वरा कुछ आये।

रत्न अभी रत्नाकर, जाने कितने दे मन भाये ।। अज्ञात ।।

—7-एफ, कमला नगर, दिल्ली–110007

साहित्य और सिद्धान्त के महान् साधक भाई क्षितीश जी

—डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

वरिष्ठ प्रवक्ता हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली

भाई क्षितीश जी से मैं तभी से परिचित हूं जब मैं गुरुकुल कांगड़ी में विद्यालय विभाग में एक छात्र था। क्षितीश जी प्रतिवर्ष गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर आते और अपना व्याख्यान देते। मैं इनके व्याख्यान की शैली से अत्यधिक प्रभावित था। शैली से भी अधिक इनका विषय और उस विषय का प्रतिपादन अत्यन्त रोचक होता था। व्याख्यान का शीर्षक साहित्यिक व अन्य वक्ताओं के शीर्षकों से सर्वथा पृथक् होता था। मुझे याद है, एक बार उनके व्याख्यान का शीर्षक था—'सोने का मन्दिर, माटी की मूरत।' मैं सोच नहीं पा रहा था कि भाई जी इस विषय के माध्यम से क्या प्रतिपादित करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने अत्यन्त रोचक ढंग से सरकारी वैभव का चित्रण करके उनकी निरर्थक नीतियों का वर्णन किया। आर्यसमाज के मंचों पर वेद और यज्ञ के अतिरिक्त भारतीय समाज व राजनीति को जितनी स्पष्टता व तेजस्विता के साथ भाई जी प्रस्तुत करते थे, वह हम छात्रों के लिए अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक था, साथ ही उनमें उद्बोधन की भी शक्ति थी।

जब मैं महाविद्यालय में आया तो उनकी एक पुस्तक 'आर्यसमाज में गुरुकुल की आहुति' मेरे हाथ लग गयी। 'आहुति' में उनके तथा उनके साथियों के हैदराबाद सत्याग्रह जाने व निज़ाम शासन की क्रूरताओं का वर्णन था। पुस्तक बहुत ही छोटी थी, पर इतनी सरस व रोचक कि मुझे लगा कि मैं स्वयं हैदराबाद सत्याग्रह में होकर आया हूं। उनकी भाषा में अद्भुत चित्रात्मक शक्ति थी। हैदराबाद का सत्याग्रह और निज़ामी शासन की विद्रूपताएं लेखक के मस्तिष्क और हृदय पर इतनी छायीं थी कि 50 वर्षों के बाद 'आर्यजगत्' में उन्होंने उसका पूरा इतिहास ही विस्तारपूर्वक लिख डाला। जो 'निज़ाम की जेल में' नाम से अब पुस्तक रूप में प्रकाशित है।

महाविद्यालय में ही पढ़ते हुए हमें पता चला कि भाई क्षितीश जी दिल्ली में दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादकीय विभाग में हैं और उस पत्र के लोकप्रिय स्तम्भ 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' के एक लेखक भी हैं। 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' कालम का हिन्दी पत्रकारिता में विशिष्ट स्थान रहा है। दैनिक हिन्दुस्तान भले ही सरकारी नीतियों का संवाहक समाचार पत्र रहा हो, पर उसका 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' कालम न सरकार को क्षमा करता था, न किसी उच्च पदस्थ नेता को।

दिल्ली में आकर उनसे धीरे-धीरे परिचय हुआ। एक बार मैं हिन्दी के पक्ष में और अंग्रेज़ी के विरोध में लिखा लेख लेकर उनके पास उनके कार्यालय जा पहुंचा। अभी तक मेरा कोई लेख कभी किसी स्तर के दैनिक पत्र में नहीं छपा था। अतः मन में बहुत ही संकोच था। पर उन्होंने जिस आत्मीयता व स्नेह से मेरा स्वागत किया, उससे उनको लेख दिखाने में मुझे थोड़ा भी संकोच नहीं हुआ। लेख उन्होंने रख लिया। मुझे आश्चर्य और प्रसन्नता तब हुई जब वह लेख अगले ही दिन दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादकीय पृष्ठ पर प्रकाशित हो गया। भाई क्षितीश जी ने लेख में यथास्थान शीर्षक देकर और सम्पादन कर उसे और अधिक आकर्षक बना दिया था।

भाई क्षितीश जी अत्यधिक भावुक हैं—यह जानकारी मेरी धर्मपत्नी डा. सरोज दीक्षा विद्यालंकार ने दी। उन दिनों आपातकाल के दिन थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैं जेल में था। बाहर आर्यसमाज-स्थापना-शताब्दी की धूम थी। उस समारोह में भाग लेने की मेरी बलवती इच्छा थी। मैं बाहर नहीं आ सकता था। तब मैंने जेल में ही "आर्यसमाज : सिद्धान्त और संगठन" शीर्षक से एक लेख लिख कर अपनी धर्मपत्नी को दे दिया। वह उसे लेकर दैनिक हिन्दुस्तान में क्षितीश जी के पास पहुंच गयी। क्षितीश जी ने मेरे जेल जीवन की कथा सुनी तो उनकी आंखें नम हो गयीं। उनकी भावुकता मेरी धर्मपत्नी से छिपी न रही। वह केवल उनकी भावुकता का प्रमाण नहीं था। आपात-काल के प्रति रोष का भी प्रमाण था। मेरा लेख यथासमय भाई जी ने प्रकाशित कर दिया।

दैनिक हिन्दुस्तान से सेवानिवृत्त होने के उपरान्त, क्षितीश जी को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने पकड़ लिया और अपने लड़खड़ाते पत्र 'आर्यजगत्' का सम्पादक बनाने के लिए उनको तैयार कर लिया। क्षितीश जी ने अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए और सम्पादकीय धर्म के प्रति निष्पक्षता की पुन:स्थापना के लिए कुछ शर्तों के साथ यह कार्यभार संभाल लिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि क्षितीश जी के आने से 'आर्यजगत्' में चमक उत्पन्न हो गयी। वह आर्यसमाज और हिन्दू जाति का पत्र बन गया। वेद, भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषाओं और भारतीयता के सैद्धांतिक ज्ञान के अतिरिक्त सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर भी भारतीयता की रक्षा का संवाहक यह पत्र है।

वैविध्यपूर्ण लेखों के अतिरिक्त श्री क्षितीश जी के सम्पादकीय 'आर्य-जगत्' के विशेष आकर्षण का विषय हैं। प्रत्येक ज्वलन्त समस्या पर उनकी तर्कसंगत टिप्पणियां पाठकों को ठीक दिशा प्रदान करती हैं। उनके अनेक सम्पादकीय 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक हिन्दुस्तान' जैसे प्रतिष्ठित हिन्दी दैनिकों में लेख के रूप में प्रकाशित हुए हैं। क्षितीश जी के विचार, भाषा, शैली पाठकों का उद्बोधन करते हैं। आर्यजगत् के विविध विशेषांक संग्रहणीय हैं। जिस विषय का वह विशेषांक होता है, उससे सम्बद्ध महत्वपूर्ण सामग्री उसमें उपलब्ध होती है।

आर्यसमाज अब एक संगठन नहीं, अनेक संगठनों का समूह है। उसमें एक विचार या सिद्धान्त नहीं, अनेक विचार व सिद्धान्त कार्य कर रहे हैं। सिद्धान्तों की मनमानी व्याख्याएं भी हो रही हैं। क्षितीश जी ने आर्यजगत् में एक तटस्थ सम्पादकीय धर्म का निर्वाह किया है। सभी मतों का प्रतिपादन इसमें संतुलित रूप से होता है। अपने से विरोधी विचारों को देने में भी वे कभी संकोच नहीं करते। इसीलिए गैर आर्यसमाजी भी इस पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बड़े चाव से पढ़ते हैं। यहां यह लिखना प्रासंगिक है कि क्षितीश जी वेद, वैदिक साहित्य व संस्कृत के पण्डित हैं। उनके अनेक भाषण व लेख इसके प्रमाण हैं।

क्षितीश जी के 'जातिभेद का अभिशाप', 'आर्यसमाज की विचार-धारा', 'जल बिन्दु' (गुजराती से अनूदित), 'ईश्वर: वैज्ञानिकों की दृष्टि में' (अंग्रेजी से अनूदित), 'ओ मेरे राजहंस', 'फिर इस अन्दाज से बहार आई', 'देवता कुर्सी के', 'स्वेतलाना', 'गांधीजी के हास्य-विनोद' आदि ग्रन्थ न केवल आर्यजगत् वरन् सम्पूर्ण साहित्यिक वह राजनीतिक जगत् में अपना विशेष स्थान रखते हैं। उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। भाषा साहित्यिक है। उनकी 'बंगला देश : स्वतन्त्रता के बाद' पुस्तक बंगला देश की यात्रा पर लिखी ऐसी पुस्तक है जिसमें एक पत्रकार की एक पैनी दृष्टि के दर्शन होते हैं। पाठक इसे पढ़कर स्वयं वहां की यात्रा का भी आनन्द अनुभव करता है। इस पर हरियाणा सरकार ने उनको पुरस्कृत भी किया है। लेखक ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान पर, हिन्दू-मुस्लिम व देश के पृथकतावादी आन्दोलनों पर भी अपनी लेखनी निर्भीकता से चलाई है।

उनकी पंजाब समस्या पर लिखी 'तूफान के दौर से पंजाब' पुस्तक बहुत चर्चित हुई। इसमें पंजाब की सम्पूर्ण समस्या मूर्तरूप धारण कर पाठकों के सम्मुख उपस्थित हुई है। लेखक का दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। राष्ट्र की समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में यह पुस्तक पंजाब समस्या का समाधान करने के इच्छुक राजनेताओं के लिए मार्गदर्शन का काम कर सकती है। हिन्दू-सिख का सौहार्द उनके मार्गदर्शक सन्तों की वाणी से भी प्रकट किया गया है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसका इसमें सफल प्रतिपादन हुआ है। आर्यसमाज के सिखों के साथ मिलकर पंजाब के उत्थान में जो कार्य होते रहे हैं, उनका भी सुन्दर चित्रण हुआ है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'स्टोर्म इन पंजाब' भी बहुत समादृत हुआ है।

आर्यजगत् को जिस स्तर पर उनका सम्मान करके उनको मान्यता प्रदान करनी चाहिए, वह अभी नहीं हुआ। यह आर्यजगत् की कृपणता है। वस्तुत क्षितीश जी का स्वागत और उनका सम्मान एक औपचारिकता है। सभी आर्यसमाजियों व हिन्दू विचारधारा के हृदयों पर इनका आधिपत्य है। उनका प्रत्येक श्रोता व पाठक उनके प्रति प्रतिक्षण आशीर्वाद व शुभकामना व्यक्त करता है। उनकी हिन्दू जगत् को आवश्यकता है। हम परमात्मा से उनके दीर्घायु होने की कामना करते हैं। वे 100 वर्ष तक, नहीं-नहीं उससे भी अधिक वर्षों तक अपनी वाणी व लेखनी से हम लोगों का उद्बोधन करते रहें।

—7/2, रूपनगर, दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाबहार व्यक्तित्व के धनी

क्षितीश भाई

—क्षेमचन्द्र ''सुमन''

क्षितीश भाई के सम्बन्ध में कुछ लिखना मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैं अपना गुण-गान अपने आप ही करने लगूं। मेरी और उनकी इतनी घनिष्ट ''आत्मीयता'' है कि मैं उनको अपने से अलग समझने की कल्पना कर ही नहीं सकता। हमारी यह 'आत्मीयता' दिन सप्ताह, मास या वर्ष की सीमा में आबद्ध नहीं की जा सकती। हम लोग जब गुरुकुल में प्रविष्ट हुए थे, तब से ही वे मेरे 'हमदम' मेरे 'दोस्त' बन गए हैं।

प्रारम्भ में जब वे उत्तर भारत की सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) में श्री रामचन्द्र देहलवी जी के परामर्श पर प्रविष्ट हुए थे तब उनका नाम 'छोटेलाल' था। हमारे गुरुकुल के आचार्य स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी ने उनका नाम 'छोटेलाल' से बदल कर 'क्षेत्रपाल' रख दिया था। वे अभी कठिनाई से एक वर्ष हमारे साथ न रह पाये थे कि उनके पिता ने उन्हें गुरुकुल कुरुक्षेत्र में प्रवेश दिला दिया। कुरुक्षेत्र से आठवीं कक्षा तक का अध्ययन समाप्त करके वे इन्द्रप्रस्थ गुत्रकुल में चले आये और वहां से नवीं तथा दसवीं कक्षा उत्तीर्ण की। तदन्तर क्षेत्रपाल जी उच्चतम अध्ययन के लिये 'गुरुकुल कांगड़ी' चले आये।

इस लम्बे समय में मेरा उनसे कोई सम्पर्क न हो सका। किन्तु 'कांगड़ी' में आते ही हम दोनों का जो पुनः सम्मिलन हुआ, तो वह इतना घनिष्ट से घनिष्टतम होता गया कि वह स्नेह-सूत्र हमें आज भी आत्मीयता के पावन बन्धन में आबद्ध किये हुए है। गुरुकुल कांगड़ी और हमारी संस्था (ज्वालापुर) इतने पास-पास हैं कि कदाचित् कोई अभागा दिन बीतता होगा जब हम आपस में न मिल पाए हों। उन दिनों गुरुकुलों की प्रायः सभी प्रकार की सांस्कृतिक और साहित्यिक हलचलों में हम दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी।

यह बात कदाचित् बहुत कम लोग जानते हैं कि क्षितीश जी गुरुकुल से स्नातक भी 'क्षेत्रपाल' नाम से ही हुए थे और बाद में कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने पर वे 'क्षितीश कुमार' बने जो मेरे निकट अब 'क्षितीश भाई' हैं। इस सन्दर्भ में एक मनोरंजक संस्मरण यह भी है कि क्षितीश भाई जब दिल्ली के ''दैनिक हिन्दुस्तान'' में कार्य करते थे तब उनके साथ गुरुकुल के एक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातक 'सतीश जी' भी कार्यरत थे । मैं जब कभी उनके कार्यालय में 'क्षितीश भाई' से दूरभाष पर वार्त्तालाप करने के लिये उन्हें फोन पर बुलाता तो प्रायः उनके स्थान पर लोग 'सतीश जी' को बुला देते थे । मेरे लिये जब यह समस्या गम्भीर रूप धारण कर गई तब सुविधा की दृष्टि से मैंने 'क्षितीश' को 'छत्तीस' और 'सतीश' को 'सैंतीस' बुलाना शुरू कर दिया था । यह संस्मरण आज भी हमारे बीच स्नेह की ऐसी गुदगुदी पैदा करने का माध्यम बना हुआ है कि लोग सुनकर एक बार तो अकचका जाते हैं । 'क्षितीश भाई' के पारिवारिक जनों को तो मैं अब भी कभी कभी टेलीफोन पर इसी संबोधन से अभिहित करके विचित्र असमंजस की स्थिति में डाल देता हूं ।

गुरुकुलीय जीवन के वे मनोरंजक दिन हमें आज भी निरन्तर प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहते हैं । उन दिनों हमारी इन दोनों संस्थाओं के बहुत से कार्यक्रम ऐसे होते थे जिनमें हम सभी छात्र सोत्साह सम्मिलित हुआ करते थे । 'क्षितीश भाई' भी इन कार्यक्रमों में बढ़चढ़ कर भाग लेते थे । उन दिनों हम दोनों की इतनी प्रगाढ़ता हो गई थी कि एक दूसरे के कार्यक्रमों को सफल बनाना जैसे हमारा पवित्र दायित्त्व ही बन गया था । उन दिनों के मेरे कार्यकलाप का यथार्थ चित्रण क्षितीश भाई ने मेरे जीवन की अर्धशती-पूर्त्ति पर सर्मपित 'एक व्यक्ति—एक संस्था' नामक अभिनन्दन-ग्रन्थ में जिन शब्दों में किया है उनसे आप मेरे इस कथन की सार्थकता का सहज अनुमान लगा सकेंगे । उन्होंने लिखा था ''क्षेमचन्द्र 'सुमन' अपने सहयोगियों के सामने सबसे पहले कवि के रूप में प्रकट हुए । अपने आपको 'फैशनेबल' और 'विद्रोही' प्रकृति का सिद्ध करने की प्रवृत्ति वाले विद्यार्थी ही उस वातावरण में हिन्दी कविता करने का साहस करते थे, क्योंकि संस्कृत में 'श्लोक' या 'निबन्ध' की रचना करना वहां नियम था और हिन्दी की रचना करना अपवाद । गुरुकुल की गोष्ठियों में या सभाओं में, जिनमें छात्रों के साथ उनका अध्यापक-वर्ग भी अवश्य सम्मिलित होता था, वे रचनाएं सुनाई जातीं ।

''ऐसी ही एक सभा का दृश्य मेरी आंखों के सामने तैर रहा है । पग धरती सिर आसमान-घास का खुला मैदान । दरियां बिछी हैं । श्रोताओं के रूप में अध्यापक और छात्र आगे पीछे यथास्थान बैठे हैं । सभापति के लिये भी किसी मेज, और कुर्सी की आवश्यकता नहीं, एक ऊंची चौकी रख दी गई है । उसी पर पालथी लगाकर बैठे वे वक्ताओं को क्रम-क्रम से बुलाते हैं । सहसा अपना नाम सुनकर बिना किसी नाज़-नख़रे के महाकवि क्षेमचन्द्र 'सुमन' उठते हैं । ऊबड़-खाबड़ शक्ल, ऊबड़-खाबड़ वेश । श्रोताओं में कानाफूसी 'पट्ठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने क्या नाम रखा है—'सुमन' ! जैसे संसार में सबसे सुन्दर वही हो। "भाई इनका क्या दोष है ? गुरुकुल में दर्पण रखना-देखना तो मना है, है न ? इस बेचारे ने कभी शीशे में अपनी शक्ल देखी ही नहीं। हो सकता है यह अपने आपको सर्वसुन्दर ही समझता हो।' (यह मानना होगा कि गुरुकुल में भी सौन्दर्य बोध की वृत्ति सर्वथा समाप्त नहीं हो जाती।) तभी कविता के शब्द कानों में पड़ने शुरू होते हैं—न लहजा, न लय, न स्वर ! शक्ल और वेश की तरह आवाज भी ऊबड़-खाबड़ ।"

मेरा ऐसा बेबाक चित्रण 'क्षितीश भाई' जैसा कोई 'हमदम दोस्त' ही कर सकता था। ऐसी एक नहीं, अनेक घटनाएं मेरी और उनकी जीवन-यात्रा से गुंथी हुई हैं। गुरुकुलीय जीवन की समाप्ति के अनन्तर बहुत दिन तक कभी कोई ऐसा सुयोग नहीं मिल सका, जब हमने साथ-साथ इतने दिन बिताए हों। हां सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सौजन्य से अगस्त सन् 1973 में एक ऐसा स्वर्णिम अवसर हमें अवश्य प्राप्त हुआ जब क्षितीश भाई और मैंने मारीशस में आयोजित आर्य महासम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए "अकबर" नामक जलप्रोत से वहां की यात्रा की। उस यात्रा के प्रसंग में व्यतीत हुए 15-20 दिन हम दोनों के जीवन की अक्षय-निधि बन गए हैं। क्षितीश जी को वहां पर 'विशिष्ट वक्ता' और पत्र-प्रतिनिधि के रूप में आमन्त्रित किया गया था और मैंने उक्त महासम्मेलन के अन्तर्गत आयोजित 'हिन्दी कवि-सम्मेलन' की अध्यक्षता की थी। उस यात्रा में हम दोनों ने साथ-साथ रहकर गुरुकुलीय जीवन की अनेक सुखद स्मृतियों का भरपूर आनन्द लिया।

मुझे यह भी भली-भांति स्मरण है कि गुरुकुलीय जीवन में क्षितीश जी ने जहां कविताएं "किंजल्क" उपनाम से लिखी थीं वहां 'चक्र-चरण' नाम से अनेक यात्रा-संस्मरण भी लिखे थे। यह "क्षितीश कुमार" नाम भी स्नातक बनने के उपरान्त इसी सन्दर्भ में अपनाया गया था, जो आज उनकी प्रमुख पहचान बना हुआ है। स्नातक होने के अनन्तर क्षितीश जी ने पहले उपदेशकी के पापड़ बेले और बाद में पत्रकारिता को पूर्णतः अपनाकर अपनी लेखनी का वह करिश्मा दिखलाया कि हिन्दी के पाठक उनकी लेखन-शैली के 'मद्दाह' हो गये। वे गम्भीर से गम्भीर और सहज सरल हल्के हास्य-व्यंग्य के लेख लिखने में इतने सिद्ध हस्त हैं कि उनकी कला पूर्णतः मुखरित और विकसित दृष्टिगत होती है। विभिन्न सामयिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक घटनाओं के अनुशीलन-परिशीलन में भी उनकी लेखनी अपनी पूर्ण तेजस्विता दिखलाती है। वे जितने सुन्दर 'लेखक' हैं, उतने ही प्रखर 'वाग्मी' भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके भाषणों में जनता ऐसी मन्त्र-मुग्ध हो जाती है कि यह पता ही नहीं चलता कि उनके भाषण का इतना लम्बा समय पलक झपकते कैसे व्यतीत हो गया। वास्तव में वे 'लेखनी' और 'वाणी' दोनों के ऐसे सफल आराधक हैं कि यह निर्णय करना जरा कठिन हो जायगा कि वे अच्छे लेखक हैं, या अच्छे वक्ता। दोनों ही विशेषताओं का 'मणि-कांचन संयोग' उनके व्यक्तित्व की ऐसी विरल विशेषता है जो कदाचित् किसी दूसरे व्यक्ति में कठिनाई से ही दिखाई देगी।

मैं तो साहित्य अकादमी की सेवा से निवृत्त होने के बाद अपनी "दिवंगत-हिन्दी-सेवी' नामक विशाल महत्त्वाकांक्षी योजना की आपूर्त्ति की दिशा में संलग्न हो गया और इस प्रसंग में मैंने समस्त देश की धरती को कई बार नापा। अपने ग्रन्थ के दो खण्ड प्रकाशित करने के उपरान्त जब मैं तीसरे खण्ड के लिये सामग्री एकत्रित करने की दृष्टि से यात्रा पर निकला हुआ था तभी 18 अगस्त 1984 को अकस्मात् जमशेदपुर (बिहार) में मेरी तबियत खराब हो गई और मैं बीच में ही अपने यात्रा क्रम को भंग करके वापिस दिल्ली लौट आया। तभी से मैं निरन्तर अस्वस्थ चल रहा हूं। मेरी इस दीर्घ कालीन अस्वस्थता का समाचार क्षितीश भाई के लिये कितना त्रासदायक रहा होगा, इसका अनुमान पाठक उनके एक पत्र की इन पंक्तियों से सहज ही लगा सकते हैं—"हम लोग एक दूसरे का स्वास्थ्य समाचार जानकर प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं। इसलिये जब कभी भी तुम्हारे अस्वस्थ होने का समाचार सुनता हूं तो अन्दर से कोई तार कुल-बुलाने लगता है। इसलिये तुम्हारे स्वस्थ रहने से तुम्हारा ही नहीं मेरा भी स्वार्थ जुड़ा हुआ है। इसीलिये मैं तुम्हारे स्वस्थ रहने की प्रार्थना करता रहता हूं।"

इस बीच क्षितीश भाई दैनिक-हिन्दुस्तान की सेवा से निवृत्ति पाकर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक मुख-पत्र 'आर्य जगत्' के सम्पादन में संलग्न हो गये। 'आर्य जगत्' के माध्यम से उन्हें अपनी भावनाओं के प्रकटीकरण के लिये उचित मंच मिला और उन्होंने इसके लिये अपनी लेखनी का समुचित सदुपयोग किया। इस काल में उनके सम्पादकीय लेखों की इतनी धूम रही कि देखते-ही-देखते अल्प समय में 'आर्य जगत्' ने लोकप्रियता के शिखर को छू लिया। पत्र की इस लोकप्रियता के पीछे क्षितीश जी की प्रखर लेखनी तथा सूझ-बूझ का बहुत बड़ा हाथ है। समय-समय पर उन्होंने अपने पत्र के जहां अनेक उल्लेखनीय विशेषांक प्रकाशित किये वहां देश की सम-सामयिक राजनीति के ज्वलन्त प्रश्नों का समुचित समाधान भी अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भीकता से प्रस्तुत किया। इस प्रसंग में उनकी "तूफान के दौर से पंजाब" नामक पुस्तक विशेष महत्त्व की है। वे देश की राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण करने में इतने दक्ष हैं कि उसकी उपमा किसी और से नहीं की जा सकती। अपनी उपमा वे स्वयं हैं "रामरावणयो युंद्ध रामरावणयोरिव।"

यह प्रसन्नता की बात है कि क्षितीश भाई आज भी उसी ताजगी और तत्परता से अपने मिशन में पूर्णतः बद्ध-परिकर हैं। उनके लेखन, भाषण और व्यवहार में कहीं भी 'वृद्धत्व' छू तक नहीं गया। यह भी एक संयोग ही कहा जायगा कि मेरी और उनकी राशि एक होने के साथ-साथ जन्म-दिन की तारीख भी (16 सितम्बर, 1916) एक ही है। मेरी यह हार्दिक आकांक्षा है कि क्षितीश भाई शतायुषी बनें, पूर्ण तन्मयता और उत्साह से अपने मिशन की संपूर्त्ति में संलग्न रहें। अन्य सभी मित्रों के साथ मैं भी प्रतिवर्ष सदाबहार व्यक्तित्व के धनी क्षितीश भाई का जन्म-दिन इसी प्रकार मनाता रहूं।

उनका सबसे बड़ा दुर्गुण

—गोविन्द प्रसाद केजरीवाल
पूर्व संयुक्त सम्पादक 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'

मनुष्य चाहे जितना बड़ा विद्वान हो, इससे उसकी मनुष्यता को पहचानना संभव नहीं है। वह कितना उदार है, उसमें कितनी पर-दुःख कातरता है, मित्रों और परिचितों के लिए वह कितना सहायक है तथा राष्ट्र के प्रति कितना समर्पित है, यही असली मनुष्य की पहचान है। इन गुणों के साथ यदि उसका अध्ययन, चिन्तन और मनन भी सतत प्रस्तुत हो तो क्या कहने।

पण्डित क्षितीश कुमार वेदालंकार में ये सभी गुण हैं। पर उनमें एक सबसे बड़ा दुर्गुण भी है। वह है उनकी अति सज्जनता। उन्हें इस सज्जनता का दण्ड जीवन में बारम्बार मिला है। फिर भी वे अपनी इस बुरी आदत से बाज नहीं आते। एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

उनके एक सहयोगी में 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' की बुरी आदत थी। हिन्दुस्तान संस्थान के चपरासियों तक को भी वे नहीं बख्शते थे। क्षितीश जी उनकी इस वृत्ति विशेष से सुपरिचित थे, फिर भी वे अपने सहयोगी की चपेट में आ ही गए। उनकी उन्होंने जमानत ले ली। बाद में उन सज्जन ने जिस कम्पनी से कर्ज लिया था उस कम्पनी की एक भी किस्त नहीं दी। इसका कुफल क्षितीश जी को भोगना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन मैं उनके साथ बैठा चाय पी रहा था। अचानक 2-3 सज्जन उनसे मिलने आए। क्षितीश जी ने उनकी भी आवभगत की। चायपान के बाद जब क्षितीश जी ने उनसे पूछा— 'कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?' तब वे लोग बड़े संकोच में पड़ गए। लेकिन करते क्या? सरकारी कर्मचारी थे। उनमें एक बोला—'हम लोग आपकी सम्पत्ति कुर्क करने आए हैं। फलां साहब के आप जमानतदार हैं। उन्होंने अपनी कोई किस्त नहीं दी।' उनके इस कथन पर एक सन्नाटा-सा छा गया। लेकिन क्या किया जा सकता था! उन्होंने उनकी सम्पत्ति बाकायदा जप्त की। वे भी क्षितीश जी की उदारता से अप्रभावित नहीं रहे। उनके पड़ोसी स्व भारतेन्द्रनाथ जी की सुपुर्दगी में उनकी सम्पत्ति कर दी गई और कुर्की की कार्यवाही पूरी करके वे चले गए। बाद की कहानी बड़ी संक्षिप्त है। उस कम्पनी ने कोर्ट से क्षितीश जी का वेतन 'अटैच' करवा लिया और क्षितीश जी बड़ी उदारतापूर्वक अपनी सज्जनता का दण्ड भोगते रहे।

क्षितीश जी का एक अपना सौन्दर्य बोध भी है, पवित्रता की मर्यादा से ओतप्रोत। जहां एक ओर वे वेदों के सौन्दर्य और सौष्ठव के अभिज्ञाता हैं, वहीं स्वेतलाना की वेदना के सौन्दर्य की नजाकत को भी वे बड़ी आत्मीयता से महसूस करने की शक्ति रखते हैं। उसी का परिणाम है कि उन्होंने उस पर एक इतना लोकप्रिय उपन्यास लिखा कि एक मास में उसके दो संस्करण हो गए और गुजराती तथा मराठी में भी उसका अनुवाद हुआ। सौन्दर्य बोध की एक अपनी निजी वेदना होती है। इसको समझने वाले ही मेरी बात को आसानी से समझ पाएंगे। पवित्रता की मर्यादा से ओतप्रोत क्षितीश जी का जीवन है। क्यों न हो, उनकी चिरसंगिनी का नाम भी तो पवित्रा देवी है।

क्षितीश जी के साथ एक संस्थान में काम करने का तथा उनका पड़ोसी होने का गौरव मुझे प्राप्त रहा है। इस अभिनंदन के पुण्य पर्व पर मैं क्षितीश जी को अपना सादर प्रणाम निवेदित करने में गर्व का अनुभव करता हूं। वे सच्चे अर्थों में 'सर्वक्षितिभृतां नाथः' हैं। उनकी जय हो!

—एम. पी. 28, मौर्य एन्क्लेव,

दिल्ली—110 034

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन से क्षीण, मन से पीन

—ब्रह्मदत्त स्नातक
भूतपूर्व सूचनाधिकारी, भारत सरकार

गुरुकुल कांगड़ी से हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह में भाग लेने वाले छात्र-दल के नेता–नायक के रूप में, सबसे पहले सन् 1939 में, क्षितीश जी की साहसिकता की कहानी मैं सुन चुका था। तब मुझे भी गुरुकुल वृन्दावन का स्नातक बने एक मास ही हुआ था। मैं भी गुरुकुल वृन्दावन के बर्मा, थाइलैंण्ड, फीजी, सीमा प्रान्त तथा उत्तर प्रदेश के (जहां से श्री नरदेव स्नातक बाद में 25 वर्ष तक सांसद रहे) छात्रों की एक टुकड़ी लेकर 22 फरवरी को शोलापुर के लिए रवाना हुआ और 5 मार्च को श्री चांदकरण शारदा के जत्थे के साथ गिरफ्तार हुआ। उसके बाद तो महाविद्यालय ज्वालापुर तथा अन्य गुरुकुलों व अन्य आर्य शिक्षणालयों से अनेकानेक विद्यार्थी आर्य सत्याग्रह में भाग लेने पहुंचे। श्री खुशहालचन्द खुर्सन्द (बाद में महात्मा आनन्द स्वामी) के सर्वाधिकारी बनने के बाद पंजाब से भी बड़ी संख्या में छात्र तथा आर्यजन सत्याग्रह में भाग लेने के लिए पहुंचे।

इस प्रकार शिक्षणालयों की ओर से भाग लेने वाले प्रथम छात्र दल-पति के रूप में निस्संदेह क्षितीश जी सदैव अग्रणी और मार्गदर्शक रूप में याद आते रहते हैं। इस दलपति और अग्रणी के रूप को क्षितीश जी अपने भावी जीवन में भी संवारते रहे। अपनी साधना, कर्मठता और विनम्रता को अपनी गम्भीरता की ओप चढ़ा कर वे निरन्तर आगे ही आगे बढ़ते रहे। उपदेशक, लेखक और विचारक की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते वे श्रेष्ठता के शिखर की ओर बढ़ते गए और अन्ततः पत्रकारिता, लेखन, वक्तृत्वकला, और साहित्यिकता के क्षेत्र में प्रभूत यश पाया।

लक्ष्मी का उन पर कितना वरद हस्त है, यह तो मैं नहीं जानता, परन्तु सरस्वती के वरद पुत्र के रूप में मैंने उन्हें अवश्य पहचाना है। प्रायः लेखनी के धनी वाणी के धनी नहीं होते, और वाणी के धनी लेखनी के धनी नहीं होते। पर उनमें दोनों का मणि-कांचन संयोग है जो बहुत दुर्लभ है।

उनकी कैलाश और मानसरोवर की यात्रा, पण्डिम के दुर्गम शिखर का प्रथम भारतीय अभियान, हिमालय की अनेक कठिन यात्राएं उनकी साह-सिकता और यायावरी को चार चांद लगाती हैं। बंगला देश की जोखिम भरी यात्रा पर लिखी उनकी पुस्तक तो अपने प्रकाशन वर्ष का सर्वश्रेष्ठ पर्यटन–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तान्त माना गया और इस रूप में सरकार की ओर से पुरस्कृत भी हुआ। उनकी लेखनी के साथ उनकी यह साहसिकता भी उनके साथियों और पाठकों को नई प्रेरणा देती है।

जब से वे 'आर्यजगत्' के सम्पादक बने हैं, तबसे मैं उनका पाठक और लेखक दोनों हूं। मेरे तो वे परिवार के अंग हैं। उनके स्वभाव की साधुता के कारण और भी न जाने कितने लोग मेरी तरह उन्हें अपने परिवार का अंग मानते होंगे। मेरे अग्रज होते हुए भी मुझे सदा उन्होंने अनपेक्षित भ्रातृत्व दिया— मैं इसे उनकी ही विशेषता मानता हूं। मेरे साथ-साथ उन्होंने भी हैदराबाद के सन् 1939 के आर्य सत्याग्रह को राष्ट्रीय आधार पर सुप्रतिष्ठित करने और तदनुरूप मान्यता दिलवाने में जो योगदान दिया, वह अविस्मरणीय है।

मैंने उन पर लक्ष्मी का वरद हस्त होने के सम्बन्ध में अपने मन की शंका ऊपर व्यक्त की है। पर एक लक्ष्मी का वरद हस्त उन्हें अवश्य प्राप्त है। वह है उनकी गृहलक्ष्मी—उनकी सहधर्मिणी–पवित्रादेवी–जो अपने गुण तथा स्वभाव से अपने नाम को सार्थक करती हुई क्षितीश जी की आन्तरिक प्रेरणा की अन्तःसलिला है।

अन्त में, मैं महात्मा गांधी के लिए कही गई इस बात को दुहराने का लोभ संवरण नहीं कह सकता—'ए स्ट्रौंग माइण्ड इन ए फ्रेल बौडी।' क्षिशीश जी भी तन से क्षीण हों, पर मन से सदा पीन हैं। मैं चाहता हूं– वे सदा पीन ही बने रहें। एक अग्रज के 74वें जन्मदिवस पर एक अनुज की यही शुभकामना है।

—सी 4 बी/332 बी जनकपुरी,
नई दिल्ली—110 058

मैंने उनका नाम और यश खूब भुनाया

—दत्तात्रेय तिवारी

पूर्व मुख्य उप-सम्पादक—दैनिक हिन्दुस्तान

अपने अनन्य बन्धु क्षितीश जी के 74वें जन्म-दिवस पर कुछ संस्मरण लिखने के सम्बन्ध में पत्र प्राप्त हुआ तो एक विचित्र सी अनुभूति हुई। पिछले लगभग 50 वर्षों से हम एक समान वैचारिक धारा में संयुक्त रूप से बहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले आ रहे हैं। संस्मरण लिखने के लिये मुझे उस प्रवाह से अलग खड़े होकर देखना पड़ेगा, यह विचार ही मुझे बड़ा अटपटा लगा। पर इससे मुझे अपने साथ उनके सम्बन्धों को एक तटस्थ साक्षी के रूप में भी देखने का अलभ्य अवसर अनायास ही मिल गया। मैं अत्यन्त विस्मित और चकित हूं कि इतने सुदीर्घ अन्तराल में भी हमारे सम्बन्ध देश और काल की व्याप्तियों को ठुकरा कर क्षीण होने के बदले कैसे निरन्तर परिपुष्ट ही होते रहे हैं।

यह सामान्य मान्यता है कि विवाह के जोड़े भगवान ही निश्चित करता है। पर मुझे लगता है कि व्यक्ति-व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को भी, फिर चाहे वे ममत्व, बन्धुत्व या अपनत्व के हों, या विरोध, वैमनस्य, और विद्वेष के हों, विधाता ही निर्धारित करता है। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के प्रति स्नेह की किस डोर से खिंचता चला जाता है और वह डोर समय स्थान और परिस्थितियों के बावजूद दोनों को कैसे बांधे रखती है,यह व्यक्तियों के बस की बात नहीं, यदि नियति का ही कोई अदृश्य संकेत न हो।

हम कब एक दूसरे के निकट आ गये, किस घटना के कारण स्निग्ध आत्मीय बन गये और निकट से निकटतर आते चल गये, इसका कुछ स्मरण नहीं आता। बस इतना ही याद है कि हम अकस्मात् सहज भाव से एक दूसरे के अभिन्न बन्धु बन गये।

मुझे रविबाबू की 'चितवन' शीर्षक से लिखी एक लघुकथा स्मरण आ रही है। वे अपने किसी मित्र को विदा करने स्टेशन गये थे। गाड़ी जब धीरे-धीरे प्लेटफार्म से आगे खिसकनी शुरू हुई और अन्दर बैठे यात्री खिड़कियों से बाहर झांकने लगे, तब एक खिड़की खुली और एक चितवन आकर रविबाबू से टकरा गई। रविबाबू कवि और भावुक थे। किसी घटना को उसके समग्र रूप में देखने की आर्ष दृष्टि उन्हें प्राप्त थी। तभी तो इस घटना के बारे में उन्होंने लिखा— "इतनी बड़ी पृथ्वी है, लोकलोकान्तर हैं, विशाल व्योम है, असीम क्षितिज है, फिर भी विस्तृत भूगोल और खगोल में स्वच्छन्द विचरण करने के बदले यह तीखी चितवन मुझ कृपण के पास आकर ही क्यों टिक गई ? इतने सारे लोगों के होने पर भी मुझको ही क्यों एक अवगाह्य अनुभूति से आप्लावित कर गई ?"

सौन्दर्य-बोध-प्रवण कवीन्द्र रवीन्द्र की जैसी जिज्ञासा उस चितवन के बारे में है, कुछ कुछ वैसी ही जिज्ञासा मुझे क्षितीश जी के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में है। क्षितीश जी की कक्षा में और भी अनेक विद्यार्थी थे। वे मुझसे दो वर्ष आगे थे– आजकल की भाषा में गुरुकुल में पढ़ते हुए मैं उनसे दो वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूनियर था। वे सभी विषयों में अग्रणी और प्रतिभा-सम्पन्न। मैं हरफनमौला न अच्छों में, न पिछड़ों में। मेरी खेल-कूद में अधिक रुचि थी। तब तक क्षितीश जी अपनी प्रतिभा, विदग्धता और वक्तृत्व-कला से उस समय के गुरुकुलीय छात्र वर्ग में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके थे। फिर भी उनके स्नेहिल स्वभाव और सख्य-भाव ने मुझे आप्लावित कर दिया।

सम्बन्धों की प्रगाढ़ता की परीक्षा के लिए जीवन में एक ही अवसर पर्याप्त होता है। हमारे सम्बन्धों में जब कभी ऐसा अवसर आया, उन्होंने मुझे कभी निराश नहीं किया। उन्होंने मुझसे कभी कोई आशा नहीं की। सदा मैं ही आशा करता रहा और वे सदा उसे पूर्ण करते रहे। इस विषय में एक-दो संस्मरण उल्लेखनीय हैं—

क्षितीश जी जब दशम कक्षा में थे, तब वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की प्रमुख साहित्यिक संस्था वाग्वर्धिनी सभा के मन्त्री बने। यह पद बड़ा गौरवास्पद समझा जाता था। वार्षिक अधिवेशन में मंत्री के भाषण की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती थी, क्योंकि वह भाषण उसके हिन्दी साहित्य के विस्तृत ज्ञान का और विद्या तथा प्रतिभा का परिचायक माना जाता था। वार्षिक अधिवेशन में क्षितीश जी का वह लिखित भाषण उस वर्ष बड़ा कांटे का माना गया। इस भाषण में हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं का लेखकों और उनकी नवीनतम कृतियों के सन्दर्भ में सांगोपांग विवेचन किया गया था।

क्षितीश जी के गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ से दसवीं श्रेणी उत्तीर्ण कर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के महाविद्यालय में चले जाने पर अगले वर्ष मुझे वह पदभार संभालना पड़ा। वार्षिक अधिवेशन के लिये मैंने भी अपना भाषण बड़े परिश्रम से तैयार किया, पर मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मुझे अपना लिखित भाषण सर्वथा अपूर्ण लगा। सभा के वार्षिक उत्सव में जब मात्र एक सप्ताह रह गया तो मैंने घबराकर क्षितीश जी को पत्र लिखा कि मेरा भाषण कुछ सन्तोषजनक ढंग का बन नहीं रहा, इसलिये आप मेरा भाषण लिखकर भेजने का कष्ट करें। पत्र लिखने के बाद मुझे स्वयं लगा कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये था— क्षितीश जी को इतनी फुर्सत कहां होगी। जब उत्सव में दो दिन शेष रह गये तो मैं अपने वाले भाषण को ही उल्टा सीधा तैयार करने में लगा था कि अकस्मात् क्षितीश जी का लिखा 20 पृष्ठों का लेख डाक से मुझे मिला। मेरे आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों का पारावार न रहा। मैंने बड़े विश्वास के साथ उनका लिखा हुआ भाषण पढ़ा। हिन्दी-साहित्य के नये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयाम और नये क्षितिज का स्पर्श करने वाले उस भाषण पर खूब तालियां बजीं। उत्सव के अध्यक्ष प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्यकार श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने तथा अन्य गुरुजनों ने उस भाषण की बहुत प्रशंसा की और मैं ठुमुक ठुमुक कर बड़े विनीत भाव से उस प्रशंसा के लिये सबका आभार प्रकट करता रहा। मेरे सिवाय इस बात को और कौन जानता था कि इस प्रशंसा का असली पात्र मैं नहीं, क्षितीश जी थे, एक मात्र क्षितीश जी।

क्षितीश जी के नाम पर उनके यश का लाभ उठाने के अनेक अवसर जीवन में आये और मैंने ऐसा कोई भी अवसर चूकने नहीं दिया।

जालना की घटना :

गुरुकुल से सन् 1939 में स्नातक बनने के बाद क्षितीश जी आर्य-समाज के उपदेशक के रूप में नागपुर को केन्द्र बनाकर मध्यप्रदेश में कार्यरत हो गये। 1941 में स्नातक बनने के बाद सार्वदेशिक सभा ने मुझे भी हैदराबाद में अपना उपदेशक नियुक्त किया। उपदेशक के रूप में उनके कार्य एवं अनुभव का लाभ उठाने के लिये दिल्ली से हैदराबाद जाते समय मैं नागपुर रुका तथा उनका ही अतिथि रहा। पर मेरी नियति में शायद उपदेशकी नहीं थी। मैं अपने प्रचार कार्य के अन्तर्गत प्रथम कार्यक्रम के रूप में औरंगाबाद के निकट स्थित जालना शहर गया। जालना उस समय हैदराबाद रियासत का ही अंग था। क्षितीश जी एक वर्ष पूर्व ही जालना में अपने भाषण की धाक जमा चुके थे। वहां इनका ऐसा जोरदार भाषण हुआ था कि जनता ने अगले दिन भी एक और भाषण देने का आग्रह किया। उन्होंने स्वीकार भी कर लिया।

आधी रात को आर्य समाज से सहानुभूति रखने वाले किसी सिपाही ने गुप्तरूप से आर्य समाज के अधिकारियों को यह सूचना दी कि अगले दिन पुलिस ने क्षितीश जी को गिरफ्तार करने का निश्चय किया है। क्षितीश जी इसके लिये भी तैयार थे। कहने लगे—1939 में एक बार निजाम की जेल के मेहमान बन ही चुके हैं, एक बार और सही। किन्तु आर्यसमाज के अधिकारी अपने इस मेहमान की गिरफ्तारी के लिये तैयार नहीं हो सके जिसको उन्होंने आग्रह करके भाषण देने के लिये अपने यहां जबर्दस्ती रोक लिया था। इसके अलावा उनके मन में यह भी था कि जो एक अकेला व्यक्ति समस्त मध्यप्रदेश और विदर्भ में घूम-घूमकर आर्य समाज का जनगणना सम्बन्धी कार्य कर रहा है; यदि वह गिरफ्तार हो गया तो वह महत्त्वपूर्ण कार्य ठप्प हो जायेगा। इसलिये उन्होंने यही ठीक समझा कि सूर्योदय से पहले ही क्षितीश जी को निजाम-स्टेट की हद से बाहर पहुंचा दिया जाय जिससे निजाम की पुलिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें गिरफ्तार न कर सके। वही हुआ। आधी रात को टैक्सी बुलाकर उन्होंने क्षितीश जी को उसमें बैठाया और भाव-भरे हृदय से उन्हें रवाना कर दिया। पुलिस हाथ मलती रह गई।

उसके एक साल बाद मैं जालना पहुंचा। मैं तब सतीश विद्यालंकार के नाम से जाना जाता था। क्षितीश और सतीश के नाम साम्य से लोगों ने मुझको भी क्षितीश ही समझ लिया। स्टेशन पर लोग मेरी अगवानी करने आये। मुझे फूलमालाओं से लाद दिया। मेरी कद काठी और रूप रंग भी, बहुत कुछ क्षितीश जी से मिलता-जुलता सा था। मेरे भाषण की घोषणा हो गई। मैं मन ही मन घबराया भी। पर इन्होंने मुझे एक लटका बता दिया था कि हैदराबाद में प्रचार करते समय निजामशाही के अत्याचारों के विरुद्ध इस ढंग से तीखे प्रहार करो कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। अभिधा का नहीं, व्यंजना का प्रयोग करो— तो जनता तुम्हारे भाषणों को खूब पसंद करेगी। उनके जैसी व्याख्यान-कला और साहित्यिक व्यंजनापूर्ण भाषा मैं कहां से लाता। फिर भी मैंने भरसक प्रयत्न किया, और एक वर्ष पूर्व इनके भाषण से मुग्ध लोगों ने मेरा भाषण धैर्यपूर्वक सुन लिया। उसके बाद जब लोग मुझे बधाई देने लगे तो मैं अचानक कह बैठा, 'मैं आपके यहां पहली बार आया हूं', तो कुछ व्यक्तियों ने कहा— पिछले वर्ष भी हमने आपका भाषण सुना तो आप पहली बार आने की बात क्यों कहते हैं। फिर एक ने तो यह भी कहा, आप जानबूझ कर मजाक कर रहे हैं। मैं उन्हें कैसे समझाता कि वह भाषण जिस पर वे मुग्ध हुए थे, क्षितीश जी ने दिया था। क्षितीश और सतीश में अन्तर है— यह मैं उन्हें कैसे समझाता। इस अवसर पर भी मैं उनके नाम पर वाह-वाही लूटता रहा।

नाम-साम्य की भी एक कहानी है। पहले हम दोनों के नाम कुछ और थे। बाद में उनका नाम क्षितीश और मेरा नाम सतीश हो गया। नाम, धाम काम और चाम के साम्य के कारण विभ्रम से बचने के लिये हम दोनों के समान मित्र प्रसिद्ध साहित्यकार श्री क्षेमचन्द्र सुमन हमें मजाक में 'छत्तीस' और 'सैंतीस' के नाम से सम्बोधित करते हैं। पर पाठकों के लाभार्थ मैं यह बताना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि अब कुछ वर्षों से मैंने नाम बदलकर अपना जन्म कालीन नाम दत्तात्रेय रख लिया है। इस नये नाम से मैं क्षितीश जी के नाम और यश का लाभ नहीं उठा पाऊंगा, यह हानि तो मुझे होगी ही, परन्तु अब तक जितना लाभ मैंने उठा लिया, वही क्या कम है। इस नये नाम से मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन ही मन अपराध-बोध से भी मुक्ति मिली है ।

'आर्यभानु' में

जालना के बाद अगले दिन मैं औरंगाबाद गया। वहां प्रोफेसर शेरसिंह के सम्मान में एक सभा थी। वे हैदराबाद स्थित केशव मैमोरियल हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक पद से निवृत्त होकर वापिस उत्तर भारत के किसी कालेज में प्राध्यापक बन कर जा रहे थे। उसी दिन मुझे तार मिला कि शोलापुर जाकर हैदराबाद आर्य-प्रतिनिधि सभा के मुख पत्र 'आर्यभानु' साप्ताहिक के सम्पादन का कार्य संभालो। मुझे मन में बड़ी राहत मिली। उपदेशकी से मेरा पिण्ड छूटा। मैं अगले दिन शोलापुर चला गया।

'आर्यभानु' का सम्पादन कार्य संभालने पर मैंने उसकी साज-सज्जा एवं स्वरूप में परिवर्तन करने का विचार किया। उन दिनों महाराष्ट्र में 'केसरी' एवं 'मराठा' पत्रों की बड़ी धूम थी। केसरी पत्र में उसके नाम के नीचे ही पंडितराज जगन्नाथ का एक श्लोक छपा करता था जो इस प्रकार था—

स्थितिं नो रे दध्याः क्षणमपि मदान्धेक्षण सखे !
गजश्रेणीनाथ त्वमिह जटिलायां वन भुवि ।।
असौ कुंभी भ्रान्त्या खरनखरविद्रावित महा—
गुरुग्राव ग्रामे स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ।।

अर्थात् "हे मदान्ध गजाधिप ! तू इस भयंकर वनभूमि में निश्चिन्त होकर क्षण भर को भी मत बैठना, क्योंकि तेरा गण्डस्थल समझकर बड़ी-बड़ी काली चट्टानों को अपने तीव्र नखाग्रों से विदीर्ण कर देने वाला वह वनराज केसरी अभी पर्वत की गुफा में सो रहा है।" मैं 'आर्यभानु' नाम के नीचे भी इसी प्रकार का श्लोक देना चाहता था। संकट मोचक के रूप में मुझे क्षितीश जी याद आये। मैंने उन्हें नागपुर पत्र लिखा और नमूने के रूप में ऊपर वाला श्लोक भी भेज दिया। कुछ दिन बाद उनका पत्र और उनका स्वरचित श्लोक मिला। श्लोक केसरी की तर्ज पर ही था। अब इतने सालों बाद वह श्लोक तो याद नहीं रहा, पर उसका अर्थ कुछ इस प्रकार था— "मूढ़ाग्रही लोगों की मानसिक गुहाओं में जो अवैदिक मान्यताओं और अन्ध विश्वासों का अन्धकार छाया हुआ है वह अब सावधान हो जाय, क्योंकि गगन में 'आर्य भानु' उदित हो रहा है। अंधकार से पीड़ित तथा आलोक के लिये आतुर जनता की चिराकांक्षा इससे पूरी होगी।" मैंने यह श्लोक 'आर्यभानु' में देना प्रारम्भ कर दिया। वेद मूर्त्ति श्री पंडित दामोदर सातवलेकर जी और वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्तण्ड श्री धर्मदेव विद्या वाचस्पति जैसे विद्वानों ने मुझे इस श्लोक के लिये बधाई भेजी। इसी को कहते हैं— काम किसी का और नाम किसी का। यहां भी क्षितीश जी के कार्य का यश मैंने ओढ़ लिया।

क्षितीश जी की सहृदयता का एक और उदाहरण देना चाहता हूं। 'आर्यभानु' में ही कार्य करते हुए मैंने उन्हें किसी पत्र में लिखा था कि मैं अमुक-अमुक पुस्तक खरीदना चाहता हूं किन्तु अर्थाभाव के कारण फिलहाल खरीद नहीं पा रहा हूं। कुछ दिनों बाद खरीद लूंगा। कुछ दिन बाद क्षितीश जी का 50) का मनीआर्डर आ गया। लिखा था— 'पुस्तकें खरीद लो।' मैं मनीआर्डर लेकर काफी देर तक स्तब्ध बैठा रहा। जब कुछ स्वस्थ हुआ तब हमारे क्लर्क ने कहा— 'पंडित जी! मनीआर्डर आने पर तो लोग खुश हुआ करते हैं, पर आप किसी सोच में पड़ गये।' तब मैंने मन ही मन क्षितीश जी को प्रणाम किया था।

पर्यटन का शौक :

क्षितीश जी को पर्यटन का भी बड़ा शौक रहा है। अपने घुमक्कड़ स्वभाव के कारण उन्होंने अपना नाम भी चक्र-चरण रख लिया था। वे इस नाम से कई यात्रा वृत्तान्त लिखते रहे हैं। उन्होंने कैलाश मान-सरोवर, उत्तराखण्ड, पण्डिम, और पांगी की दुर्गम यात्राएं जीवन के पूर्वार्ध में ही कर डाली हैं। मौरीशस, नैरोबी और लन्दन भी चक्र चरण के चरण-स्पर्श से नहीं बच पाये। भारत की तो उन्होंने कश्मीर से कन्याकुमारी और द्वारिका से मणिपुर तक कई बार यात्रा की है।

बंगलादेश की उनकी यात्रा का वृत्तान्त ("बंगलादेशः स्वतन्त्रता के बाद" नामक पुस्तक में) तो सुधी समाज में इतना समादृत हुआ कि जिस वर्ष वह प्रकाशित हुआ, उस वर्ष का वह हिन्दी में लिखा सर्वश्रेष्ठ यात्रा वृत्तांत समझा गया और वह हरियाणा सरकार की ओर से पुरस्कृत भी हुआ।

जब वे मध्य-प्रदेश में कार्यरत थे तब भी उन्होंने नर्मदा नदी के उद्गम स्थल अमर कण्टक और कालिदास के मेघदूत के प्रेरणाभूत रामगिरि (रामटेक) तथा प्राचीनकाल में दण्डकारण्य के नाम से मशहूर बस्तर के आदिवासी-बहुल क्षेत्रों की भी यात्रा की। उस समय इन आदिवासियों में वैरियर एल्विन नामक एक ईसाई मिशनरी बड़े जोर शोर से काम कर रहा था। उन दिनों की यात्रा भी आज जैसी नहीं होती थी। अपना बिस्तर और पहनने के कपड़े सब साथ लेकर चलना पड़ता था। आदिवासी इलाकों में फादर एल्विन बहुत लोकप्रिय भी था। क्षितीश जी उसका पीछा करते-करते बहुत भटके, पर अन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बस्तर के घने जंगल में जाकर उसे पकड़ ही लिया। वह यात्रा बड़ी रोमांचक है। क्षितीश जी ने एल्विन की गतिविधियों का पता लगाया और उसे आदिवासियों के धर्मान्तरण की प्रवृत्ति से विरत रहने की बात समझाई। उस समय तो उसने यह कहकर पीछा छुड़वा लिया कि आपकी बात पर विचार करूंगा। आदिवासियों में कार्य करने की सुविधा के लिये ऐल्विन ने एक गोंड कन्या से शादी की थी। देश की आजादी के बाद जब उसने असम और नागालैंड की जन-जातियों में कार्य प्रारम्भ किया, तब उसने एक असमी कन्या से भी विवाह किया। बाद में एल्विन ने आदिवासियों के धर्मान्तरण की बात तो छोड़ दी और जनजातियों की लोक-संस्कृति के अध्ययन को ही प्रमुखता दी। अन्त में उसने पादरी के रूप में किये अपने कार्य के प्रति पश्चाताप प्रकट करते हुए कहा था— 'ईसाई धर्म का प्रचार कर मैंने एक अधिक समुन्नत संस्कृति की हत्या की है।' मैं कभी-कभी सोचता हूं कि क्षितीश जी ने शेर की मांद में पहुंच कर जो दहाड़ लगाई थी, यह पश्चात्ताप कहीं उसी का असर तो नहीं था?

'आर्य जगत्' में :

दैवयोग से हिन्दुस्तान से अवकाश ग्रहण करने के बाद क्षितीश जी ने 'आर्य जगत्' का, श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति ने "आर्य सन्देश" का और मैंने 'सार्वदेशिक' पत्र का कार्य संभाला। श्री नरेन्द्र और मैं उस कार्य से शीघ्र ही विरत हो गये। परन्तु क्षितीश जी न जाने कौनसा मन्त्र जानते हैं कि पिछले दस वर्षों से वे 'आर्य जगत्' के सम्पादक हैं, विचित्र परिस्थितियों में भी कुरुक्षेत्र के मैदान में शस्त्र सन्नद्ध हैं और आर्य जगत् के माध्यम से वे आर्यसमाज को नई दिशा देने में सक्रिय हैं। आर्य जगत् में 'आर्य जगत्' की लोकप्रियता और क्षितीश जी की ख्याति निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

मैंने क्षितीश जी से सदा लिया है। लिया है उनका नाम, उनका यश और उनका स्नेह और अनुज होने के नाते उनका आशीर्वाद। कहते हैं परस्पर आदान-प्रदान से, अन्योन्याश्रय से ही स्नेह संबंध पनपते हैं। परन्तु मेरा और उनका संबंध इस मान्यता का अपवाद है। मैं सदा आदाता रहा और वे सदा दाता रहे।

यह संस्मरण अपूर्ण रहेगा यदि मैं भाभी जी का उल्लेख न करूं। वे कन्या गुरुकुल हाथरस की स्नातिका हैं। 'विद्या विभूषिता' हैं—उपाधि से भी, गुण से भी। ब्यावर (राजस्थान) के एक कट्टर आर्यसमाजी परिवार में क्षितीश जी का विवाह हुआ है। मुझे उस विवाह में भी सम्मिलित होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौभाग्य मिला था। मैं यह कह सकता हूं कि समाज-सुधार का और साथ ही सहृदयता का और निष्ठावान् आर्य बन्धुओं का जैसा समागम मैंने उस विवाह में देखा, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मुझे स्मरण है कि उस विवाह का कट्टरपंथी जात्यन्ध पौराणिकों ने विरोध किया था और तीस ग्राम पंचायतों ने बाकायदा बहिष्कार किया था। फिर भी दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। मुझे यह भी याद है कि समाज-सुधारकों ने इस अन्तर्जातीय और अन्त:प्रान्तीय क्रांतिकारी विवाह के समर्थन में जो आशीर्वाद और सन्देश भेजे थे उनको पढ़ने में ही पूरे दो घंटे लगे थे। विवाह संस्कार का पूरा वातावरण किसी आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव से कम नहीं था। अगले दिन शाम को जातिभेद के अभिशाप के विरुद्ध क्षितीश जी का जोरदार भाषण हुआ तो जनता में एक नई चेतना जागृत हुई और विवाहोत्सव की समाप्ति हुई।

भाभी जी क्षितीश जी की पूर्णता हैं। उनका स्नेह से छलकता कुंभ मुझे सदा **"पूर्णमदः पूर्णमिदं"** मन्त्र का स्मरण कराता है। उनका यह स्नेह व्यक्तियों को ही नहीं परिवारों को भी यक्ष की तरह सदा जागरूक रहकर परिवेष्टित किये रहता है। चिर जीवे यह जोड़ी, यही मेरी परम पिता से विनीत प्रार्थना है।

—टी 8, ग्रीनपार्क एक्सटेंशन
नई दिल्ली—110016

लगन के धनी क्षितीश जी

—गंगाधर इंदूरकर
पूर्व विशेष संवाददाता 'नवभारत टाइम्स'

मैं अपने आपको क्षितीश जी के निकट परिचितों में नहीं मानता हूं। पर मुझे उनकी जितनी जानकारी है, उससे मैं एक निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचा हूं। क्षितीश जी उन व्यक्तियों में हैं, जो जिस किसी काम के साथ अपने आपको जोड़ लेते हैं, उसे पूरा करने में जी जान से जुट जाते हैं। उसमें आने वाले संकटों से वे जूझते रहते हैं। यह प्रवृत्ति उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है।

यह बात सबसे पहले सामने आयी, उनकी युवावस्था के प्रारम्भिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों में। तब उनका विद्यार्थी जीवन ही चल रहा था। जीवन पर आर्य समाज का प्रभाव होने के कारण कांगड़ी के गुरुकुल में वे स्नातक बनने की तैयारी में थे। उन दिनों साधारणतः प्रत्येक विद्यार्थी देश के राजनीतिक जीवन से अपरिचित नहीं होता था। हैदराबाद उस समय एक रियासत थी और वहां निजाम का आधिपत्य था। उन दिनों रियासत में रहने वाले गैर मुसलमानों विशेषतः हिन्दुओं पर काफी अत्याचार होते थे। उन्हें किसी प्रकार के नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। निजाम के अत्याचारों के विरोध में स्टेट कांग्रेस को वहां अहिंसापूर्ण सत्याग्रह शुरू करना पड़ा। तभी वहां सत्याग्रह करने का निश्चय आर्यसमाज ने भी किया। बाद में उसमें हिन्दूसभा भी शामिल हो गयी। जैसे ही आर्यसमाज ने सत्याग्रह करने की ठानी, क्षितीज जी ने भी बिना यह सोचे कि उसमें शामिल होने के उनके जीवन पर क्या परिणाम होंगे, उसके पहले ही जत्थे में ही शामिल होने का निर्णय कर लिया। यह 1939 की बात है। रियासतों में सत्याग्रहियों के साथ ब्रिटिश भारत की अपेक्षा अधिक कड़ा व्यवहार होता था और हैदराबाद रियासत तो वैसे भी अत्याचारों के लिये प्रसिद्ध थी। पर क्षितीश जी भविष्य की किसी कल्पना से डगमगाये नहीं। वे पूर्व निर्णयानुसार पहले ही जत्थे में शामिल हुए। उन्हें यथाकाल सजा भी हुई। वह सब अब इतिहास बन चुका है।

कांग्रेस को डर था कि आर्यसमाज का सत्याग्रह सांप्रदायिक रूप धारण कर लेगा। इसलिये कांग्रेस के उस समय के सर्वमान्य नेता महात्मा गांधी ने स्टेट कांग्रेस को अपना सत्याग्रह बन्द करने का आदेश दे दिया।

स्टेट कांग्रेस ने तो अपना सत्याग्रह बन्द कर दिया पर आर्य-समाज और हिंदूसभा के जत्थे पर जत्थे जाते रहे और एक भी सांप्रदायिक उपद्रव की घटना नहीं घटी। क्षितीश जी स्नातक परीक्षा दिये बिना ही सत्याग्रह में शामिल हो गये थे। पर गुरुकुल कांगड़ी के अधिकारियों ने यह मान लिया कि आर्यसमाज के सत्याग्रह में शामिल होने के कारण वे स्नातक उपाधि के अधिकारी बन चुके हैं। उन्हें मानद वेदालंकार की उपाधि दे दी गयी। वैसे भी वे अपनी कक्षा में प्रायः प्रथम ही रहा करते थे।

इसके बाद क्षितीश जी आर्यसमाज के कार्य में जी जान से जुट गये। वे मध्य प्रदेश और विदर्भ में आर्यसमाज के उपदेशक के रूप में काम करने लगे। उन दिनों आर्यसमाज के लोग जनगणना में अपने आपको आर्य लिखवाना अधिक पसंद करते थे। क्षितीश जी की प्रेरणा से मध्यप्रदेश और विदर्भ के अधिकांश हिन्दुओं ने अपने आपको आर्य लिखवाने में संकोच नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेशक के पत्रकार

उपदेशक के कार्य में उनका लगाव तो था, पर उससे जीवन की बढ़ती हुई जिम्मेदारियों की आवश्यकताएं पूरी करना संभव नहीं था। पत्रकारिता की ओर उनकी रुचि किशोरावस्था से ही थी। उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना भाग्य आजमाने की ठानी। वे अब तक आर्यसमाज के उपदेशक के रूप में काम कर रहे थे। उस समय के कुछ वरिष्ठ पत्रकारों की धारणा थी कि उपदेशक अच्छे पत्रकार नहीं बन सकते। क्षितीश जी ने कुछ समय तो 'अर्जुन' में काम किया। पर उस पत्र की आर्थिक हालत दिन प्रतिदिन खस्ता हो रही थी। अतः अन्य साथियों की तरह क्षितीश जी को भी वह पत्र छोड़ने पर विवश होना पड़ा। उन्हें दैनिक हिन्दुस्तान के संपादकीय विभाग में 1952 में स्थान मिल गया।

तब से उनका नियमित जीवन शुरू हो गया। जैसा मैं कह चुका हूं कि जिस काम को उठाना, उसमें जी जान से लगना– यह उनका स्वभाव बन गया था। उन्हें अवसर मिला और उन्होंने यहां भी अपना गुण प्रकट कर दिखाया। 'हिन्दुस्तान' को तीन बार भाषाई पत्रों में प्रथम स्थान मिला और तीनों ही बार ऐसा संयोग बना कि पत्र के जिस अंक को पुरस्कृत घोषित किया गया, उसे निकालने का श्रेय क्षितीश जी को था। क्योंकि उस सप्ताह रात की ड्यूटी पर वे ही थे। इन घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपदेशक अच्छे पत्रकार नहीं बन सकते, यह उस समय के कुछ वरिष्ठ पत्रकारों की धारणा कितनी गलत थी।

आपातकाल के दिनों में

1975 में आपातकाल आया। बड़े-बड़े पत्रकारों के मुंह बन्द हो गये। एक वरिष्ठ कहे जाने वाले हिंदी पत्र के संपादक ने तो उसके समर्थन में एक वक्तव्य भी दे डाला। कुछ पिट्ठू पत्रकारों ने आपातकाल के समर्थन में एक वक्तव्य पर क्षितीश जी से भी हस्ताक्षर कराने चाहे। पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। उन दिनों क्षितीश जी दैनिक हिन्दुस्तान में रविवार का विशेष अग्रलेख भी लिखा करते थे। यह अग्रलेख किसी साहित्यिक निबंध की तरह होता था। क्षितीश जी ने आपातकाल जारी करने के लिये सरकार का स्पष्ट विरोध तो नहीं किया, पर कुछ साहित्यिक अग्रलेख ऐसे अवश्य लिखे, जिनसे आपातकाल के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता था। उदाहरण के तौर पर एक निबन्ध का शीर्षक था— 'सखि ! बसंत आया।' उन्होंने साहित्यिक शैली में बसंत आने का रोचक वर्णन किया। पर अन्त में कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बसंत के साथ कोकिल की आवाज भी अवश्य सुनाई देनी चाहिये। पर वह तो सुनाई नहीं देती। क्योंकि उसकी वाणी पर प्रतिबन्ध है। फिर हम कैसे मान लें कि बसन्त आगया!'

लगन के साथ काम करने के कारण हिन्दुस्तान के संपादकीय विभाग में वे काफी लोकप्रिय हो गये थे। शायद इसी कारण 60 वें वर्ष में सेवाकाल पूरा होने के बाद भी उनकी सेवा में ढाई वर्ष तक वृद्धि होती रही। 1979 में उन्होंने हिन्दुस्तान की सेवा से अवकाश ग्रहण किया।

अवकाश ग्रहण करने के बाद भी उन्होंने अपने आपको बराबर सक्रिय रखा है। आर्यसमाज के साप्ताहिक पत्र आर्यजगत् के सम्पादक के रूप में उन्होंने उसका भार उठा लिया है और उसके माध्यम से हिंदू समाज के जागरण के कार्य में लगे हुए हैं।

क्षितीश जी ने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें पंजाब समस्या पर लिखी उनकी पुस्तक काफी प्रसिद्ध है। उसका कुछ भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। उपदेशक होने के कारण वे प्रारम्भ से ही अच्छे वक्ता रहे हैं। और अभी भी समय-समय पर भाषण देते रहते हैं। मैं उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूं।

—डी-88, गुलमोहर पार्क
दिल्ली-110049

वे राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते हैं

—शिव कुमार गोयल
वरिष्ठ पत्रकार

श्री क्षितीश जी पुरानी पीढ़ी के मिशनरी पत्रकारों की श्रेणी में से हैं। उन्होंने कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के माध्यम के रूप में पत्रकारिता को अपनाया था, न कि व्यवसाय के लिए। वे सदैव उच्चस्तरीय आदर्श पत्रकारिता के लिए समर्पित रहे। उन्होंने अपने लेखन तथा सम्पादन में हमेशा राष्ट्रहित को सर्वोपरि महत्व दिया। किसी भी 'वाद' या 'दल' की अपेक्षा वे राष्ट्र को सर्वोपरि मानने वाले प्रमुख राष्ट्रवादी पत्रकार हैं।

मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र में जिन विभूतियों से कुछ सीखा— उनमें क्षितीश जी भी एक हैं। उनका लेखन सदैव मुझे प्रेरित करता रहा। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन के ढंग से मैंने बहुत कुछ ग्रहण किया तथा अपने पत्रकारिता जीवन में अपनाने का प्रयास किया ।

क्षितीश जी मूलतः स्वाधीनता सेनानी हैं । गुरुकुल के छात्र जीवन के दौरान हैदराबाद के निज़ाम द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों पर प्रतिबन्ध लगाये जाने के विरुद्ध वे जिस साहसिक तथा नाटकीय ढंग से हैदराबाद पहुंचे तथा सत्याग्रह कर जेल की अमानवीय यातनाएं सहीं– यह इतिहास अपने आप में रोमांचकारी है । वे धर्म स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिये जेल जाने वाले स्वाधीनता सेनानी हैं । हैदराबाद आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखी उनकी पुस्तक पढ़ते समय रोमांचित हुए बिना नहीं रहा जा सकता । क्षितीश जी गूढ़ विषयों पर लिखने के साथ-साथ 'संस्मरण' विद्या में कितने निपुण हैं— यह उनकी इस कृति से स्पष्ट हो जाता है ।

पंजाब की ज्वलन्त समस्या पर उन्होंने लेखनी चलाई तो अकाली आंदोलनों की गहराई में जाकर ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए जिन्हें पढ़कर वहां की वास्तविक स्थिति का पूरा ज्ञान हो जाता है । बंगला देश की मुक्ति के बाद वे बंगला देश की यात्रा पर गए तो वहां शीर्षस्थ नेताओं से भेंट कर वहां की सही स्थिति का चित्रण किया । उन्होंने जो कुछ लिखा, गहराई में जाकर, तथ्यों तक पहुंचने के बाद ही लिखा ।

क्षितीश जी की मुझ पर अनन्य कृपा रही है । मेरे पिता स्व. श्री भक्त रामशरणदास जी से उनका अपार स्नेह-सम्बन्ध था । वे कृपा कर दो बार पिलखुवा हमारे निवास स्थान पर भी पधारे । हमारे चित्र संग्रहालय का निरीक्षण कर वे बहुत प्रसन्न हुए थे ।

क्षितीश जी आर्यसमाज के गम्भीर विद्वानों में विशिष्ट स्थान रखते हैं । वे कुशल लेखक के साथ-साथ ओजस्वी वक्ता भी हैं । वैदिक वाङ्मय सम्बन्धी उनके प्रवचनों को सुनने के लिए मैंने बड़े-बड़े विद्वानों को उत्सुक पाया है । वैदिक (हिन्दू) धर्म की महत्ता पर उनके सारगर्भित भाषण सुनकर श्रोता बहुत प्रभावित होते हैं ।

क्षितीश जी सरलता तथा सादगी की मूर्ति हैं । उन्होंने जीवन भर खादी पहनी है, कोई दुर्व्यसन उन्हें कभी छू भी नहीं पाए । यही 73 वर्ष की आयु में भी पूर्ण स्वस्थ रहने का राज है ।

अपने अनन्य प्रेरक तथा अग्रज इस विभूति के जन्म दिन पर मेरा हार्दिक प्रणाम है ।

—बीचपट्टी,पिलखुवा-245304

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा

—जयप्रकाश भारती
सम्पादक 'नन्दन'

हिन्दी के लेखकों-पत्रकारों में आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का नाम जाना-पहचाना है। उन्हें 'पद्मश्री' से सरकार ने सम्मानित किया था। इसी अवसर पर राजधानी में एक गोष्ठी थी। गोष्ठी में एक वक्ता श्री क्षितीश वेदालंकार भी थे। क्षितीश जी ने कुछ व्यंग्य के साथ और कुछ उलाहने के साथ कहा था-'मैंने और सुमन जी ने साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा पाई, साथ ही कैरियर शुरू किया। पर उन्हें पद्मश्री मिल गई, मैं रह गया। उनके सौभाग्य पर मुझे ईर्ष्या क्यों न हो। आज तेज-तर्रार होना, या कहें व्यावहारिक होना, बहुत जरूरी है........मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि वे इसमें भी माहिर हैं।

क्षितीश जी का भाषण तो लम्बा था। उसमें एक पुराने साथी का प्यार था, तो कुछ चिकौटियां भी। पर मेरे मन में बराबर आज भी यह कथन उमड़ता-घुमड़ता रहता है—'उन्हें पद्मश्री क्यों नहीं मिल सकी'। क्षितीश जी इसे भूल गए होंगे, किन्तु रह-रह कर मेरे भीतर यह प्रश्न उभरता है कि उन्हें यह सम्मान मिलना चाहिए था।

आज हिन्दी जगत् एकदम निश्चेष्ट और निष्क्रिय जैसा हो गया है। बड़े-बड़े अनेक महारथी हमारे बीच रहे नहीं, अन्यथा मैं ही कोई आयोजन कराता और उसमें क्षितीश जी को सम्मानित किया जाता।

वास्तव में सम्मान किसी व्यक्ति के कार्य की, उसके योगदान की स्वीकृति ही है। जिस व्यक्ति ने आत्म-प्रचार से दूर रहकर पांच दशक तक राष्ट्रीय पत्रकारिता के अनेक अध्याय लिखे हों, उसे हम सम्मान न दे पाएं तो इसे कृतघ्नता ही कहा जाएगा। हिन्दी में इस रवैये के कारण बहुत हानि हुई है। जिसके पास धन-साधन हुए या जुटा लिए, उसका अभिनन्दन ग्रन्थ छप गया। भले ही उस ग्रन्थ को दीमक चाटें। पर जो लोग निरन्तर मिशनरी बनकर काम करते रहे, उनकी पहचान नहीं बन पाती।

क्षितीश जी ने पत्रकारिता को सदा मिशन के रूप में स्वीकार किया। उनकी दृष्टि में राष्ट्र सदा बड़े से बड़े व्यक्ति से बड़ा रहा और राष्ट्र-हित के लिए वह किसी राजनीतिक वाद से बंधे नहीं। उनकी लेखनी के द्वारा एक राष्ट्रीय पत्रकार की निश्छल और उन्मुक्त प्रतिक्रिया व्यक्त होती रही। आपत-काल के दौरान भी उन्होंने रंग नहीं बदला। सरकार पर और अधिनायक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी मनोवृत्ति पर वह बाण चलाते रहे। पर उनकी शैली ऐसी होती कि चुभन हो, दर्द भी हो, लेकिन कोई शिकायत न कर पाए।

क्षितीश जी के बारे में सोचता हूं तो फर-फर करके कितने ही पन्ने सामने ग्रा जाते हैं। उन्हीं में से एक घटना है—

"क्यों भाई क्षितीश से मिलोगे ?"

"कौन क्षितीश, ग्रच्छा क्षितीश वेदालंकार जी ! हां क्यों नहीं ?"

ग्रचानक एक दिन दैनिक हिन्दुस्तान के उस कमरे में गया जहां गोपाल प्रसाद व्यास बैठते थे। उन्होंने ही उपर्युक्त प्रश्न मेरे सामने जड़ दिया। क्षितीश जी उन दिनों साहित्य सम्पादक थे। मेरा उनसे कोई विशेष परिचय न था।

कुछ देर बाद, वह कमरे में ग्राए ग्रौर ग्रपनी मेज पर बैठकर कोई रचना देखने लगे। व्यास जी ग्रौर वह एक ही कमरे में बैठते थे। उनको देखकर मैं कुछ खास प्रभावित नहीं हुग्रा—सांवला-सा रंग ग्रौर पतले-दुबले। व्यास जी ने ग्रपने ढंग से परिचय कराया। क्षितीश जी के चेहरे पर मुसकान खिल उठी। बड़ी ग्रात्मीयता से मिले। मिले ही नहीं, उन्होंने ग्रपनी विद्वत्ता ग्रौर वरिष्ठता को एक ग्रोर रख दिया ग्रौर मेरी ग्रोर मित्रता का हाथ बढ़ा दिया। यह सहजता ग्रौर सरलता ग्रत्यन्त दुर्लभ है। पत्रकारों का गुरुडम मैंने बहुत देखा है, उनमें गंगाजल-सी निर्मल ग्रात्मीयता कम ही मिलती है।

साहित्य-संस्कृति ग्रौर धर्म के रस-रंग में पगे उनके लिखे सम्पादकीय तो लाखों पाठकों ने पढ़े हैं, मुक्तकंठ से उन्हें सराहा भी है। 'यत्र-तत्र सर्वत्र' के माध्यम से हास्य-व्यंग्य का चुटीलापन भी उनकी लेखनी ने भरपूर उकेरा है। किन्तु साहित्यकार का उनका स्वरूप सभी के सामने उजागर नहीं है। स्टालिन की बेटी 'स्वेतलाना' भारत ग्राई तो हर तरफ उसी की चर्चा चल निकली। उन्हीं दिनों महीने भर के भीतर ही क्षितीश जी ने स्वेतलाना पर एक स्तरीय उपन्यास लिखा जो खूब चर्चित हुग्रा ग्रौर गुजराती तथा मराठी में ग्रनूदित हुग्रा।

वेदों के विद्वान् पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का राजधानी में ग्रभिनन्दन ग्रौर उनके ग्रभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन—क्षितीश जी के द्वारा ही हुग्रा। 'पंजाब : तूफान के दौर से' उनकी खोज पूर्ण कृति है जिसे लिखने ग्रौर छपाने के लिए बड़े साहस की ग्रावश्यकता है। इसी तरह 'बंगलादेश : स्वतन्त्रता के बाद' उनकी यायावरी की ग्रद्भुत कृति है।

'फिर इस ग्रन्दाज से बहार ग्राई' ग्रौर 'देवता कुर्सी के' तथा 'ग्रो मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजहंस:—उनके द्वारा समय-समय पर लिखे गए ललित अग्रलेखों का संकलन हैं जो अपने आप में बेजोड़ हैं। पत्रकारों की आज की पीढ़ी के लिए खासतौर से पठनीय तो हैं ही, अमूल्य धरोहर भी हैं। हिन्दी में ऐसे ललित अग्रलेख आज तक किसी दूसरे पत्रकार ने नहीं लिखे। उनका कैनवास बहुत विस्तृत है, वे शहद में डूबे हैं, बार-बार उन्हें पढ़ने को मन होता है और उनकी व्यंजना को देखकर तो मन आनन्द से भर उठता है।

क्षितीश जी साधक पत्रकार हैं, उन्होंने पब्लिक रिलेशन नहीं किया, नेताओं के चक्कर नहीं काटे, बड़े लोगों के यहां हार लेकर खड़े नहीं हुए—पर उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को समृद्ध किया है, राष्ट्रीय पत्रकारिता के वह पुरोधा रहे हैं। 74वें जन्म दिन पर उन्हें सादर नमन !

अमृतवर्षी भ्राता

—डा श्याम सिंह शशि

दिल्ली जैसे महानगरों में संबोधन के लिए जहां 'भैया', 'भाई', 'भाईजी' आदि शब्द पुराने पड़ गए हैं, वहां यदि "भ्राता" शब्द सुनाई पड़े तो निश्चय ही आश्चर्य-जनक लगेगा। इस नगर की एक पोश कालोनी में रहने वाला कदाचित् मैं अकेला व्यक्ति हूं जो "भ्राता" शब्द का प्रयोग करता है और वह भी केवल एक विभूति के लिए। विभूति यानी अग्रजवत् मेरे भ्राता क्षितीश जी।

पता नहीं क्यों यह शब्द आज भी मेरे मानस को अनायास गुरुकुल कांगड़ी और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की उस कुलभूमि में ले जाता है जहां कभी सद्भावना-सुगंध बहती थी। प्राणवायु भ्रातृत्व प्रदान करता, तथा सौजन्य और स्नेह की वर्षा में भीग जाता था तन-मन। एक सुखद स्मृति मुझे इस प्रसंग पर लेखनी चलाते हुए कचोट रही है। काश, वे दिन लौट आते ! काश, आज हमारी ये संस्थायें अपने विगत को जीवित रख पातीं !

मैंने आरम्भ किया था अपने भ्राता के सम्बन्ध में कुछ संस्मरणों से—किन्तु जूझने लगा किसी सम-सामयिक विश्लेषण से एवं परिवर्तित परिस्थितियों में एक समग्रता के परिवेश से। लेकिन भ्राता जी के बहाने यदि आर्य-जगत् अपने विगत पर विहंगम दृष्टिपात कर सके तो इससे अच्छा अभिनन्दन और क्या होगा—एक वेदालंकार का।

क्षितीश जी के सम्बन्ध में अनेक स्मृतियां हैं। कहां से आरम्भ करूं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ में नहीं आ रहा। संभवतः 1970 की बात है। मेरे एक कवि मित्र केदारनाथ 'कोमल' ने कहा—"आप को अपने साहित्यिक बन्धुओं की बड़ी उत्सुकता रहती है। मैंने एक और खोज निकाला है। बड़े सहृदय और मिलनसार हैं। विद्वत्ता में उनकी चोटी के विद्वान विरले ही मिलेंगे। वैदिक वाङ्मय के पंडित हैं।"

मैंने कहा, 'भाई नाम तो बताओ।'

कोमल जी बोले, 'नाम नहीं बताऊंगा। उनके पास ले ज़ाऊंगा।'

और एक दिन 'हिन्दुस्तान' दैनिक के कार्यालय में हम लोग पहुंच गए। नमस्कार के बाद 'कोमल' जी ने मेरा उनसे परिचय कराया तो वे गद्‌गद् होकर बोले, 'अच्छा "सत्यार्थ प्रकाश" के सत्यार्थी हैं!'

इस प्रकार एक सत्यार्थी दूसरे सत्यार्थी से मिला। मिला ही नहीं, बल्कि सदा के लिए एक अटूट भ्रातृत्व बन्धन में बंध गया। दिल्ली में नहीं, बल्कि पूरे भारत में उन्हें ही "भ्राता" शब्द से आज़ तक संबोधित करता आया हूं।

समय का चक्र चलता रहा। उनसे यदा-कदा राष्ट्रीय पत्रकारिता, वैदिक साहित्य, आर्य संस्थाओं के सम्बन्ध में वार्तालाप होता। उन दिनों मेरी एक पुस्तक 'सफलता और सफलता" छप गई थी। उस पर प्रो. शेरसिंह की भूमिका थी। मित्रवर जयप्रकाश भारती से मेरा परिचय प्रगाढ़ता में बदल गया था और आत्मीय सम्बन्ध दृढ़ से दृढ़तर होते जा रहे थे। हम दोनों उक्त पुस्तक की पहली प्रति भ्राता जी को भेंट करने के लिए उनके कक्ष में गए। उन्होंने जिस प्रकार उसे स्वीकार किया था और उत्तरोत्तर लिखने की प्रेरणा दी थी, मुझे अभी तक याद है। वह पुस्तक बाद में "मेहनत ही जिन्दगी है" नाम से किताबघर से प्रकाशित हुई।

भ्राता जी का एक और रूप मुझे उनके निकट लेता गया। वह है उनका वनवासी समाजों के प्रति प्रेम और एक नृ-वैज्ञानिक की भांति शोध का मन। मैं तब तक अंग्रेजी में एक दर्जन पुस्तकें आदिवासी जीवन पर लिख चुका था। 'हिमालय के यायावर' पर पी-एच. डी. भी ले चुका था। क्षितीश जी ने इस विषय को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा दी और अनेक लेख अपने पत्र में भी प्रकाशित किए।

एक दिन मैंने उनसे पूछा, "आखिर, आपको इस विषय से इतना प्यार क्यों है ?"

उन्होंने विस्तार से अपने अज्ञातवास के सम्बन्ध में बताना शुरू किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा—"वैरियर एल्विन गोंड, बैगा, मुडिया ग्रादि जनजातियों के बीच रहकर गहन अनुसंधान कर रहे थे। मेरे मन ने कहा कि जब एक विदेशी ग्राकर हमारे भारतीय पिछड़े समाजों पर शोध कर सकता है तो क्या हम भारतीय स्कालरों का कोई कर्तव्य नहीं बनता ? इसलिये मैं भी उनसे मिलने चल पड़ा। पहले एल्विन को ढूंढा, फिर ग्रादिवासी समाजों को। पर उन पर कुछ विशेष काम नहीं कर सका। इच्छा मन की मन में ही रही।"

मैंने कहा, 'चिन्ता न कीजिए। यह इच्छा मैं पूरी करूंगा। नगर में रहते हुए भी मेरा मन ग्रापकी तरह वनवासियों में विचरण करता है। उनके दु:ख-दर्द को अपनी कलम में भरकर लाता है ग्रौर लेखन तथा संचार-माध्यमों के द्वारा जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास करता है।'

इसी प्रसंग में एक दिन भ्राता जी बोले, 'मैंने वैरियर एल्विन के साथ बहुत थोड़े समय के लिए ही ग्रावारगी की ग्रौर फिर महानगरीय पत्रकारिता में माथा फोड़ने लगा लेकिन तुमने मेरी ग्रावारगी सदा के लिये अपना ली। ग्रवकाश के क्षण मिलते ही इस महानगर से भाग जाते हो ग्रौर अपने प्रिय वनवासी समाज में जाकर नगर की सुख-सुविधाओं की परवाह किए बिना कभी-कभी एक-एक महीना गुजार देते हो। वहां की ज़मीन कवितायें भी खूब लिखवाती है।'

'ग्रावारगी' शब्द भ्राता जी को अच्छा लगता है। विष्णु प्रभाकर ने 'ग्रावारा मसीहा' तो बहुत बाद में लिखा था, लेकिन क्षितीश जी मेरे 'ग्रावारा भ्राता' बहुत पहले बन गये थे।

राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तक है—"घुमक्कड़ शास्त्र"। उसमें कहीं राहुल जी ने इसी ग्रावारगी की सराहना की है। उनका कहना है कि प्रत्येक लेखक को या ज्ञानार्थियों को होश संभालते ही अपना घर-बार छोड़ कर देश-विदेश की यात्रा पर निकल पड़ना चाहिए। इस प्रकार पुस्तकीय ज्ञान से कई गुना ग्रधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

मैंने भ्राता जी की ग्रावारगी तो ली ही, साथ ही राहुल जी का 'घुमक्कड़ शास्त्र' भी अपना लिया। हां, अन्तर इतना था कि राहुल जी ने विशुद्ध रूप से यायावरी अपनायी ग्रौर जिस देश में गए वहां विवाह भी किए। जबकि मेरे "सत्यार्थी" ने यह सब नहीं होने दिया, हालांकि प्रलोभनों का कोई ग्रभाव नहीं था।

क्षितीश जी की तरह राष्ट्रीयता ग्रौर भारतीयता मुझ में कूट-कूट कर न भरी होती तो ग्राज मैं किसी अन्य देश की नागरिकता अपना लेता। मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यायावरी केवल अनुसंधान के लिये थी या सांस्कृतिक आदान-प्रदान का पथ अपनाती एक चिर गवेषणा के लिए ।

ब्लू स्टार के बाद भ्राता जी का मन हुआ कि वे पंजाब पर एक पुस्तक लिखें । उन्होंने मुझसे परामर्श किया कि यह पुस्तक कहाँ से प्रकाशित कराऊं । मैंने कहा, 'भैया, प्रकाशकों के चक्कर में क्यों पड़ते हैं । यह विषय सम-सामयिक है । स्वयं छापकर देखो । मार्केट अच्छा मिलेगा ।'

भ्राता जी ने मेरी राय मान ली और उनकी पुस्तक के कई संस्करण हाथों-हाथ बिक गए । उसका अंग्रेजी संस्करण भी खूब बिका । भारतीय इतिहास तथा राष्ट्रीय पत्रकारिता के साहित्य में यह पुस्तक अपनी अलग पहचान बनाती है ।

मैं उन दिनों 'सैनिक समाचार' में सम्पादक था । मैंने सैन्य-विज्ञान पर कई पुस्तकें लिख डाली थीं । भारत-पाकिस्तान युद्ध छिड़ा तो हिन्दी में मेरी लेखनी की मांग बढ़ गई । 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में तो मनोहर श्याम जोशी तथा भारती जी अनुरोध करके मेरे लेख मांगते । 'नवभारत टाइम्स' से स्व. श्री रमेश चन्द्र 'प्रेम' के फोन आते । उधर 'हाट लाइन ड्यूटी' भी देनी होती । अलबत्ता कलम और ड्यूटी दोनों ही का सम्यक रूप से निर्वाह करता। काका कालेलकर द्वारा स्थापित पब्लिकेशन सिंडिकेट के सम्पादक सोमदेव भी याद करते और मैं नृ-वैज्ञानिक के साथ-साथ रक्षा वैज्ञानिक भी बन गया । तीन पोथे सैन्य विज्ञान पर उन्हीं दिनों लिख डाले । ऐसी स्थिति में भ्राता जी कहां छोड़ने वाले थे । उन्होंने भी रचनाओं के लिये अनुरोध किया । मैंने कहा, 'गद्य लिखते-लिखते बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । कविताएं मांगिए तो जितनी चाहें भेज दूंगा ।'

उन्होंने हंसकर कहा, ''हां, तुम कवि पहले हो, फिर कुछ और । अच्छा कोई बात नहीं, अपनी बुद्धि को मेरे लिए भ्रष्ट न करो । कविताएं ही भेजो ।'

बहुत से सन्दर्भ चलचित्र की तरह मेरे मानस पटल पर आ रहे हैं, किन्तु मैं बरबस एक निजी प्रसंग की ओर मुड़ रहा हूं । सन् 1978 में मैंने विवेक विहार में निजी मकान बनाया था । गृह-प्रवेश के लिए किसी पण्डित की आवश्यकता थी । मेरे भ्राता जी से बढ़िया पण्डित और भला कहां मिलते । मैंने उन्हें आमन्त्रित किया । आर्यसमाज विवेक विहार के पदाधिकारियों तथा सदस्यों के अतिरिक्त कई अन्य समाजों तथा साहित्यिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों और कतिपय साहित्यिकारों को भी आमंत्रित किया । उन दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई जगदीश शर्मा विवेक विहार ग्रार्यसमाज के मंत्री थे। श्री दशरथ श्रोत्रिय, कथूरिया परिवार तथा कई ग्रार्य परिवारों से मेरे पारिवारिक सम्बन्ध थे। सभी ग्राए थे ग्रौर एक छोटा सा उत्सव ही बन गया था। डा. भक्त राम पाराशर ने संचालन किया। भ्राता जी ने पहले यज्ञ कराया ग्रौर फिर प्रवचन देना शुरू किया। उनके भाषण-प्रवचन तो पहले भी सुने थे, किन्तु उस दिन उनके भाषण का कोई जवाब नहीं था। सभी श्रोता झूम रहे थे। उनकी वाणी ग्रमृत-वर्षा कर रही थी। उस दिन वे समाज-व्यवस्था पर भी विस्तार से बोले थे।

ग्रौर उनकी वाणी की यह ग्रमृत-वर्षा ग्रनवरत रूप से होती रहती है। होती रहेगी।···· ·······लेखनी ग्रौर वाणी के धनी सरस्वती पुत्र—मेरे ग्रादरणीय भ्राता ! "जीव्यात् शरदः शतम्"।

—'अनुसंधान', बी-4/245, सफदरजंग एनक्लेव,
नई दिल्ली-110029

गुण-कर्म दोनों से पण्डित

—ग्रानन्द प्रकाश राजवंशी
वरिष्ठ पत्रकार

हमारी कालोनी में ही हमारे ग्रग्रज बन्धु, प्रसिद्ध लेखक श्री गोपाल प्रसाद व्यास रहते हैं। वे जन्म से ब्राह्मण हैं, पर मैं उन्हें सदा 'लाला' कहकर संबोधित करता हूं। मेरे दूसरे मित्र हैं–श्री क्षितीश वेदालंकार, जो वैश्यकुल में जन्म लेकर भी सर्वत्र पंडित के नाम से विख्यात हैं। मैं भी उन्हें 'पण्डित' कह कर ही सम्बोधित करता हूं।

इसी प्रकार मेरठ में थे लाला सर सीताराम जो पण्डित के रूप में ही पुकारे जाते थे ग्रौर सर्वत्र समादृत थे। वे पाकिस्तान में भारत के राजदूत रहे, तथा ग्रन्य ग्रनेक उच्च प्रशासनिक पदों को सुशोभित करते रहे।

पण्डित क्षितीश वेदालंकार ग्रपनी विद्वत्ता ग्रौर ज्ञान के ग्राधार पर तथा गुण-कर्म के ग्राधार पर पण्डित कहलाने के सच्चे ग्रधिकारी हैं। उनका ज्ञान केवल किताबी नहीं है, बल्कि ग्रनुभव ग्रौर जीवन-संघर्ष से उपलब्ध ज्ञान है।

हाल ही में एक घटना से उनका स्वभाव प्रकट हो जाता है। गुल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहर पार्क (पत्रकार कालोनी) के कम्यूनिटी सेन्टर क्लब में 'बार' खोलकर मदिरा की व्यवस्था का विवाद चल रहा था। क्षितीश जी ने इस विषय में मतदान लेने का विरोध किया। इस विरोध की खबर विभिन्न पत्रों में भी प्रकाशित हुई। मैं उस क्लब का निर्वाचित प्रधान हूं। इस नाते क्षितीश जी अन्य मित्रों के साथ अपना विरोध प्रकट करने मेरे घर पधारे। लेकिन क्लब के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों के प्रचार से मेरे मन में गुस्सा था। जब ये लोग आये तो मैं गुस्से में आकर ऊंची आवाज में बहुत कुछ बोल गया, क्योंकि क्षितीश जी के साथ आने वाले कुछ वरिष्ठ पत्रकारों और सम्मानित महिलाओं के अलावा एक दो ऐसे व्यक्ति भी थे जिनका मैं अपने घर आना या उन्हें साथ लाना उचित नहीं समझता था। लेकिन मेरे चिल्लाने और आपा खोने के बावजूद क्षितीश जी धीर और गम्भीर हुए शान्त होकर बैठे रहे। एक शब्द भी नहीं बोले, जबकि अन्य लोग तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने लगे। उनके इस व्यवहार से मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उनके प्रति मेरे मन में सम्मान बढ़ गया।

मैंने यह भी देखा कि नैतिक दृढ़ता के सिवाय उनके मन में किसी व्यक्ति के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है और तीव्र उत्तेजना के क्षणों में भी वे शान्त रहना जानते हैं। व्यक्तिगत रागद्वेष से ऊपर उठकर उनकी इस सिद्धान्त-निष्ठा का ही यह परिणाम हुआ कि सेन्टर (क्लब) के अधिकारियों को "बार" खोलने के बारे में मतदान स्थगित करना पड़ा। मैंने उस दिन जो व्यवहार किया उसे मैं सर्वथा अनुचित और मर्यादा का उल्लंघन मानता हूं।

बाद में क्षितीश जी के धैर्य और शान्त स्वभाव ने मेरा अपराध-बोध और बढ़ा दिया और मैं मन ही मन अपने व्यवहार के प्रति खिन्न होता रहा। मैं सोचने लगा कि एक ओर मैं हूं जो जरा-जरा-सी बात पर उत्तेजित हो जाता हूं, और दूसरी ओर क्षितीश जी जैसे व्यक्ति हैं जो बिना उत्तेजना के अपनी बात पर दृढ़ होना जानते हैं।

तो ऐसे हैं क्षितीश जी धीर, गम्भीर और व्यावहारिक नेता। उनकी लम्बी आयु हो, जिससे उनका नैतिक नेतृत्व हमें चिरकाल तक प्राप्त होता रहे।

—सी 52, गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली–49

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथक समाजसेवी क्षितीश जी

—विराज

श्री क्षितीश वेदालंकार अपने जीवन के 73 वर्ष पूरे कर 74 वें में पदार्पण कर रहे हैं, यह आनन्द का विषय तो है ही, पर मेरे लिए आश्चर्य और हैरानी का विषय भी है। अभी कुछ ही समय पहले तो वह, और मैं भी, गुरुकुल में पढ़ते थे। वह कैलाश यात्रा पर गये थे; हम लोगों को साथ लेकर हैदराबाद में निज़ाम के अत्याचारी शासन के विरुद्ध सत्याग्रह करने गये थे। उसके बाद वह आर्यसमाज के प्रचारक बन कर भारत के विभिन्न प्रदेशों में घूमते रहे। फिर 'हिन्दुस्तान' दैनिक में सम्पादन कार्य करते रहे। वहां से सेवा निवृत्त होकर 'आर्य जगत्' के सम्पादक बन गये। इस सब में इतना समय बीत गया कि वह 74 वर्ष के हो गये, यह सुन कर हैरानी होती है। पर गणना तो गणना है, उसमें गलती नहीं है।

काल तो बीतता ही है। कुछ लोग काल-सरिता के दुर्दम प्रवाह में बेबस, डूबते उतराते बहते जाते हैं। वे कहां पहुंचेंगे, वे नहीं जानते; कोई भी नहीं जानता। वे कहां पहुंचे, यह भी किसी को पता नहीं होता। पर कुछ मनस्वी, कर्मशील पुरुष लक्ष्य निर्धारित करके काल-सरिता की लहरों को अपने बाहुबल से चीरते हुए आगे बढ़ते हैं और उनमें से बहुत से अपने लक्ष्य तक पहुंचते भी हैं। श्री क्षितीश वेदालंकार उन्हीं मनस्वी पुरुषों में से हैं, जो अपने जीवन का एक लक्ष्य बना कर चले हैं और उस लक्ष्य तक पहुंचे हैं। उनका जीवन समाज सेवा के लिए अर्पित रहा है।

श्री क्षितीश वेदालंकार स्वभाव से घुमक्कड़, कुशल वक्ता और सिद्ध-हस्त लेखक हैं। जब वह गुरुकुल कांगड़ी में तेरहवीं कक्षा में पढ़ते थे, तब वह आठ ब्रह्मचारियों की उस टोली में थे, जो सन् 1938 में मई मास में श्री दीनदयालु शास्त्री की अध्यक्षता में कैलाश यात्रा के लिए गई थी और संकटों का सामना करके सफलतापूर्वक सकुशल लौट आई थी। स्नातक होने के बाद भी मेरा उनसे इसी रूप में परिचय रहा कि उन्हें देशाटन का बहुत चाव था और तनिक भी मौका मिलते ही वह किसी नये स्थान की यात्रा पर निकल जाते थे। मिलने पर वह अपनी यात्राओं के वर्णन अत्यन्त रोचक ढंग से सुनाते थे। भारत में शायद ही कोई ऐसा दर्शनीय स्थान हो, जहां वह हो न आये हों। इसके अलावा वह मारिशस, नैरोबी, इंगलैंड, आदि कई विदेशों में भी चक्कर लगा आये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्तृत्व की प्रतिभा क्षितीश जी में छात्रावस्था से ही थी। स्नातक होने के बाद वह आर्यसमाज के प्रचारक बन गये। तब तो भाषण देना उनका व्यवसाय ही बन गया। निरन्तर अभ्यास से उनकी भाषण-शैली निखरती गई और अपने श्रोताओं को घंटों मंत्र मुग्ध किये रखना उनके लिए सामान्य बात हो गई। अब स्थिति यह है कि विभिन्न उत्सवों और समारोहों से उनके पास इतने निमंत्रण आते रहते हैं कि उन सबको निपटा पाना उनके लिए सम्भव नहीं होता।

कुशल वक्ता होने के साथ-साथ श्री क्षितीश जी सिद्धहस्त लेखक भी हैं। भाषण और लेखन, दो भिन्न कलाएं हैं। ऐसे लोग विरले होते हैं, जिनका दोनों पर अच्छा अधिकार हो। परन्तु वे जितने अच्छे वक्ता हैं, उससे कहीं अधिक अच्छे लेखक हैं। वर्षों तक वह दैनिक 'हिन्दुस्तान' में अग्रलेख और 'यत्र तत्र सर्वत्र' जैसे स्तम्भ लिखते रहे, जिनमें सामयिक प्रसंगों पर उनकी लेखन-क्षमता प्रकट होती है। इसके अलावा उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की और स्थायी महत्व की हैं। बंगला देश की यात्रा पर लिखी गई उनकी पुस्तक "बंगला देश : स्वतन्त्रता के बाद" तो अत्यन्त मार्मिक बनी है। अपने समय के सर्वोत्तम यात्रा-विवरण के रूप में वह पुरस्कृत भी हुई।

केवल वाणी और लेखनी से ही नहीं, अपितु शरीर से भी, कर्म से भी, समाज सेवा का दम श्री क्षितीश में है। सन् 1939 में जब आर्यसमाज ने निज़ाम हैदराबाद के अत्याचारी शासन के विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ने की घोषणा की, तब प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी के साथ जाने के लिए गुरुकुल कांगड़ी के पन्द्रह ब्रह्मचारियों का जत्था तैयार हुआ। श्री क्षितीश इस जत्थे के नेता थे। महात्मा नारायण स्वामी को निज़ाम पुलिस ने सत्याग्रह करने से पहले ही पकड़ कर अपनी रियासत की सीमा से बाहर भेज दिया। परन्तु श्री क्षितीश के जत्थे के पन्द्रहों ब्रह्मचारी पुलिस और सी. आई. डी. के चंगुल में फंसे होने के बावजूद सुल्तान बाज़ार पहुंच कर बाकायदा सत्याग्रह करके गिरफ्तार होने में सफल हुए। जासूसी उपन्यास से भी रोमांचक उस घटनाचक्र का श्रेय श्री क्षितीश को ही है, क्योंकि वही इस जत्थे के नेता थे। उस समय उनकी आयु मुश्किल से बाईस बरस रही होगी।

उन दिनों को अब भी याद कर सकता हूं। जब हम लोग गुरुकुल से रवाना हुए थे, तब सभी लोगों का यह विचार था कि हममें से सब जीवित वापस नहीं लौट पायेंगे। वस्तुतः हम पन्द्रह में से एक—रामनाथ—तो वापस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट ही नहीं पाया—आन्दोलन में शहीद हो गया। पर उस समय यहीं आशंका प्रबल थी कि अधिकतर लोग लौट नहीं पायेंगे। फिर भी ये लोग गये। क्षितीश जी को ही उनके सहाध्यायियों ने, प्राध्यापक वर्ग ने तथा हितैषियों ने स्नातक-परीक्षा छोड़कर जाने से रोकना चाहा—क्योंकि वे सभी के स्नेह-भाजन और प्रतिभाशाली छात्र थे, परन्तु क्षितीश जी का आग्रह ही विजयी रहा। पर वह जीवित वापिस न लौटने का खतरा उठाकर भी गए और विजयी होकर लौटे।

श्री क्षितीश वेदालंकार में ब्रह्म और क्षत्र के गुणों का सुन्दर समन्वय है। वह परिश्रमशील अध्येता, विचारक, विद्वान् उपदेशक हैं। अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए वह सतत उद्यत सैनिक हैं। इसके साथ ही साथ वह व्यवहारकुशल भी हैं। परस्पर विरोधी विचार वाले साथियों में मतैक्य स्थापित करने की कला उन्हें आती है। इसीलिए उनसे किसी का विरोध नहीं हो पाता। उनका हंसमुख चेहरा, मृदु भाषण, और सौम्य स्वभाव सबको अपना आत्मीय बनाये रखता है। परमात्मा उन्हें दीर्घ जीवन प्रदान करें और वह इसी प्रकार हंसते-बोलते समाज सेवा में लगे रहें।

—एच 1, नवीन शाहदरा
दिल्ली—110 032

बहुमुखी प्रतिभा के धनी होकर भी इतने सरल

—नरेन्द्र कुमार 'आलोक'

बात उन दिनों की है, जब मैं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहा था। घटना सम्भवतः सन् 1973-74 की होगी। पण्डित क्षितीश जी वेदालंकार का गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर रात्रिकालीन मुख्य व्याख्यान चल रहा था।

बाल सुलभ चंचलता के कारण भला मैं रात्रि के दस बजे तक व्याख्यान सुनने कहां बैठने वाला था? लेकिन अचानक मेरे कानों में वक्ता के कुछ शब्द पड़े। मैं अपने को पंडाल में जाने से रोक न सका और व्याख्यान सुनने बैठ गया। हजारों की भीड़ में पंडित जी प्रखर वक्ता के रूप में अपने विचार प्रस्तुत कर रहे थे। विषय था— 'बांगला देश'। पंडित जी का परिचय कराया गया था कि ये अभी-अभी बांगला देश की यात्रा करके लौटे हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही दैनिक 'हिन्दुस्तान' के वरिष्ठ सहायक संपादक हैं। पंडित जी ने जिस प्रकार बांगला देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथ्यों की समीक्षात्मक जानकारी दी, उससे विशाल जन समुदाय पंडित जी की व्याख्यान शैली की उन्मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगा।

उद्‌भट विद्वान्, लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार, स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष विचारक, प्रतिभा सम्पन्न तार्किक पत्रकार, वैदिक मनीषी, गहन-गम्भीर साहित्याराधक, सुरभारती के अनन्योपासक, भारतीय संस्कृति के मुखर पोषक, प्रख्यात शिक्षाविद्, ओजस्वी सत्योपदेष्टा, धीर-गम्भीर, सहज-सरल, शांत-प्रशांत, मां सरस्वती के चरणारविन्द के निष्ठावान सेवक, निष्कपट, निश्छल, निस्पृह आदि अनेकानेक मानवीय गुणों से विभूषित पंडित क्षितीश वेदालंकार का जन्म 16 सितम्बर सन् 1916 (आश्विन शुक्ला एकादशी, संवत् 1973) को दिल्ली में हुआ। सौभाग्यवश आपके पिता श्री मानकचन्द जी एवं माता श्रीमती त्रिवेणी देवी जी दोनों ही आर्यसमाज के सम्पर्क में आए तो उन्होंने बालक की शिक्षा-दीक्षा के लिये उसे गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। वहां एक श्रेष्ठ एवं सुयोग्य शिष्य की परम्परा का निर्वाह करते हुए सन् 1926 से सन् 1939 तक शिक्षा प्राप्त की।

किशोरावस्था में सायंकालीन भ्रमण करते हुए एक दिन इस होनहार ब्रह्मचारी को सांप ने काट लिया। यह सनसनी खेज खबर जैसे ही गुरुकुलीय परिसर में फैली, वैसे ही सब गुरुकुलवासी चिंतित हो उठे। इनके आचार्य तो विगलित कण्ठ और आर्द्र नयन होकर यही कह पाए— "हाय! गुरुकुल का ऐसा होनहार विद्यार्थी ऐसे चला जाएगा।" पर सौभाग्यवश उस समय कुशल डाक्टर गुरुकुल में विद्यमान थे। सर्पविष-निरोधी उनके इंजेक्शन से अगले दिन जब यह छात्र स्वस्थ हो गया, तो सभी कुलवासी बड़े प्रसन्न हुए।

गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक बनने के बाद आपने अपनी रुचि के अनुसार पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया। देश-विभाजन के पश्चात् वे सीधे पत्रकारिता से जुड़े। पहले पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति कालीन अर्जुन में और फिर दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादकीय मण्डल में प्रतिष्ठित हुए।

तत्कालीन पत्रकारिता में चार चांद लगाने वाले युवा पत्रकार क्षितीश जी ने दैनिक हिन्दुस्तान जैसे प्रसिद्ध समाचार-पत्र में कार्य करते हुए भी आर्यजगत् को कभी नहीं भुलाया। ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा का परिचय उन्होंने 'दिव्य दयानन्द' जैसा ग्रन्थ लिखकर दिया।

पंडित जी की अन्य मौलिक कृतियां आज भी साहित्य की श्रीवृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रही हैं। उनकी प्रमुख कृतियां हैं—'जातिभेद का अभिशाप', 'बांगलादेश: स्वतन्त्रता के बाद,' (शासन द्वारा पुरस्कृत), 'आर्यसमाज की विचारधारा', 'तूफान के दौर से पंजाब', (इस ग्रन्थ का अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ है)। 'निजाम की जेल' में, 'श्वेतलाना' (उपन्यास), 'गांधी जी के हास्य विनोद', 'ईश्वर' वैज्ञानिकों की दृष्टि में—ये सभी ग्रन्थ पण्डित जी की कीर्ति को बढ़ाने वाले हैं।

निःसंदेह आपके कुशल सम्पादकीय सहयोग से दैनिक हिन्दुस्तान ने चहुंमुखी उन्नति की। उस समय इस समाचार पत्र को भारत सरकार की ओर से तीन बार हिन्दी पत्रों में प्रथम स्थान दिया गया— और उन तीनों ही बार समाचारपत्र की ओर से इनको पुरस्कृत किया गया।

सन् 1979 में दैनिक हिन्दुस्तान से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आर्य जगत् की 'आर्यजगत्' के माध्यम से आप जो अमूल्य सेवा कर रहे हैं उसे कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा। सम्प्रति 'आर्यजगत्' आर्यसमाज का सबसे अधिक लोकप्रिय और सबके अधिक पढ़ा जाने वाला पत्र है।

क्षितीश जी किशोरावस्था से ही घुमक्कड़ रहे हैं। कैलाश मानसरोवर एवं समस्त उत्तराखण्ड की पैदल यात्रायें की हैं। सम्पूर्ण भारत के मुख्य स्थानों का भ्रमण करने वाले क्षितीश जी ने समय-समय पर भारत के बाहर मारीशस-नैरोबी, लंदन, बांगलादेश,पाकिस्तान, तिब्बत एवं नेपाल आदि अनेक देशों की यात्रायें भी की हैं। इन यात्राओं से उनके ज्ञान और अनुभव में स्पृहणीय वृद्धि हुई है।

पत्रकारिता के क्षेत्र को गौरवमय रूप देने के लिए क्षितीश जी ने दैनिक हिन्दुस्तान के रविवासरीय अंक में लेख लिखे। उनको 3 पुस्तकों में संकलित किया गया है। वे ग्रन्थ हैं— 'फिर इस अन्दाज से बहार आयी', 'ओ मेरे राजहंस!' एवं 'देवता: कुर्सी के'। इन लेखों में उनकी विद्वत्ता के साथ साहित्य-रस का जैसा परिपाक हुआ है, वह देखते ही बनता है।

अपने लेखन और सम्पादन के लिए प्रसिद्ध क्षितीश जी ने मारिशस स्मारिका, लन्दन स्मारिका, सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी स्मारिका, ऋषि निर्वाण शताब्दी स्मारिका और डी.ए.वी. शताब्दी स्मारिका आदि से उन प्रसंगों को— जिनके अवसर पर वे निकाली गई हैं— चिरस्मरणीय बना दिया है। साथ ही 'सातवलेकर अभिनन्दन ग्रन्थ' एवं 'श्रीकृष्ण सन्देश' के जुगल किशोर बिड़ला स्मृति अंक का भी उन्होंने कुशल सम्पादन किया जिन्हें सुधी जनों ने खूब सराहा।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं—जो समाज के लिए कुछ न करके भी 'हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना कुछ किया'— जैसी अहंमन्यता प्रकट करते रहते हैं। कुछ निर्मल व्यक्तित्व ऐसे होते हैं, जो समाज के अभ्युत्थान के लिए तिल-तिल समर्पित होते रहने पर भी अनाम बने रहने में ही सन्तुष्ट रहते हैं। झूठी वाह-वाही के जाल में जो नहीं फंसते या उसे नहीं ओढ़ते, ऐसे मूक साहित्यकार एवं पत्रकार हैं क्षितीश जी। अपनी नैतिक मान्यताओं पर दृढ़ रहते हुए उन्होंने वाह्य आडम्बरों को कभी महत्व नहीं दिया। उनको लगता है कि किसी व्यक्ति को प्रशंसा के चौराहे पर लाकर खड़ा करना उसको सार्वजनिक रूप से मृत्यु दण्ड सुनाना है।

सेठाश्रयी पत्रकारिता करते हुए भी श्री क्षितीश जी ने अपने सिद्धान्तों से समझौता कभी नहीं किया। अपनी आस्थायें एवं सिद्धान्तों को जीवित रखने में सदैव सजग रहे। इसके लिए उन्होंने कम कुर्बानी नहीं की। अनेक लेखकों एवं पत्रकारों को स्वाभिमान एवं गौरव के साथ जीने की कला सिखाई। पण्डित जी अक्सर कहते हैं—"बिकने के लिए छपो मत, छपने के लिये बिको मत।" स्वयं विज्ञापनी दुनियां से दूर रहते हुए भी वहुत से साहित्यकारों व पत्रकारों को सम्मानित कराने में वे सर्वदा आगे रहे।

—'कथनी से करनी भली' के सिद्धान्त का अनुसरण करने वाले क्षितीश जी ने 'जातिभेद का अभिशाप' के प्रणयन के साथ ही अन्तरजातीय विवाह कर अपने विचारों को सार्थकता प्रदान की है।

सम्प्रति आपके परिवार में एक नहीं दो-दो आदित्य भासमान हैं। उनमें से एक यदि विनय के आदित्य हैं, तो दूसरे शील के आदित्य हैं। सुयोग्य गृहिणी के दायित्व को सम्पन्न करती हुई, श्रीमती विश्ववारा एवं स्नेह की रश्मियां बिखेरती हुई श्रीमती स्नेह रश्मि आपकी दो कन्यायें हैं। सन् 1944 से सहधर्मिणी के रूप में कन्या गुरुकुल हाथरस की विदुषी स्नातिका श्रीमती पवित्रा देवी सही अर्थों में उनकी सहधर्मिणी हैं।

जब मैंने पण्डित जी से उन्हें 74वें जन्म दिवस के उपलक्ष में सम्मानित किये जाने पर, प्रतिक्रिया पूंछी तो, वे मुस्कुरा कर कहने लगे— 'मुझे तो वधाई शब्द में भी वध की गंध आती है। मुझे जनता एवं साहित्यकार बन्धुओं ने जो मानसिक स्नेह दिया है, वही मेरी स्थिर निधि है। इससे अधिक मेरे लिए कुछ भी प्राप्तव्य नहीं हैं।'

चलते-चलते मैं पूंछ बैठा— "यदि अचानक किसी परिस्थिति-विशेष के कारण आपको सम्मानित करने का यह आयोजन स्थगित हो जाए, तो आपको कैसा लगेगा?" तो बोले— "मैं तो जो हूं वही और वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहूंगा न । मुझे क्या फर्क पड़ना है । फर्क तो आयोजकों को पड़ेगा । वे जानें, उनका काम जाने । हमको तो केवल कर्म करने का अधिकार है, फल का नहीं ।"

ऐसे साहित्य साधक के चरणों में—
पदों को आपदा मान,
तजा न कभी स्वाभिमान ।
लेखनी झुकी नहीं,
ज्ञान ज्योति बुझी नहीं ।
सर्वदा जो रहे समान,
करूं सदा उनका सम्मान
जैसी कुछ टूटी-फूटी पंक्तियां
ही समर्पित कर सकता हूं ।

प्रभो ! क्षितीश जी अपनी साहित्यिक सेवा से क्षिति के ईश बनकर वर्षों हम जैसों का पथ प्रदर्शन करते रहें ।

—119, गौतमनगर,
नई दिल्ली—49

सम्पादक-शिरोमणि क्षितीश जी

—सत्यप्रिय शास्त्री
प्राचार्य, दयानन्द बाल महाविद्यालय, हिसार

सम्पादक शिरोमणि श्री क्षितीश वेदालंकार का नाम सामने आते ही एक ऐसा व्यक्तित्व उभर कर आंखों के सामने आता है, जो सर्वतोमुखी प्रतिभा का धनी है । वे केवल श्रेष्ठ वक्ता, श्रेष्ठ पत्रकार, और श्रेष्ठ साहित्यकार ही नहीं, प्रत्युत मानवीय गुणों से भरपूर एक श्रेष्ठ मानव भी हैं । प्राय: लेखनी और वाणी की ओजस्विता व्यक्ति के सहज शत्रु भी उत्पन्न कर देती है, पर क्षितीश जी से शत्रुता रखने वाला व्यक्ति मुझे आज तक नहीं मिला । वे सही अर्थों में अजात शत्रु हैं ।

उनके साहित्यकार रूप का जो यत्किंचित् परिचय मैं पा सका हूं उसमें मैंने देखा है कि साहित्य की अभिधा-लक्षणा-व्यंजना वृत्तियों में व्यंजनावृत्ति सर्वोत्तम मानी जाती है, और क्षितीश जी उसमें कुशल हैं । शब्दों के अभिधार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बजाय उनमें जो व्यंग्यार्थ छिपा होता है, सुधी लोग तो उसी का अधिक आनन्द लेते हैं। क्षितीश जी के ऐसे ललित निबन्धों की तीन पुस्तकें मेरे सामने आई हैं, और तबसे मैं उनकी लेखनी का कायल हूं। इन तीनों के नाम हैं— 1. 'फिर इस अन्दाज से बहार आई !' 2. 'ओ मेरे राजहंस !' और 3. 'देवता: कुर्सी के' इन ललित निबन्धों में जहां क्षितीश जी की बहुज्ञता और विद्वत्ता का पता लगता है, वहां साहित्यिक भाषा की गहरी पकड़ का भी। उनकी इस कुशलता को देख कर मुझे किसी संस्कृत-कवि की यह सूक्ति स्मरण हो आती है—

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मत: ।
परस्य हृदये लग्नं यन्न घूर्णयति तच्छिर: ।।

—उस कवि के काव्य से और उस धनुर्धारी के बाण से क्या लाभ जो दूसरे के हृदय में लग कर उसका सिर न झुमा दे। क्षितीश जी का लेखन सीधा हृदय में जाकर लगता है और झुमाते हुए पाठक के मुंह से निकलता है 'वाह' ! इस शैली की एक विशेषता यह भी है कि व्यंजना की जिस चाशनी में लपेटकर व्यंग्यार्थ का बोध कराया जाता है उससे स्वयं वह व्यक्ति भी,जिस पर व्यंग्य किया गया है, उतना ही रस ग्रहण करता है जितना अन्य साहित्य-रसिक पाठक आनन्द लेते हैं।

इतिहास के आईने को पीछे घुमाकर जब मैं देखता हूं, तो मुझे स्पष्ट लगता कि उनमें ओज और तेज की यह धारा छात्र-जीवन से ही बहनी प्रारम्भ हो गई थी। बाद के जीवन में तो वह पुष्पित और पल्लवित ही हुई। विद्यार्थी जीवन में, अबसे 50 वर्ष पूर्व, उन्होंने अपनी स्नातक परीक्षा को लात मारकर हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के सबसे पहले जत्थे में शामिल होने का जो साहस किया था, वह अतुलनीय है। उस साहस की, जिसे दुस्साहस ही कहना चाहिए— कथा उन्होने अपनी 'निजाम की जेल में' नामक पुस्तक में लिखी है। वह सारी कथा इतनी रोमांचक है कि आज भी उसे पढ़ते हुए रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के आचार्य महोदय ने इस होनहार विद्यार्थी के पिताश्री को पत्र लिखा कि आप इसे समझाइए— स्नातक परीक्षा छोड़कर जेल जाने के उत्साह में यह अपना सारा भावी जीवन खराब न करे। निजाम की जेलों में जिस प्रकार के अत्याचारों की कथाएं सामने आ रही हैं और आपका बालक जिस उत्साह से सत्याग्रह में शामिल होने जा रहा है, उसको देखते हुए हम अपनी संस्था की ओर से इसके सुरक्षित वापिस लौटने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कोई गारण्टी नहीं ले सकते। इसलिए आप ही कृपा करके इसे समझा बुझाकर हैदराबाद के सत्याग्रह में जाने से रोकिये। अगर यह गुरुकुल से स्नातक बनने के बाद सत्याग्रह में शामिल हो, तो हमें कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि किसी विद्यार्थी के स्नातक बन जाने के पश्चात् उसकी सुरक्षा की जिम्मेवारी संस्था की नहीं रहती, स्वयं उस व्यक्ति की ही हो जाती है।

परन्तु ब्रह्मचारी क्षितीश तो आचार्य जी की इस चिट्ठी के पहुंचने से पहले ही अपने पिता की लिखित स्वीकृति ले चुका था और उसने अपने पिता का स्वीकृति-पत्र इसी प्रयोजन से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के इस पहले जत्थे के साथ आए गुरुकुल के एक वरिष्ठ प्राध्यापक महोदय को सौंप दिया था। बाद में जब पिता को आचार्य जी की चिट्ठी मिली, तो उन्होंने भी अपने अनुपम धैर्य और मानसिक सन्तुलन का परिचय दिया और कहा— "जो स्वीकृति मैं दे चुका हूं अब उसे वापिस लेने को मैं तैयार नहीं हूं— भले ही मुझे उसका कितना ही भयंकर दुष्परिणाम भुगतना पड़े।" उनके इस सत् साहस को देखकर सब चकित रह गए। जत्थे में शामिल सभी विद्यार्थियों के मन में अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए सर्वस्व बलिदान की भावना उमड़ पड़ी। उसके बाद आर्य सत्याग्रह का यह पहला जत्था किस प्रकार हैदराबाद पहुंचा और कैसे वह गिरफ्तार हुआ, तथा कैसे प्रत्येक ब्रह्मचारी को डेढ़-डेढ़ वर्ष की सज़ा मिली—वह सारी कथा किसी जासूसी उपन्यास से कम नहीं है। लेख के विस्तार भय से वह कथा मैं यहां नहीं दे रहा हूं, परन्तु इस लेख के पाठकों से इतना आग्रह अवश्य कर रहा हूं कि वे 'निजाम की जेल में' पुस्तक अवश्य पढ़ें जिससे उन्हें आर्यसमाज और समग्र राष्ट्र के लिए गौरवास्पद उस सत्याग्रह की— जिसकी शानदार सफलता पर सत्याग्रह के देवता की तरह पूजित महात्मा गांधी भी ईर्ष्या करते थे— सही पृष्ठभूमि जान सकें। यह मैं इसलिए भी कह रहा हूं कि देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद पैदा हुई नई पीढ़ी देश के वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को देख कर उस युग के वातावरण की कल्पना नहीं कर सकती।

उस सत्याग्रह की सफल समाप्ति के बाद जब क्षितीश जी ने गुरुकुल के आश्रम में निवास कर स्नातक-परीक्षा देने की अनुमति के लिए प्रार्थनापत्र दिया, तब उन्हें पता लगा कि उनकी अनुपस्थिति में ही उन्हें स्नातक परीक्षा में उत्तीर्ण मानकर उनकी 'वेदालंकार' की उपाधि का प्रमाण-पत्र उनके घर भेज दिया है। उनके केस पर विचार करते हुए गुरुकुल सीनेट में कहा गया कि जो विद्यार्थी सदा अपनी कक्षा में प्रथम डिवीजन में पास होकर प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम स्थान प्राप्त करता रहा हो, उसने तो हैदराबाद की जेल-यातना की कठोर परीक्षा में शत प्रतिशत अंक लेकर ऐसा कीर्तिमान स्थापित किया है कि अब दुबारा उसकी परीक्षा लेना उस कीर्तिमान का अवमूल्यन मात्र है। ऐसी क्रियात्मक परीक्षा आज तक किसने दी है ?

सन् 1939 में गुरुकुल से स्नातक होने के बाद क्षितीश जी सीधे आर्यसमाज की सेवा के मैदान में कूद पड़े और सन् 1947 में देश-विभाजन तक वे इस मैदान में अपनी वक्तृत्व कला की धाक जमाते रहे। पंजाब उत्तर भारत में आर्यसमाज का सबसे बड़ा गढ़ था और सारे पंजाब का सर्व शिरोमणि समाज था आर्यसमाज बच्छोवाली। जब बच्छोवाली के वार्षिकोत्सव पर सन् 1945 में क्षितीश जी का पहला भाषण हुआ, तो उनके सम्बन्ध में उस समय के सर्वमान्य आर्यनेता तथा समस्त उर्दू जगत् में अपनी लेखनी का लोहा मनवाने वाले प्रसिद्ध पत्रकार महाशय कृष्ण ने अपने अखबार में अग्रलेख लिखकर आर्यसमाज के इस नवयुवक वक्ता को आर्यसमाज में नई शक्ति भरने वाला बताकर उसका स्वागत किया था।

देश-विभाजन की भयंकर त्रासदी से गुजरने के बाद इन्होंने लाहौर से दिल्ली आकर पत्रकारिता के क्षेत्र में भाग्य आजमाना चाहा। तब वह भाग्य भी इनके लिए और पत्रकारिता के लिए— दोनों के लिए सौभाग्य सिद्ध हुआ। वे 5 वर्ष तक दिग्गज पत्रकार पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति के सान्निध्य और मार्गदर्शन में 'अर्जुन' अखबार में काम करते रहे। [पं. इन्द्र जी के समय पत्र का नाम "अर्जुन' ही था, 'वीर अर्जुन' नहीं। 'वीर अर्जुन' तो उस पुराने 'अर्जुन' के बन्द होने के कई साल बाद उस पुराने नाम की साख का लाभ उठाने के लिए इस नए नाम से निकला। इसका उस पुराने अखबार से कोई सम्बन्ध नहीं है।]

उसके बाद सन् 1952 में ये देश के उस समय के हिन्दी के सर्वप्रसिद्ध समाचार पत्र दैनिक 'हिन्दुस्तान' में आ गए। यहां इनकी प्रतिभा को जब और खुलकर खेलने का मौका मिला तो उसमें चार चांद लग गए। 'हिन्दुस्तान' अखबार अखिल भारतीय समाचार पत्र प्रतियोगिता में तीन बार प्रथम आया, और यह कैसा चमत्कार है कि उस विजय के लिए तीनों बार पुरस्कार प्राप्त होने का सौभाग्य यदि किसी को मिला, तो वह और कोई नहीं, हमारे ये क्षितीश जी ही थे।

सन् 1979 में दैनिक हिन्दुस्तान से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आर्य प्रादेशिक सभा 'आर्यजगत्' के लिए इनका सहयोग प्राप्त करने में सफल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई— जबकि अन्य सभाएं— और स्वयं सर्वशिरोमणि सार्वदेशिक सभा भी इनका सहयोग प्राप्त करने को आतुर रहीं। इस दौड़ में आर्य प्रादेशिक सभा बाजी मार गई। अब पिछले दस साल से वे 'आर्यजगत्' के सम्पादक हैं।

क्षितीश जी ने 'आर्यजगत्' का स्पर्श क्या किया कि उसमें चमत्कार आना प्रारम्भ हो गया। आज समस्त आर्यसमाजी पत्रों में जितनी प्रतिष्ठा और जितनी लोकप्रियता 'आर्यजगत्' को प्राप्त है, उतनी अन्य किसी पत्र को नहीं। आज यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आर्यसमाजी और गैर-आर्यसमाजी वर्गों में जितना बड़ा पाठक समुदाय 'आर्यजगत्' का है, उतना अन्य किसी पत्र का नहीं। यह सब क्षितीश जी की ही बदौलत है। उनकी लेखनी से जितने सुलझे हुए और प्रखर राष्ट्रवाद के समर्थक लेख निकलते हैं, उनसे पाठकों को नई दिशा और नई प्रेरणा मिलती है। इसका कारण मैं यही समझता हूं कि सर्वथा निर्भीक होकर, बिना किसी लाग-लपेट के, राष्ट्रहित की भावना से, वे सधी हुई भाषा में जिस प्रकार अपने विचार प्रकट करते हैं, उससे उनके विचारों से असहमत लोग भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। किसी पत्रकार की इससे बढ़ कर सफलता और क्या हो सकती है ?

क्षितीश जी के प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार, ओजस्वी वक्ता और 'न दैन्यं न पलायनम्' के उपासक पत्रकार रूप को जितना-जितना मैं स्मरण करता हूं, उतना उतना ही मुझे लगता है कि आर्यसमाज का यह सौभाग्य है कि ऐसा विलक्षण व्यक्ति उसकी सेवा में अहर्निश दत्तचित्त है, तो उस आर्य-समाज की किसी भी क्षेत्र में पराजय कैसे सम्भव है ?

परमात्मा से प्रार्थना है कि ऐसे राष्ट्रचेता और समाज-चेता व्यक्ति का मार्गदर्शन और सान्निध्य हमें चिरकाल तक प्राप्त होता रहे। 74वें जन्मदिवस पर क्षितीश जी के लिए मेरे अन्तःकरण से एक ही ध्वनि निकलती है—

'तुम जियो हजारों साल।'

श्री क्षितीश वेदालंकार–एक बहुमुखी व्यक्तित्व

—सच्चिदानन्द शास्त्री
महामन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

आर्य समाज की मूर्धन्य शिक्षा-संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी, हरद्वार ने, जिसकी स्थापना अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वारा हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, देश को अनेक मेधा-सम्पन्न स्नातक दिये जिन्होंने शिक्षा, समाज-सेवा पत्रकारिता, साहित्य-निर्माण तथा राजनीति आदि विविध क्षेत्रों में कीर्ति के मान-दण्ड स्थापित किये। ऐसे ही ख्यातनामा स्नातकों में श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार भी हैं।

स्नातक परीक्षा होने वाली थी और गुरुकुल के वार्षिक उत्सव पर दीक्षान्त समारोह का आयोजन होने वाला था कि उससे पूर्व निज़ाम हैदराबाद के निरंकुश शासन के विरुद्ध आर्यसमाज ने सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया। स्व. नारायण स्वामी जी महाराज का सहयोग के लिये तार गुरुकुल में भी पहुंचा। क्षितीश जी भला कब चुप बैठने वाले थे। वे गुरुकुलीय छात्रों के प्रथम जत्थे का नेतृत्व करते हुए निज़ाम सरकार की कारा के अतिथि बन गये। इस जेल-जीवन में उन्होंने नेतृत्व-शक्ति, धैर्य और साहस का अद्‌भुत परिचय दिया।

अन्ततः निज़ाम सरकार ने पराजय स्वीकार कर ली तथा आर्यसमाज की मांगे मान लीं। विजय के रूप में अपनी तपस्या का सुफल प्राप्त कर क्षितीश जी वापिस गुरुकुल पहुंचे। वेदालंकार स्नातकोपाधि प्राप्त की और पंजाब प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा के महोपदेशक के रूप में धर्म-प्रचार में जुट गये।

उपदेशक के रूप में भी आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं वाग्मिता का परिचय दिया और शीघ्र ही आर्यसिद्धान्तों के सुवक्ता के रूप में स्वयं को स्थापित कर लिया। इसका प्रमाण यह है कि आर्यसमाज बच्छोवाली (लाहौर) के वार्षिकोत्सव पर सन् 1945 में आपके प्रथम व्याख्यान से ही प्रभावित होकर आर्यसमाज के तत्कालीन सर्वोच्च नेता और प्रसिद्ध पत्रकार महाशय कृष्ण ने आपके आर्य-मंच पर अवतरण को 'एक देदीप्यमान नक्षत्र का उदय' बताया। उपदेशक के रूप में सुप्रतिष्ठित होकर भी आपकी रुचि क्योंकि साहित्य-सृजन एवं पत्रकारिता में थी, अतः आप देश-विभाजन के बाद इधर ही आ गये। तब से अद्यावधि इसी क्षेत्र में सर्वात्मना सेवा-रत हैं। प्रारम्भ में अनेक पत्रों का सम्पादन करते हुए आप 'हिन्दुस्तान' दैनिक के सम्पादक-वर्ग में सम्मिलित हो गये। वहां पत्रकारिता में कीर्तिमान स्थापित करके निवृत्त हुए ही थे कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने 'आर्य जगत्' साप्ताहिक के सम्पादनार्थ आहूत कर लिया। आज 'आर्य जगत्' आर्यजगत् का शिरोमणि पत्र आपके ही सत्प्रयत्न से सुप्रतिष्ठित है। उक्त पत्र का कलेवर, आकार-प्रकार लेखादि का चयन सभी कुछ उच्च कोटि का होता है। यह पत्र एक प्रकार से आर्यत्व एवं आर्यसमाज का पहरुआ है। इस सन्दर्भ में विशेषतः उल्लेखनीय यह है कि श्री क्षितीश जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्पादकीय अत्यन्त सामयिक एवं विचारोत्तेजक होते हैं, अतः संग्राह्य भी, और पाठक उन्हें पढ़ने को लालायित रहते हैं।

एक अच्छे वक्ता, सुलझे हुए पत्रकार तो क्षितीश जी हैं ही, उच्चकोटि के एक साहित्यकार भी हैं। उनकी अनेक रचनाएं लोकप्रिय तथा स्थाई महत्व की हैं; किन्तु विशेषतः उल्लेखनीय सद्यः प्रकाशित पुस्तक है—Storm in Punjab। यह विरली पुस्तक है जिसका हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है। अंग्रेजी से किसी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद होना आम बात है, पर हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद होना असामान्य बात है। इसकी सराहना सब तरफ से हुई है। इस पुस्तक में इतिहास, राजनीति एवं धर्म आदि सभी के परिप्रेक्ष्य में पंजाब समस्या की विवेचना की गई है। यह पुस्तक लेखक श्री क्षितीश जी के व्यापक अध्ययन, विश्लेषण-शक्ति तथा सूझ-बूझ का परिचय देती है।

श्री क्षितीश का व्यक्तित्व बहुमुखी, कृतित्व व्यापक तथा स्वभाव सहज-सरल है। आर्यसमाज को ही नहीं, देश को उनकी आवश्यकता है। मेरा तो उनके साथ बन्धु भाव है, मैत्री सम्बन्ध हैं। मेरी शुभकामनाएं तो सदैव उनके साथ हैं ही। ईश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करे।........भूयश्च शरदः शतात्।

पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार

—डॉ. धर्मपाल
प्रधान, दिल्ली आ. प्र. सभा

आर्यसमाज के गौरव-पूर्ण इतिहास के चमकते अध्याय, सुप्रसिद्ध पत्रकार, सामाजिक विषयों के स्वतन्त्र विचारक, वेदोपदेष्टा, सरल सौम्य स्वभावी पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार के विषय में लिखना मेरे लिए कठिन हो गया है। मैं उनकी मेधा एवं विवेक तथा कार्यक्षमता से इतना अभिभूत हूं कि तटस्थ चिन्तन उनके विषय में, मैं कर ही नहीं सकता। पं. जी ख्यातिप्राप्त लेखक के साथ-साथ प्रभावी वक्ता एवं कथावाचक भी हैं। दिल्ली की आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों के मंच उनके बिना सूने से रहते हैं। जब वे आ विराजते हैं, तभी उन मंचों की शोभा बढ़ती है। उनकी काया कोई लम्बी चौड़ी नहीं है, पर उनका मस्तिष्क विशाल है और उसी प्रकार विशालतर है, उनका हृदय। यह तुलना किसी और से करने की मैं धृष्टता नहीं कर सकता। यह तुलना उनके ही निजी व्यक्तित्व के नियामक दो तत्त्वों की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वे मंच पर उपस्थित होते हैं, तो अन्य वक्ता भी सावधान हो जाते हैं। वे जानते हैं कि पं. जी का ज्ञान एवं अनुभव इतना है कि उन्हें अपनी बात सावधान होकर तथ्यों के आधार पर ही रखनी चाहिए। स्वयं पंडित जी के कथ्य सदा ही ऐतिहासिक तथ्यों एवं उनकी अपनी स्वोपज्ञ विचारणा से गुम्फित होते हैं।

मानवीय पं. जी की सहनशीलता की कोई सीमा नहीं। वे समय की नब्ज को दूर से ही पहचानते हैं। लगभग दस वर्ष पहले एक आर्यसमाज के विद्वान ने उनकी पत्रकारिता शैली के विषय में लिखा कि उन्हें लेखों का चयन और प्रकाशन इस प्रकार नहीं, इस प्रकार करना चाहिए। पं. जी ने सरल और विनीत भाव से उनके पत्र को ज्यों का त्यों इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित कर दिया कि हमें तीस-चालीस वर्ष के पत्रकारिता के अनुभव के बाद भी जो सुहृद् मित्रों से समयानुकूल शिक्षा मिलती है, उसे हम सादर ग्रहण करने के लिए सदैव उद्यत हैं। एक अन्य मित्र ने अभी कुछ दिन पहले उनके द्वारा प्रकाशित 'हम हिन्दू हैं' विषय पर आपत्तियां कीं। इस पर पं. जी ने लिख दिया कि हम विशालतर हित को देखते हुए, इस पर कोई टिप्पणी करना समयोचित नहीं समझते। वे मित्र पं. जी के द्वारा सम्पादित आर्यजगत् के 'भारत को हिन्दू राज्य घोषित करो' विशेषांक को संभवतः देख नहीं पाए होंगे। उस अंक में इस विषय का विशद विवेचन उपलब्ध है। हिन्दू शब्द के लिए उनकी अपनी मौलिक स्थापनाएं हैं। वे इसे देश का वाचक मानते हैं और धर्म के अर्थ में इस शब्द के प्रयोग को गौण मानते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्राचीन ग्रंथों से उद्धरण भी दिए हैं— [हिमालयं समारभ्य यावदिन्दु सरोवरम्। हिन्दुस्तानमिति ख्यातमाद्यन्ताक्षरयोगतः।]

पं जी परिश्रमी व्यक्ति हैं। वे किसी भी कार्य को सामान्य रूप में नहीं लेते। हर विषय की गहराई तक जाते हैं। अपने कथ्य को प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। इस विचारणा को पुष्ट करने के लिए उन्होंने उक्त विशेषांक में स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, जवाहरलाल नेहरू, आचार्य तुलसी, स्वामी विवेकानन्द, लाला हरदयाल एम. ए., मुहम्मद करीम छागला, न्यायमूर्ति पी. रामकृष्णन, प्रो. बलराज मधोक, दिनकर, अज्ञेय, दीनदयाल उपाध्याय, अली सरदार जाफ़री, लाला लाजपतराय, श्री जगजीवनराम और राहुल सांकृत्यायन जैसे अपने अपने क्षेत्रों में दिग्गज महानुभावों के विचार भी दिए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदरणीय पं. जी का जीवन वृत्त सामान्य से उत्कृष्टता की ओर लम्बी यात्रा का साक्षी है। उन्होंने 1916 में दिल्ली में जन्म लिया, गुरुकुल कांगड़ी और आगरा विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की और पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में प्रचार किया। पर यही उनका लक्ष्य नहीं था। उनका उद्देश्य तो समाज सुधार था और वे इसके लिए विशालतर पट की खोज में थे जो उन्हें पत्रकारिता के क्षेत्र में आने पर प्राप्त हुआ। वे अपनी वाणी के साथ साथ लेखनी से भी समाज सुधार के कार्य में जुट गए। उन्होंने कभी किसी व्यक्ति विशेष के लिए कार्य नहीं किया। उन्होंने सदा अपनी आत्मा के लिए कार्य किया। समाज सुधार की उन्हें तड़प है और वे आज भी इसी कार्य में जुटे हैं। उन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया, सैंकड़ों लेख लिखे, साहित्य की सभी स्थापित विधाओं को नई दिशा दी। 'तूफान के दौर से पंजाब' तो उनकी बहुचर्चित एवं बहु प्रशंसित सर्वथा मौलिक एवं अनुपम रचना है।

उनके ज्ञान का स्रोत, विभिन्न विषयों की पुस्तकों के अध्ययन के अतिरिक्त उनका निजी दीर्घ जीवन-अनुभव भी है। उन्होंने अनेक देशों की यात्रा की है। नेपाल, ग्रेट ब्रिटेन, तिब्बत, बंगलादेश, नैरोबी, मारीशस आदि देशों में वे गए क्योंकि उनकी रुचि पर्यटन में थी पर वे केवल सैर-सपाटे तक सीमित नहीं रहे। जिसके मन में दूसरों को देने की इच्छा हो, वह कृपण कैसे होगा ? वह स्वार्थी हो भी नहीं सकता। इन देशों के भ्रमण से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उन्हें जो नवीन अनुभव हुए, उन सभी को उन्होंने 'मारीशस-स्मारिका' 'बंगला-देश : स्वतन्त्रता के बाद' तथा 'आर्यजगत् विदेश प्रचार अंक' के माध्यम से दूसरों को दिया। सभी पाठक उन अनुभवों को पढ़कर गद्गद् हो गए। हैदराबाद सत्याग्रह का जैसा जीवन्त विवरण 'निज़ाम की जेल में' प्राप्य है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। हम इस स्वतन्त्रता सेनानी को सश्रद्ध प्रणाम करते हैं।

माननीय पं. जी ने कारावास भोगा। यह भोग उनका सोद्देश्य था। यह मानवता के उद्धार के लिए था। उन्हें अनेक संस्थाओं से सम्मान भी मिला। वे भारतीय साहित्यकार संघ के प्रधान रहे। वे प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन में प्रचार मन्त्री रहे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में उपमंत्री तथा धर्मार्य सभा के वर्षों सदस्य रहे। वे कुशल कार्यकर्त्ता तथा सुदक्ष संगठन-कर्त्ता भी हैं। वे संगठन को सुदृढ़ करने की दृष्टि से आने वाली पीढ़ी को बताना चाहते हैं कि भारतीय स्वतन्त्रता का वह गौरवपूर्ण अध्याय— हैदराबाद विजय— आर्यों ने किस प्रकार अपने लहू से लिखा था—जनया दैव्यम् जनम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं. क्षितीश कुमार जी ने आर्य जगत् का सम्पादन भार संभालने के बाद विशेषाँकों की एक अद्भुत स्पृहणीय परम्परा डाली है। उनका 'संस्कृत रक्षा विशेषाँक' तो समस्त संस्कृत प्रेमियों की अमूल्य धरोहर है। महात्मा हंसराज विशेषांक और बोधांक हमें नवचेतना और नव स्फूर्त्ति प्रदान करते हैं। उनके 'क्रान्तिवीर अंक' और 'ऋषि निर्वाण शताब्दी अंक' को भी लोग चिरकाल तक याद करेंगे।

उनके विषय में अनेक बातें लिखना चाहता हूं, पर इतने महनीय और स्पृहणीय व्यक्ति के विषय में लिखते संकोच भी अनुभव करता हूं। परम-पिता परमात्मा से कामना करता हूं कि वे दीर्घजीवी हों, सदा स्वस्थ रहें और हमें समाज-सुधार के कार्य में सदा प्रेरणा देते रहें।

उस सतत जागरूक राष्ट्रीय प्रचेता का हार्दिक अभिनन्दन और शतशः नमन!!

—ए/एच-16, शालीमार बाग,
दिल्ली—71

लेखनी और वाणी के धनी क्षितीश जी

—मूलचन्द गुप्त
सम्पादक 'आर्य सन्देश,' मंत्री-आर्यसमाज
दीवानहाल और आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली

यह एक सुखद संयोग है कि आर्यजगत् तथा हिन्दी-जगत् के दो जाज्वल्यमान नक्षत्र श्री क्षेमचन्द 'सुमन' तथा श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार का जन्म भी एक ही दिन, अर्थात् 16 सितम्बर 1916 को हुआ और दोनों की शिक्षा-दीक्षा भी क्रमशः उत्तर भारत के सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्थानों—गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल कांगड़ी में हुई।

पं. क्षितीश जी अपनी बाल्यवस्था से ही राष्ट्रीयता के अंकुर लिये हुए हैं। आप छात्रावस्था में ही, सन् 1939 में, हैदराबाद रियासत में आर्य सत्याग्रह का बिगुल बजते ही, अपनी स्नातक परीक्षा का मोह त्यागकर, गुरुकुल के जत्थे का नेतृत्व करते हुए, प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ गिरफ्तार होकर, हैदराबाद निज़ाम के कारावास की नृशंस यातनायें भोग चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप सौमनस्य के प्रतीक, सज्जनता की मूर्ति और वैदिक-साहित्य के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ राष्ट्रीयता के उपासक, भारतीयता के समर्थक तथा साहित्य के अनन्य साधक हैं। आपने अनेक दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करके पत्रकारिता के क्षेत्र में जो ख्याति अर्जित की है, वह अन्यों के लिये ईर्ष्या का विषय है। दैनिक "हिन्दुस्तान" से सेवा-निवृत्ति के पश्चात् "आर्य जगत्" को आपने ऐसा सम्भाला कि "आर्यजगत्" अब आर्यजगत् का पर्याय बन गया है।

वैदिक-सिद्धान्तों, यात्रा-विवरणों, निबन्धों तथा समीक्षा आदि के लगभग डेढ़ दर्जन ग्रन्थों की रचना करने के अतिरिक्त आपने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ सम्पादित भी किये हैं। जिनमें सातवलेकार अभिनन्दन ग्रन्थ, जुगलकिशोर बिरला स्मृतिग्रन्थ, मारीशस स्मारिका, लन्दन आर्य महासम्मेलन स्मारिका, तथा डी. ए. वी. शताब्दी स्मारिका तथा ऋषि निर्वाण शताब्दी स्मारिका प्रमुख हैं। "पंजाब तूफान के दौर से"– आपकी इस अनुपम कृति का राष्ट्र में भारी स्वागत हुआ है। उसके तीन संस्करण हो चुके हैं। इस बहुमूल्य कृति का हिन्दी से अंग्रेजी में भी अनुवाद किया जा चुका है।

वैदिक तथा सामाजिक साहित्य-सृजन के साथ-साथ आपकी वक्तृत्व कला की धाक भी समूचे आर्यजगत् में प्रतिष्ठित स्थान रखती है। आपके ओजस्वी तथा अनुसंधानात्मक व्याख्यान आर्यजगत् में सत्प्रेरणा के स्रोत हैं। उनमें वैदिक-सिद्धान्तों का विषयानुकूल ऐसा परिपाक है कि इनकी वक्तृत्व कला का सहयोग पाकर वह शिथिल-शिराओं में रक्त का संचार करता है।

महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त जौर आर्यसमाज के कर्मठ-सेनानी पं. क्षितीश जी वेदालंकार वास्तव में आर्यसमाज, आर्यसंस्कृति एवं वैदिक-धर्म के मूर्त्तिमान-प्रतीक हैं। आपने अपनी लेखनी और वाणी से सुषुप्त आर्य जाति में उत्साह एवं नवजीवन का संचार करने का प्रयत्न किया है।

मैं ऐसे प्रतिभाशाली सर्मपित पत्रकार और साहित्यकार व्यक्ति का उनके 74 वें जन्म दिवस पर हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। परमात्मा आपको दीर्घ यशस्वी जीवन प्रदान करे–यही प्रभु से कामना है।

—ए-12, पालिका निवास
लोधी कालोनी,
नई दिल्ली—110 003

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद पथानुयायी होने का लाभ

—मनोहर विद्यालंकार

श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार अपने जीवन के सात दशक पूरे करके, आठवें दशक में पहुंचकर, स्वस्थ हैं, और सफलतापूर्वक आर्य जगत् की जनता का मार्गदर्शन कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि आपने वेद-विहित शिक्षाओं के अनुसार जीवन यापन करने का प्रयत्न किया है।

इस दृष्टि से हम वेद की शिक्षाओं के परिप्रेक्ष में उनके जीवन को देखने का प्रयत्न करते हैं।

1. चरैवेति चरैवेति, चरन्वै मधु विन्दति :

ऋग्वेद के (ऐतरेय) ब्राह्मण में कहा है—

हे मानव ! चलता चल, चलता चल। अगर तू बिना रुके अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करता रहेगा, और प्रारम्भ किये कर्म को बीच में नहीं छोड़ेगा, तो एक न एक दिन मधुर फल प्राप्त करके आनन्द मग्न अवश्य होगा।

श्री क्षितीश कुमार को अपने विद्यार्थी जीवन से ही भ्रमण और यात्रा का शौक रहा है। एक तो स्वभाव और फिर शिक्षण संस्था के वातावरण और चलन ने इस शौक में यज्ञ में धृत की आहुति का सा काम किया। (परिणाम स्वरूप इन्होंने अपना नाम ही चक्रचरण रख लिया।) विद्यार्थी जीवन में ही 600 मील पैदल चलकर कैलाश मानसरोवर की कठिनतम यात्रा करना हंसी खेल नहीं है। सहयात्री होने के कारण मैं उस यात्रा की कठिनाई का साक्षी हूं।

उसके बाद वैदिक धर्म के प्रचार काल में अमरकण्टक की कठिन किंतु लोमहर्षक यात्रा की। इसी शौक के अन्तर्गत बांग्लादेश की यात्रा की और उस यात्रा के फलस्वरूप ऐसी पुस्तक का निर्माण किया, जो अद्‌भुत है। यह अकेली रचना ही इन्हें लेखक की दृष्टि से अमर करने को पर्याप्त हो सकती है।

2. दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगाः।

ऋ. 1-144-4

जो मनुष्य दिन रात कार्यरत चलता रहता है, वह जराजीर्ण नहीं होता, वृद्ध होने पर भी युवा दिखाई देता है; कई मानुष-युगों तक जीवित रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र के अर्थ को जानने के बाद आप क्षितीश कुमार जी के 73 वर्ष के युवा होने का रहस्य समझ सकते हैं।

3. चित्तिरपां दमे विश्वायु :

इन्द्रिय दमन पूर्वक अपने घर में रहते हुए जो मनुष्य प्रजाजनों में चेतना फूंकता रहता है, वह पूर्णायु प्राप्त करता है, अर्थात् शतायु होता है।

इसके अनुसार आशा की जा सकती है कि श्री क्षितीश जी आठवें दशक को पूरा करके, नवें दशक में पहुंच कर, **नवग्वा** ऋषि की उपाधि से विभूषित होंगे। और उसके बाद नवें दशक को पूरा कर दसवें दशक में प्रविष्ट होकर **दशग्वा** ऋषि बनेंगे। और तदन्तर 100 वर्ष की आयु पूर्ण करके **शतक्रतु = इन्द्र** बनकर देशवासियों में निर्भीकतापूर्वक न्याय का पक्ष लेकर चेतना को जागृत करने में प्रवृत्त रहेंगे।

4. आप को यह जानकर हैरानी होगी कि श्री क्षितीश कुमार जी का विद्यार्थी काल में नाम था— **क्षेत्रपाल**।[1] इस नाम को याद करने की ज़रूरत इसलिये पड़ी कि वेद में क्षितीश का प्रयोग बिलकुल नहीं है। हां, क्षेत्रपाल के बदले **क्षेत्रवित्** का प्रयोग अनेक बार हुआ है। क्षेत्रवित् बनने के लिये क्षेत्रपाल बनना जरूरी है। इसलिये हम क्षेत्रवित् को क्षेत्रपाल का पर्याय मान कर अपने पूर्व प्रसंग पर आते हैं।

क्षेत्रवित् के सम्बन्ध में वेद निम्न बातें कहता है—

क. क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।

ऋक् 4-57-2

कार्यक्षेत्र के कार्यों से परिचित प्रमुख ! तू हम में माधुर्य की लहरियां प्रवाहित कर दे, जैसे गाय दूध प्रवाहित करती है।

ख. क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्तु, अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम।

ऋक् 4-57-3

हमारा प्रमुख हमारे प्रति मधुर भाव रखे, और हम भी किसी के प्रति हिंसा (द्वेष, ईर्ष्या) का भाव रखे बिना अपने प्रमुख का अनुकरण करने वाले बनें।

ग. शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः।

ऋक् 7-35-10

---

1 क्षेत्रपाल = क्षेत्रवित् = क्षेत्रपति; गोविन्द = गोपाल। क्षेत्र = कार्यक्षेत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्रपति = प्रमुख (बॉस), जिसे अपने अनुयायियों के प्रति सदा सद्-भावना रखनी चाहिये, हमारे लिये सदा कल्याणकर हो।

घ. पुरा नो बाधाद्दुरितातिपारय, क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते।

ऋक् 9-70-9

मार्गदर्शक (क्षेत्रवित् = बॉस) मार्ग पूछने वालों का सदा दिग्दर्शन कराता रहता है; यह उसका स्वभाव है। इसलिये हमारी प्रार्थना यह है कि वह हमें कभी मुसीबत में फंसने ही न दे। कष्ट आने से पूर्व ही उसका प्रति-कार कर दे।

ङ. क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे।

ऋक् 10-66-13

इसलिये हम सदा मार्गदर्शक प्रमुख (बॉस) को ही अपना पड़ौसी और सहायक बनाना चाहते हैं।

※ ※ ※ ※ ※

इन मन्त्रों की छाया में अपना जीवन बिताने वाले श्री क्षितीश कुमार जी पर जरा दृष्टिपात कीजिये। इन की वाणी में मधुरता घुली हुई है। इन्हें आज तक किसी ने कटु भाषा का प्रयोग करते नहीं देखा। यहां तक कि घर-परिवार और समाज में कभी तार स्वर से चिल्लाते भी नहीं देखा।

इन्होंने कभी किसी से ईर्ष्या या द्वेष नहीं किया। मन से सबका कल्याण चाहा है, कल्याण करने वाले लेख लिखे हैं, और कल्याण करने का ही प्रयत्न किया है। इनके पड़ौसी इन्हें अपने निकट पाकर अपना अहोभाग्य मानते हैं। इसका स्थूल प्रमाण यह है कि अभी इसी मास में अपनी कॉलोनी कम्युनिटी सेंटर (क्लब) में खुलने वाले शराब घर ('बार') का विरोध करके अपनी कॉलोनी के सैंकड़ों बच्चों और युवकों का कल्याण किया है। संकट के आने से पूर्व ही भूख हड़ताल की घोषणा करके सेंटर के अधिकारियों को 'बार' खोलना बन्द करने को विवश कर दिया और अपने सत्साहस से सभी कॉलोनी वासियों को चकित कर दिया। आपके नैतिक बल ने एक अभिशाप से सबको मुक्ति दिलाई।

त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्।

ऋक् 1-69-5

अदब्धासः स्वयशसो। व्रता रक्षन्ते अद्रुहः।

ऋक् 8-67-13

त्मना वहन्तः— **आत्म-निर्भर** (सेल्फ मेड) मनुष्य ही नये नये मार्गों को खोलते हैं। ये (स्वयशसः) स्वयं के प्रयत्न से यशस्वी बनने वाले लोग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकारी नहीं होते। किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं करते, और अपने स्वीकृत व्रतों का पालन करते हैं।

इन मन्त्रार्थों का अनुगमन करते हुवे ही श्री क्षितीश जी ने हैदराबाद के सत्याग्रह में महात्मा नारायण स्वामी जी के आह्वान पर प्रथम जत्थे का नेतृत्व किया। हिन्दी सत्याग्रह में प्रमुख रूप से रचनात्मक कार्य किया। ऋषि निर्वाण शताब्दी के स्थान निर्वाचन में निर्णायक भूमिका निभाई और 'आर्य जगत्' के सम्पादकीय लेखों द्वारा आर्यजगत् में समय-समय पर जागृति की धारा प्रवाहित की।

परमेश्वर से हम ऐसे कर्मठ स्वतन्त्रता सेनानी के शतायु होने की कामना ही कर सकते हैं।

'स जीव्यात् शरदः शतम्।'

* * * * *

क्षितीश जी की सम्पूर्ण सफलताओं में और लगातार आगे बढ़ने में, इनकी पत्नी का विशेष सहयोग रहा है। वे (श्रीमती पवित्रादेवी) अपने नाम को सार्थक करती हुई **पवित्रता** की साक्षात् मूर्ति हैं। इस देवी ने गृहस्थ का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर क्षितीश जी को रोजमर्रा के झंझटों से मुक्त करके समाज की सेवा करने का अवसर दिया तथा अपने व्यवहार से इन्हें सन्तुष्ट और प्रसन्न रख कर उद्देश्य से पथ भ्रष्ट होने से सदा बचाये रखा। इसीलिये वेद में कहा है कि जिसकी **पत्नी** पवित्र होगी, वही अपने साधनों को पवित्र रख कर **यज्ञमय** बन सकेगा। अथवा जिसके साधन यज्ञमय होंगे, उसी को श्रेष्ठ पत्नी प्राप्त होगी—

'पुरन्धिवान् पुरुषो यज्ञसाधनः।'

इस प्रकार यह युगल यज्ञीय साधनों द्वारा परस्पर सहायक होकर निरन्तर आगे बढ़ता चला जा रहा है। प्रभु ऐसी कृपा करें कि यह दम्पति इसी तरह चिरजीवी होकर अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करता रहे। परमेश्वर ने ऋक् 10-125-4 में कहा है कि—

हे विश्रुत सखे (जीवात्मन्)! मेरी बात को श्रद्धापूर्वक सुन, क्योंकि जो मैं कह रहा हूं—वह श्रद्धागम्य ब्रह्म = वेदवचनों में श्रद्धा रख कर ही पाया जा सकता है। जो मुझ में विश्वास रखते हैं, वे जीवन के हर पहलू में सुखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं (जो मुझ में विश्वास नहीं रखते वे हर हाल में क्षीण और हीन रहते हैं) ।[1]

अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति, श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ।

ऋक् 10-125-4

इस मन्त्र के अर्थ को श्री क्षितीश + पवित्रा युगल ने अपने जीवन में उतारकर प्रतिमूर्त करने का प्रयत्न किया है ।

परमेश्वर ऐसी कृपा करे कि हम भी इसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें, और स्वानुभूत कर सकें ।

—522, ईश्वर भवन, खारी बावली,
दिल्ली—110 006

1. यह अर्थ सायणाचार्य के भाष्य से लिया गया है ।

चरित्र-बल

—उत्तमचन्द्र शरर

नैतिक मूल्यों के महत्व की चर्चा बहुत होती है, परन्तु इन मूल्यों को निज जीवन में स्थान देना कुछ बिरले व्यक्तियों के भाग्य में होता है, उन महापुरुषों में एक हैं मेरे मित्र श्री क्षितीश जी !

मैंने उस दिन उनके निश्चय की दृढ़ता तथा चरित्र बल की महत्ता को समझा, जब एक साधारण सा लेख, जो उन्हें अपने पत्र में छापने के स्तर का न लगा, एक अच्छे प्रलोभन के साथ, उन्हें छापने के लिये दिया गया । क्षितीश जी ने लेख को देख, एकदम इन्कार किया और जब मैंने कहा, "विचार कर लें, इसे न छापने पर आपका अपमान भी सम्भव है," तो पूरे निश्चय के साथ वे बोले—"अपमान ही नहीं, मृत्यु भी मुझे स्वीकार है ।" मैंने फिर हिम्मत बटोरी और कहा, "यदि इसे छापने के लिए आपको पत्र के मालिक विवश करें तो ?" उसी दृढ़ता से वे बोले, "शरर जी, यदि अखबार के मालिकों ने मुझे विवश किया तो आप मुझे सम्पादक की कुर्सी पर नहीं पायेंगे ।"

ऐसा दृढ़ निश्चयी, आत्म-बल का मालिक, वेद का विद्वान और राष्ट्र और जाति के लिए तड़प रखने वाला व्यक्ति मेरा मित्र है । पाठक, मेरे गर्व का अनुमान लगा सकते हैं ।

—30/8, पानीपत,
(हरियाणा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशः क्षितेर्नो मनसः क्षितीशः

(हमारे मन की क्षिति के स्वामी श्री क्षितीश)

—धर्मवीर शास्त्री

(1)

गंगा-रोधसि कांगड़ीति विदित ग्रामान्तिकस्थे वने
श्रद्धानन्द महात्मनः सुतपसा लब्ध-प्रसूतेः शुभात् ।
गुण्याद् गण्य-गरीयसो गुरुकुलाद् वेदादि शास्त्रेषु वै
पारंगत्यमवाप्य यः समभवद् विद्या-व्रत-स्नातकः ॥

(2)

अष्टम्या ददतश्च यस्य विषये श्रेण्याः परीक्षां वटोः
प्रागादीह परीक्षकैरयमहो ! शास्त्रिस्तरस्योचितः ।
सोऽयं सम्प्रति सर्वशास्त्रनिपुणः साहित्यतत्त्वैकविद्
विद्वद्वर्गविभूषणः सुधिषणो जीव्यात् क्षितीशश्चिरम् ॥

(3)

हैद्राबादकुशासनस्य कदनायाऽयं गुरोः सन्मनो
यातोऽनूरुरिवैव नैशतमसो नाशाय शूराग्रणीः ।
लब्ध्वा तत्र जयं ह्ययं युवयतिः स्विष्टस्वधर्मोद्धृतिः
पंचापार्यसभोपदेशकपदं विज्ञैर्वरेण्योऽग्रहीत् ॥

(4)

ख्यातिं तत्र भृशामवाप्य सुमतिः क्षेत्रेऽथ साहित्यिके
कार्यं कर्तुमना व्यधादविरतं पत्रादि सम्पादनम् ।
हिन्दुस्तानमिहैतदीयपटुता-साक्ष्यस्ति वै दैनिकं
सम्प्रत्येष करोति **आर्यजगतो** दाक्ष्येण सम्पादनम् ॥

(5)

संपठ्याऽस्य सुचिन्तितानि बहुशः सम्पादकीयानि वै
संश्रुत्याऽस्य सुभाषणानि विविध-ज्ञान-प्रदीप्तानि च ।
संदृश्याऽस्य लघीयसोऽपि वपुषः सामर्थ्यमेतन्महत्
मन्ये तेजसि शक्तिरस्ति निहिता स्थौल्यं न साऽपेक्षते ॥

(6)

सद्ग्रन्थ-निर्माण-परम्पराभि—
र्वाचोपकुर्वन् जगतश्च शश्वत्
ईशः क्षितेर्नो मनसः क्षितीशो
दृष्टिं ददन्नः सततं चकास्तु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-अनुवाद

1. गंगा के पावन तट पर कांगड़ी नामक ग्राम के पास के वन में महान् आत्मा स्व. स्वामी श्रद्धानन्द की तपस्या से विकसित गुणों से भरपूर गणनीय संस्थाओं में महान् गुरुकुल से वेदादि शास्त्रों का ब्रह्मचर्य पूर्वक अध्ययन समाप्त कर जो विद्या तथा व्रत में स्नातक हुए।

2. अष्टम श्रेणी की परीक्षा उत्तीर्ण करते समय जिनके विषय में परीक्षकों ने कहा कि यह छात्र तो इसी समय शास्त्री परीक्षा के योग्य है; वह यह (श्री क्षितीश वेदालंकार) सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण, साहित्य के तत्त्व को जानने वाले, उत्तम बुद्धि से युक्त तथा विद्वद्वर्ग के अलंकार दीर्घायु हों।

3. यह हैदराबाद में (निज़ाम के) कुशासन को समाप्त करने के लिये रात के तिमिर के नाशार्थ समुद्यत अरुण के समान प्रस्थित हुए तथा वहां विजय प्राप्त करके वैदिक धर्म के उद्धार की इच्छा से इस युवा यति (संयमी) ने पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा का उपदेशक पद स्वीकार किया।

4. उपदेशक के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित करने के अनन्तर इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा तथा अनेक साहित्यिक पत्रों का सम्पादन किया। इस क्षेत्र में इनकी पटुता का साक्षी 'हिन्दुस्तान दैनिक' है। इस समय यह 'आर्य जगत्' का अत्यन्त कुशलता से सम्पादन कर रहे हैं।

5. अत्यन्त चिन्तन पूर्वक लिखे इनके (आर्य जगत् के) सम्पादकीय अग्रलेखों को पढ़कर, विविध प्रकार के ज्ञान से परिपूर्ण इनके भाषणों को सुनकर तथा यह देखकर कि इनके इस छोटे-से शरीर में विलक्षण सामर्थ्य भरी है, हमारी धारणा बनती है कि शक्ति का आधार तेज है, भौतिक स्थूलता नहीं।

6. सद्ग्रन्थों के प्रणयन की परम्परा द्वारा तथा सामयिक प्रवचनों के माध्यम से संसार का उपकार करते हुए, हमारे हृदयों की क्षिति के स्वामी श्री क्षितीश सदैव हमारा मार्ग-दर्शन करते हुए प्रभा से प्रकाशमान रहें।

—बी. I/51 पश्चिम बिहार
नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सादर तुम्हें प्रणाम !

—कुसुम विद्यारत्न
वरिष्ठ प्राध्यापिका, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली

वैसे तो क्षितीश जी को एक पत्रकार, साहित्यकार एवं एक विशिष्ट आर्य समाजी कार्यकर्ता के रूप में मैं पिछले तीन दशकों से जानती हूं, परन्तु उनसे विशेष परिचय लगभग 14 वर्ष पूर्व हुआ। सन् 1975 में मेरी बड़ी बिटिया का विवाह क्षितीश जी के ज्येष्ठ सुपुत्र से हुआ। उसी समय से इस परिवार को अधिक निकट से जानने का सुअवसर मुझे मिला।

क्षितीश जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उपलब्धियों के बारे में बहुत से व्यक्तियों ने लिखा होगा तथा पाठक भी उनकी चहुंमुखी प्रतिभा से अवगत होंगे। मैं यहां अपने पारिवारिक संबन्धों के कारण हुए कुछ अनुभवों के आधार पर उनकी सौम्य प्रकृति एवं व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ कहने का साहस करूँगी। उनके अमल-धवल व्यक्तित्व में यह भी एक स्वर्णिम अध्याय है।

सबसे पहला संस्मरण जो इस सम्बन्ध में मैं उल्लिखित कर रही हूं वह इस विवाह से ही सम्बन्ध रखता है। मैं बहुत से ऐसे आर्य व्यक्तियों से परिचित हूं जो मंच से तो दहेज़ के विरोध में बोलते हैं, स्वयं अवसर आने पर माँगते भी नहीं हैं, परन्तु उनकी भावना यही रहती है कि कुछ मिल जाये तो अच्छा है। कभी स्वयं की, कभी अपनी श्रीमती की, अथवा कभी परिवार के अन्य निकट के स्वजनों की इच्छा का हवाला देते हैं। कुछ एक परिवार ऐसे भी देखे हैं जो बिलकुल कुछ नहीं लेते हैं और इसका ढिंढोरा पीटते हैं कि हम ऐसे हैं कि अपने लड़के के विवाह में लड़की वालों से एक पैसा भी नहीं लिया। परन्तु क्षितीश जी का व्यवहार इन दोनों से भिन्न, वास्तव में एक आदर्श था। सगाई के अवसर पर लड़के के टीके के पश्चात् जब मान-सम्मान हेतु क्षितीश जी को मिलनी के रूप में कुछ भेंट देने लगे तो उन्होंने कहा कि इस प्रकार धन-राशि लेना उचित नहीं। चाहे आप स्वयं अपनी इच्छा से दे रहे हैं, तब भी है तो विवाह-सम्बन्धित राशि। हाँ यदि मान अथवा सम्मान की ही बात है तो ठीक है एक रुपया स्वीकार कर लेता हूं। यह बात इस सहज-भाव से कही कि उसमें कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि वे यह दिखलाना चाहते हों कि वे एक आदर्श स्थापित कर रहे हैं। वह समाज को दिखाने के लिये नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपितु उनके स्वाभाविक जीवन के जीने का एक प्रकार था। एक रुपया स्वीकार करके देने वाले का भी मान रख लिया और अपनी मान्यताओं को भी निभा लिया।

दूसरों की बातों को समझना, अपनी बातों से उनका समन्वय बैठा कर उचित मार्ग निकाल कर उसका पालन करना, चाहे वह परम्पराओं से कितना ही पृथक हो, क्षितीश जी के चिन्तन एवं व्यवहार की एक विशेषता है। मेरी बिटिया के विवाह से ही सम्बन्धित एक और घटना —

विवाह के दिनों में, सन् 1975 में, देश में आपातकालीन स्थिति घोषित थी। विवाह आदि में खाने पीने पर बेहद रोक थी। ऐसी भी घटना हो चुकी थी कि 50 से अधिक व्यक्तियों का यदि भोजन बना है तो उसमें सरकारी कर्मचारियों ने आकर डी. डी. टी. पाउडर डाल दिया। हमारे दोनों परिवार देहली में बहुत वर्षों से रह रहे हैं। हमारे परिवार में यह पहला विवाह था और क्षितीश जी के यहां पहले लड़के का विवाह। केवल घर घर के ही दोनों परिवारों के लोग 300 के लगभग हो जाते थे। रात्रि के विवाह में बिजली की रोशनी आदि पर बहुत कुछ व्यर्थ में खर्च करना पड़ता है। खाना-पीना, सजावट, दिखावा सभी अत्यन्त आवश्यक हो जाते हैं। विवाह में विवाह संस्कार ही गौण रह जाता है। स्वामी दयानन्द जी ने जो संस्कार विधि में लिखा है उससे भी ऐसा लगता है कि विवाह संस्कार सायंकाल गोधूलि में आरम्भ हो कर रात्रि तक चले। रात्रि होने का अर्थ बिजली की पूरी सजावट – साथ ही सरकार द्वारा लगाई गई रोक का भी पूरा ध्यान। अतः सब कुछ सोच-समझकर उन्होंने जो मार्ग निकाला, वह उस समय के लिये एक बड़ा प्रगतिशील कदम था। हमारे परिवार के लिये तो बिलकुल नया और भी बहुत से लोगों के लिए सर्वथा चौंका देने वाला। उस सब के लिये सारा श्रेय क्षितीश जी को ही है। उन्होंने स्वयं हमें ही सुझाव और सहयोग नहीं दिया, अपितु अपने परिवार के अन्य सब लोगों को भी उसके लिये तैयार किया। निर्णय यह हुआ कि बारात प्रातः 9 बजे आएगी। जयमाला के पश्चात् वरपक्ष और कन्यापक्ष की ओर से निमन्त्रित व्यक्तियों को अल्पाहार, जिसमें केवल आलू से बनी कुछ चीज़ें होंगी और फिर दस बजे विवाह संस्कार प्रारम्भ हो जायगा। लगभग 12 बजे संस्कार समाप्त होकर 12:30 के आसपास बिना खाना खाए विदा हो जाएगी। जब बिना खाना खाए विदा होने लगी तो बहुत लोगों को बड़ा अजीब लगा। परन्तु बरातियों के मुख्य व्यक्तियों को सहर्ष विदा होते देख किसी को कुछ विशेष कहते नहीं बना। बारात विदा होकर अपने घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट रही थी, तो मार्ग में एक कैंटीन में हमने केवल बरातियों के भोजन की व्यवस्था कर रखी थी। परिणाम: किसी एक स्थान पर सरकार की निश्चित सीमा से अधिक खाने वाले भी नहीं रहे, आपातकाल की मर्यादा पूरी हो गई, व्यर्थ का बिजली आदि का खर्च भी नहीं हुआ और सब लोगों ने विवाह संस्कार बहुत आराम से देखा। संस्कार ही इसमें सर्व प्रमुख हो गया था, बाकी तो लड़की वालों के यहाँ कुछ विशेष था ही नहीं।

क्रान्तिकारी विचार धारा तो क्षितीश जी की युवा काल से ही रही है। इन 14 वर्षों के परिचय में मैंने इनके जीवन की बहुत सी बातें सुनी हैं— स्वयं इनके श्री-मुख से तथा अन्यों से भी। इन्होंने हैदराबाद के आर्यसमाज के सत्याग्रह में प्रमुख रूप से भाग लिया— जिसके कारण अब केन्द्रीय सरकार ने स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में इनको मान्यता देकर सम्मान पेंशन देनी प्रारम्भ की है। स्वयं इनके विवाह पर, जो राजस्थान में ब्यावर नगर में हुआ था — लड़की बिना घूंघट के वेदी पर बैठी थी और उसने स्वयं मंत्रोचारण किया था। आज भी इनके घर के वातावरण में बहू को वास्तविक रूप में बेटी का सा स्थान मिला हुआ है। वे घर में, सच्चे अर्थों में वानप्रस्थी के रूप में रहते हैं। जब किसीको पारिवारिक समस्याओं में सलाह की आवश्यकता होती है तो अपनी निष्पक्ष राय देना — कहीं कुछ परिवार में गलत होते देखा तो थोड़ा मार्ग-दर्शन कर देना, किन्तु उसमें हस्तक्षेप बिलकुल नहीं करना। दूसरों को आदर देना और उनकी भावनाओं का ध्यान रखना तो इतना कि मैं अकसर सोचने लग जाती हूं कि मैं लड़की वाली हूं या लड़के वाली।

क्षितीश जी सदा से कर्मशील रहे हैं। आज भी पूरा समय समाज-सेवा में व्यतीत करते हैं। आर्यसमाज का कार्य, 'आर्य जगत्' पत्रिका का कार्य, गुलमोहर पार्क से सम्बन्धित संस्थाओं का कार्य और उसके ऊपर अपना चिन्तन लेखन और अध्ययन। इस संदर्भ में भी मैं एक घटना का वर्णन करना चाहूंगी—

हमारे लेडी श्रीराम कॉलेज में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) के सहयोग से एक गोष्ठी थी, जिसका विषय था— 'संस्कृत वाङ्मय में ईश्वर'। इस में हमने कॉलेजों से सीधा सम्बन्ध रखने वाले कुछ महानुभावों को वक्ता तथा अध्यक्ष रूप में बुलाया था। मैं गोष्ठी की संयोजिका थी। गोष्ठी से एक दिन पूर्व सभा अध्यक्ष ने कुछ विशेष परिस्थितिवश आने से असमर्थता प्रकट कर दी। विचित्र समस्या पैदा हो गई। केवल 15 या 16 घण्टे बाकी थे — जिसमें से 12 घण्टे तो रात्रि के ही थे। किससे अनुरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँ ! अन्त में अपने सम्बन्धी होने के नाते क्षितीश जी के सम्मुख समस्या रखी और उनसे अध्यक्ष बनकर लाज रखने की प्रार्थना की । वे सहर्ष तैयार हो गए और अपने अन्य सब कार्यक्रम स्थगित कर पूरे दिन गोष्ठी में उपस्थित रहे । वहाँ उनके विचार, विभिन्न निबन्धों पर उनकी टिप्पणियाँ, उनका अन्त में समापन-भाषण इतना विद्वत्ता-पूर्ण था कि गोष्ठी की सफलता का सारा श्रेय इनको ही रहा । क्षितीश जी ने इस कार्यक्रम का भार इस सुन्दरता से निभाया कि सभी सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए। वे कुशल वक्ता तो हैं ही, विद्वान भी कम नहीं हैं । मैं तो कृतार्थ हो गई, क्योंकि गोष्ठी की सफलता के लिए सबकी बधाई तो मुझे ही मिलनी थी । केवल मेरे सम्बन्धी होने के नाते उन्होंने ऐसा उपकार किया, यह बात नहीं । यदि अन्य कोई भी ऐसे संकट के समय उनसे प्रार्थना करता तो वे उसे नहीं टालते । इसका अर्थ यह नहीं कि वे अध्यक्ष बनने को लालायित रहते हैं । बल्कि केवल यह कि संस्कृत, संस्कृति और आर्य विचारधारा के प्रसार के लिए वे सर्वात्मना समर्पित हैं ।

छोटे कद के, किन्तु ज्ञान के भण्डार, सादा से दीखने वाले किन्तु दृढ़ एवं सुव्यवस्थित विचारधारा वाले, स्वभाव से विनोद-प्रिय—अजात शत्रु— क्षितीश जी के विषय में यों तो बहुत कुछ कहा जा सकता है । परन्तु अभी तो केवल एक स्रग्धरा छन्द द्वारा यह पद्यमयी माला उनके चरणों में अर्पित करती हूं :—

'वेदालङ्कार' एष क्षितितलविलसत् कीर्तिमान् सत्स्वभाव:
देशप्रेमी विनोदी नय-निपुण-मतिर्गर्वशून्य: "क्षितीश:"
निर्लोभो वै दयालु: स्वजनहृदयहृत् देववाणी-पटीयान्
नैरुज्यं गेहसौख्यं शुभकृति-कुशलो विन्दतां दीर्घमायु: ॥

[हे मनुज श्रेष्ठ ! परमसौभाग्यवतया 'पवित्रया' सह अत्र भवान् सदा विजयतेतराम् ।] जो जगत् में "क्षितीश वेदालङ्कार" नाम से प्रसिद्ध हैं, जो यशस्वी, विद्वान, आर्यरत्न, देशप्रेमी और विनोद प्रिय हैं, जो नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, सरल, लोभरहित, दयालु, संस्कृत के विचक्षण विद्वान् हैं, उनके लिये मैं दीर्घायु और सुख की कामना करती हूं । परम सौभाग्यवती पत्नी श्रीमती पवित्रा देवी के संग आप सदा विजयी हों !

—2 एफ, स्टाफ क्वार्टर्स, लेडी श्रीराम कॉलेज, नई दिल्ली— 48

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे सहपाठी—निर्भीक पत्रकार और ओजस्वी वक्ता

—धीरेन्द्र कुमार विद्यालकार, पत्रकार

क्षितीश भाई का आधी शताब्दी से अधिक का पिछला जीवन उनके साहित्यिक और सामाजिक जीवन की सजीव एवं प्रेरणाप्रद कहानी है।

निर्भीक नेतृत्व

वे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के सुयोग्य स्नातक हैं। किन्तु स्नातक बनने से केवल दो मास पूर्व उन्होंने, अपने भविष्य का विचार किये बिना, आर्यसमाज के आह्वान पर हैदराबाद-सत्याग्रह में जिस प्रकार प्रवेश किया था वह अब उस इतिहास का स्वर्णिम अभिलेख है। आर्यसमाज ने गुरुकुल कांगड़ी को यह गौरव प्रदान किया था कि उसका दल सत्याग्रह—आन्दोलन में पहली आहुति दे और उस पहले जत्थे का नेतृत्व करने का सौभाग्य जिस व्यक्ति को मिला वह क्षितीश भाई ही थे। एक प्रकार से यह उनकी नेतृत्व-शक्ति और निर्भीकता एवं साहसिकता का ही प्रमाण-पत्र था।

आर्यसमाज को अपने उस आन्दोलन में विजयश्री मिली और गुरुकुल के सत्याग्रही विद्यार्थी अपने कारावास की 6 माह की अवधि पूरी करके लौटे तो स्थान-स्थान पर और गुरुकुल में क्षितीश भाई और उन के सब साथियों का भव्य स्वागत हुआ।

जीवन का सर्वोत्तम उपयोग

मनुष्य देह सृष्टिकर्ता की अपूर्व रचना है। उसका सर्वोत्तम उपयोग करना प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य होना चाहिए। इस दृष्टि से देखें तो क्षितीश जी सफलतम व्यक्तियों में हैं। उन्होंने भारत के कोने-कोने तक विभिन्न प्रदेशों का भ्रमण करके और इंगलैण्ड, बंगलादेश, नेपाल, मारीशस आदि देशों की यात्राएं करके बहुत कुछ देखा-जाना। यह अपने चरणों का उत्कृष्ट उपयोग है। उन्होंने विविध शास्त्रों-ग्रन्थों का अध्ययन किया और अनेक मौलिक रचनाएं कीं, यह उनकी बौद्धिक और मनन शक्ति के साथ हाथों का समुचित उपयोग है। उन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से समय निकाल कर समारोहों और समाजों में प्रवचन किये तथा अनेक सामाजिक समस्याओं पर जनता का जिस प्रकार उद्बोधन किया, वह उनकी जिह्वा और वाक्शक्ति का विशिष्ट उपयोग है।

आर्य जगत् के सम्पादक

आज श्री क्षितीश जी 'आर्य जगत्' (साप्ताहिक) के प्रधान सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उन्हीं को यह श्रेय है कि जो स्थान कभी सामाजिक जगत् में श्री हरिशंकर शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले 'ग्रार्य मित्र' का था वह ग्रब 'ग्रार्य जगत् को प्राप्त है। उनकी लेखनी ने 'ग्रार्य जगत्' को समाज का मूर्धन्य पत्र बना दिया है।

देश की विविध सामयिक समस्याग्रों पर क्षितीश जी के सम्पादकीय लेखों की दो-टूक स्पष्टवादिता ग्रौर निर्भीक दिशा-निर्देश के कारण इस साप्ताहिक के पहुंचने की प्रतीक्षा सभी ग्रार्य सामाजिक परिवारों में वैसी ही उत्सुकता से की जाती है जैसे दूरदर्शन पर किसी मनचाहे धार्मिक सीरियल की होती है।

हिन्दुग्रों के अन्य संगठनों की भांति ग्रार्यसमाज में भी संगठनात्मक शिथिलता बहुय समय से ग्रनुभव की जाती रही है। महात्मा हंसराज जी ग्रौर महात्मा मुन्शीराम जी (श्रद्धानन्द जी) के युग से ग्रार्यसमाज में दो ग्रलग-ग्रलग परम्पराएं थीं, किन्तु क्षितीश जी ने ग्रपने ग्राचरण से डी.ए.वी. ग्रौर गुरुकुल पक्षों की उस ग्रदृश्य रेखा को पार करके सब को निकट लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। प्रच्छन्न रूप से यह ग्रार्यसमाज की महान् सेवा है।

संस्कृत की रक्षा

क्षितीश जी सामाजिक जीवन के ग्रग्रणी महारथियों की पंक्ति में होते हुए भी मूलत: साहित्यिक व्यक्ति हैं। उन्होंने एक धार्मिक साप्ताहिक पत्र का सम्पादक होते हुए दो वर्ष पूर्व 280 पृष्ठों का **'संस्कृत रक्षा विशेषांक'** निकाल कर ग्रपनी साहित्यिक ग्रभिरुचि का परिचय तो दिया ही, देश की संस्कृत जैसी पुरातन धरोहर के प्रति जन-जन को प्रेरित ग्रौर सम्मोहित भी किया। हमारे एक प्रतिष्ठित नेता ने इससे भावाभिभूत होकर यहां तक कहा था कि 'संस्कृत रक्षा विशेषांक' के कारण ग्राने वाली पीढ़ियां क्षितीश जी को वर्षों-वर्षों तक स्मरण करती रहेंगी।

क्षितीश जी के लेखन की विधाएं विविध रही हैं। उन्होंने दैनिक 'हिन्दुस्तान' में रहते हुए उसमें 'यत्र तत्र सर्वत्र' कालम बहुत वर्षों तक लिखा। उसमें व्यंग्य-विनोद का पुट प्रचुर मात्रा में होता था ग्रौर पाठक उसे बड़े चाव से पढ़ते थे। भारत और एशिया की विविध सामयिक ग्रौर ऐतिहासिक समस्याग्रों पर पूर्ण प्रामाणिकता के साथ लिखना उनके लिए बहुत सहज रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार दशक से पत्रकारिता

चार दशक से अधिक अवधि के अपने पत्रकारिता-जीवन का श्रीगणेश उन्होंने दूसरा विश्व-युद्ध समाप्त होने के दो वर्ष बाद 'अर्जुन' (दैनिक) से किया था। तब उनका यह सहपाठी भी, उन से पूर्व, 8 वर्षों से वहीं था। इस प्रकार अलग-अलग क्षेत्रों में दूर रह कर कार्य करने के बाद हम दोनों फिर एक ही जगह आ मिले। तब मुझे सचमुच हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। परन्तु 5 वर्ष तक साथ रहकर हम फिर एक बार अलग हो गये। फिर भी यह सन्तोष बना रहा कि हम दोनों दिल्ली में ही पत्रकारिता-क्षेत्र में हैं और कभी भी मिल सकते हैं।

वेद में कहा है : 'तद्दूरे तद्वन्तिके' (वह दूर है और पास भी है)। मैं कुछ इसी तरह कह कर क्षितीश भाई के साथ अपने आत्मीय सम्बन्धों को व्यक्त कर सकता हूं। हम दोनों एक दूसरे से ऐसे दूर भी नहीं रहे कि मिल न सकें और एक रसोईघर के पकवान उड़ाने की निकटता में भी नहीं रहे। किन्तु जब भी मिले, बाल्य जीवन की निःस्वार्थ हार्दिकता के साथ बिना किसी औपचारिकता के मिले। वर्षों बीतने पर भी हमारी आत्मीयता में वही उष्णता है। हम धवलकेश मित्रों का अलिंगनबद्ध मिलन देख कर तीसरी पीढ़ी के हमारे बच्चे अवाक् खड़े रह जाते हैं। कृष्ण कौन सुदामा कौन— इसे छोड़ दें, पर उन जैसा ही मिलन-सुख हम सहपाठियों को भी मिलता है।

मेरे क्षितीश भाई संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में अधिकारपूर्वक बोलते-लिखते हैं। उन्हें वक्ता के रूप में जब विशाल सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान देने के लिए मंच पर बुलाया जाता है तो 'माइक' को उनके कद के अनुरूप नीचा करना पड़ता है, किन्तु जब वे अपनी ओजस्वी भाषा में धारा-प्रवाह बोलने लगते हैं तो लगता है कि उनके लिए माइक अनावश्यक है और इस लघु काया में महाप्राण विद्यमान हैं।

कैलास की परिक्रमा

क्षितीश भाई 1933 ई. में अपने शिक्षा-काल में ही आठ साथियों की टोली में कैलास-मानसरोवर की यात्रा पर गये थे। तब हिमालय के 19,000 फुट ऊंचे दर्रे को पार करते हुए सब इसी आशंका से चिन्तित होते थे कि हमारा यह सबसे हलका-फुलका क्षीणकाय साथी, पाण्डवों की स्वर्गा-रोहण-यात्रा में द्रौपदी की भांति, तेज हवा से उड़ कर परलोक में कहीं पहला स्थान न बना ले। किन्तु वहां भी क्षितीश भाई ने हड्डियों तक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंपा देने वाली ठंड में कैलास की परिक्रमा करके हिमालय के तुल्य ही अपनी अविचल दृढ़ता का परिचय दिया था।

विद्या व्यसनी और धर्म परायण

क्षितीश भाई संस्कृतविज्ञों के मतानुसार नारियल के तुल्य दीखते हैं जबकि अधिक लोग बाहर से ही बेर जैसे चमकदार होते हैं। वे विद्या व्यसनी और धर्म-परायण व्यक्ति हैं—इन्हीं दो क्षेत्रों में उन्होंने विशेषज्ञता प्राप्त की है। सचमुच इन जैसे मनस्वी व्यक्तियों के कारण विवेकशील मनुष्यों को आश्वासन होता है कि कभी हमारा देश फिर अपने उसी प्राचीन गौरव को प्राप्त करेगा जब देश-देशान्तर के लोग अपने चरित्रों का मार्गदर्शन पाने के निमित्त भारतवासियों का अनुगमन करते थे।

—'अलंकार डी-1/16,
मॉडल टाउन, दिल्ली—9

निश्छल समाजसेवी पत्रकार

—श्रीमती डा कुमुद सक्सेना
पत्रकार

क्षितीश जी से मेरा दीर्घकालीन परिचय है, और एक घनिष्ठ व्यक्ति के विषय में तटस्थ रूप मे कुछ कह सकना उतना सरल नहीं होता। परन्तु एक बात स्वयंसिद्ध है कि उनके स्वभाव की निश्छलता, परिचित और अपरिचित सभी को समान रूप से प्रभावित किए बिना नहीं रहती। अहंकार का नाम नहीं, सभी की यथासंभव सहायता करने को सदैव तत्पर और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने को सदा उद्यत्त—ऐसे हैं क्षितीश जी।

वे मनसा, वाचा, कर्मणा—सच्चे अर्थों में गांधीवादी हैं। उनकी खादी वस्त्रधारी कृश काया के भीतर एक दृढ़संकल्पी व्यक्तित्व भी छिपा रहता है, जो जाग उठता है तो अवरोधों की परवाह किए बिना अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो जाता है और उसे प्राप्त करके ही रहता है। आज जबकि गांधी के देश में लोग सत्याग्रह शब्द को ही भूलते जा रहे है, क्षितीश जी इसी एक मात्र अस्त्र का सहारा लेकर विषम से विषम स्थितियों में भी कृतकार्य हो जाते हैं। न्यायसंगत मांग के लिए वे आमरण अनशन तक के लिए भी तैयार रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षितीश जी को लोग साधारणतः एक प्रतिष्ठित लेखक/पत्रकार, के रूप में ही पहचानते हैं, पर वे एक निष्ठावान समाजसेवी भी हैं, यह मैंने उन्हें निकट से देखकर जाना है। संयोग से वे मेरे पड़ोसी भी हैं और अनेक सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियों में हमारा परस्पर सहयोग रहा है। उनकी कर्मठता और तत्परता देखकर सचमुच आश्चर्य होता है। उस दिशा में युवावर्ग को उनसे बहुत कुछ सीखना है।

मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि क्षितीश जी दीर्घायु हों, और वे नई पीढ़ी का अनवरत मार्गदर्शन करते रहें।

—बी 97, गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली-110049

मेरे अजस्र प्रेरणापुञ्ज

डॉ. वेदव्रत 'आलोक'
प्रवर-प्रवक्ता, संस्कृत, स्वामी श्रद्धानन्द महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

महाकवि भर्तृहरि द्वारा 'नीतिशतक' के प्रारम्भिक श्लोक में प्रदत्त ईश्वर की परिभाषा को सर्वाधिक सटीक मानकर समझने-समझाने वाले पण्डित क्षितीश वेदालंकार के व्यक्तित्व की मूल चेतना की अपनी विशिष्ट पहचान भी स्वयं उसी श्लोक में प्रतिध्वनित होती हुई देखी जा सकती है। श्लोक इस प्रकार है—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्त-चिन्मात्र-मूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येक-मानाय नमः शान्ताय तेजसे ।।

साहित्यिक जगत् और 'आर्य जगत्' के इस प्रबुद्ध तथा समर्पित विचारक की प्रखर लेखनी की ओजस्विता एवं गुरु-गम्भीर वाणी की तेजस्विता से साधारणीकरण होने पर पाठक और श्रोता जिस उदात्तता, आत्मीयता और प्रशान्ति का अनुभव करते हैं, उसे 'शान्त तेजस्' ही तो कहा जा सकता है। इस अनुभूति का मानदण्ड व्यक्ति के मनोमस्तिष्क की अपनी चेतना ही हो सकती है, मात्र वाचन या श्रवण नहीं। यह भी असन्दिग्ध है कि इस मनीषी के स्वस्थ विचारों में देश और काल आदि की सीमाएं नहीं होतीं, उन्हें शाश्वत वाणी की झंकार कहना चाहिए। और मानव-मात्र के समग्र कल्याण की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असीम भावना से उद्भूत इस वैदिक द्रष्टा की विचार-सरिता एक ऐसी अनन्त चेतना की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही है जो सबके लिए सदा और सर्वत्र प्रेरक व निर्मल-कर्त्री है—तो क्या प्रथमतः ऐसे उस शान्त तेज को प्रणाम करना उचित न होगा, जिसका यथेष्ट अंश हमें भी प्राप्त होता रहता है। लगभग चौथाई शती पूर्व पण्डित क्षितीशजी से मेरा प्रथम परिचय हुआ था। तब उनकी विशिष्ट सौम्य मुद्रा में सन्तोष और शान्ति की प्रतीति तो अवश्य हुई थी; किन्तु वह लघु कलेवर अपने भीतर एक अदम्य दृढ़ता, साहस, जागरूक चिन्तन तथा तजोमयी अभिव्यक्ति भी छुपाये हुए है; यह तो उन्होंने झलकने भी नहीं दिया था। सही है, गगरी तभी तो छलकती है जब अधभरी हो। हमारी वह भेंट एक नाजुक सन्दर्भ में हुई थी। अपनी पुत्री के लिए वर-चयन हेतु मेरा साक्षात्कार करने वे आर्य बालगृह पधारे थे, जहां मेरे पिता श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ जी शास्त्री एक कमरे में रहते थे।

तब मैं कभी-कभी कविता कर लिया करता था। पण्डित जी ने मेरे 'कवि-कर्म, में मेरी आशा से अधिक रुचि ली। कहा, 'कुछ स्वरचित सुनाओ।' मुझे मंच का कोई अभ्यास नहीं था अतः कण्ठस्थ भी कुछ नहीं रखता था। फिर भी एक कापी में से अपनी एक अतुकान्त रचना पढ़कर सुना दी। वह नेहरू जी के एक भाषण का, संभवतः लालकिले से दिये उनके अन्तिम भाषण का, रूपान्तर मात्र था। और कोई विशेषता उसमें नहीं थी। मैंने उसे पढ़ा भी कुछ सकुचाते हुए से अटक-अटक कर ही था। किन्तु पण्डित जी ने मुझे हतोत्साह नहीं किया। बच्चे को प्रेरणा देने के लिए जैसे प्रशंसा करते हैं, कुछ वैसे ही मेरा साहस बढ़ाया था। आज समझ सकता हूं, यह उनके उदार स्वभाव के अनुरूप ही था।

मेरा कोई सुकर्म ही रहा होगा जो अपनी पुत्री को गृहस्थ जीवन में पदार्पण कराने के लिए पुण्यात्मा पण्डित जी ने मुझे अपना लिया। और शनैः शनैः उनसे और उनके पवित्र परिवार से मेरी घनिष्टता बढ़ती गई। कभी-कभी सोचता हूं कि जो असीम स्नेह और सम्मान उनके यहाँ सदा मिला है, क्या मैं उसके योग्य हूं! किन्तु फिर समझ लेता हूं कि जिसका स्वभाव ही सौजन्य और औदार्य से भरपूर हो वह उससे भिन्न हो भी कैसे सकता है? गद्यकवि बाणभट्ट ने ऐसे ही सत्पुरुषों के लिए कहा है—

'अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम्!'

अपने विवाह के एकदम बाद जून 1965 में पण्डित जी और उनके पुत्र श्री विनयादित्य के साथ एक छोटी सी रेलयात्रा पर जाने का सुअवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गया। दिल्ली से हाथरस जा रहे थे, एक विवाह में सम्मिलित होने। भीड़ के कारण हम तीनों द्वार के पास ही खड़े यात्रा कर रहे थे। इस स्थिति में क्या किया जा सकता था ? तब पण्डित जी ने अपने पुत्र से, जो तब हायर-सैकन्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके थे, सामान्य-ज्ञान के प्रश्नोत्तर करने प्रारम्भ कर दिये। न तो रास्ते के कष्ट का भान हुआ, न समय का। खाली समय का उत्तम उपयोग भी हो गया। इस छोटी सी बात ने मुझ पर गहरा संस्कार छोड़ा। परिवार के प्रति उनकी जागरूक दायित्वानुभूति, पुत्र की ज्ञानवृद्धि के लिए सजग तत्परता, क्षण-क्षण का सदुपयोग और सामाजिक चेतना का बचपन में ही आरोपण आदि का एक साथ अनुभव किया। आगे भी मैंने उनमें परिवार के प्रति पूरी निष्ठा का दर्शन किया और मेरा मन उनके प्रति अपूर्व आत्मीयता और श्रद्धा से भरता गया।

अपने बच्चों के क्रिया-कलाप में रुचि लेना, उन्हें कुछ नया और उपयोगी कार्य करने और स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना, प्रशंसा व सुझावों द्वारा मार्गदर्शन करना, उन्हें समय-समय पर अपने जीवन की अथवा भारतीय इतिहास व संस्कृति की प्रेरणाप्रद घटनाएं सुनाना और इस प्रकार आदर्श भारतीय नागरिक बनने बनाने का लक्ष्य निर्धारित करना तो कोई भी पण्डित जी से सीख सकता है। उनके परिवार का अन्तरंग सदस्य बनने के बाद उनके इस पितृकर्म को मैंने बहुधा साक्षात् अनुभव किया है।

पण्डित जी अनेकधा ऐसी ज्ञान-चर्चाएं किया करते थे जो मेरे लिए भी नयी होतीं थीं, और उनके कारण मैं भी स्वयं को उनके द्वारा शिक्षित उनकी सन्तति के समकक्ष ही रखने लगा। उनके करौल-बाग निवास के आंगन की वे शामें कभी नहीं भूलतीं; जब सारा परिवार एकत्रित होता था, और पिताजी (तबसे मैं पण्डित जी को इसी सम्बोधन से पुकारता हूं, और आगे लेख में भी यही लिखना उचित होगा) के प्रत्युत्पन्न हास्य-विनोद के साथ व्यक्तिगत, पारिवारिक, समाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सभी प्रकार की चर्चाएं करते हुए हम स्नेह, शान्ति, चेतना और ज्ञान के आनन्दसागर में अवगाहन किया करते थे। तभी इस सूक्ति का वास्तविक तात्पर्य समझ में आया था—

"काव्य-शास्त्र-विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ॥" उस समय उनकी महफ़िल से उठने का मन ही नहीं होता था। तब भोजन का समय होने पर सभा-विसर्जन के स्थान पर ऋतु के अनुसार रसोईघर के भीतर या बाहर एक साथ बैठकर 'बाई' (हम सब बच्चे पण्डित जी की अर्धांगिनी अपनी माताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इसी नाम से सम्बोधित करते रहे हैं) की स्नेह-छाया में ऐसी गोष्ठियों को उसी निर्बाध गति से चलाते रहने में यह आनन्द और दुगना हो जाता था। मैं निस्संकोच कहना चाहता हूं कि ऐसे अलौकिक पारिवारिक स्वर्ग की अनुभूति मेरे जीवन में पहली बार आई थी। और ऐसा अवसर बारम्बार पाकर स्वयं को कृत-कृत्य अनुभव करने के लिए मैं पिताजी, बाई आदि का सान्निध्य पाने को प्राय: उत्सुक रहता था। संभवतः इसी कारण मेरा उनके यहां आना-जाना कुछ अपेक्षा से अधिक ही रहता था। तथापि 'अति-परिचया-दवज्ञा' का लोक-व्यवहार हमारे सम्बन्धों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं डाल सका तो इसमें पिताजी के पूरे परिवार की आत्मीयता ही कारण है।

पिताजी किसी भी कला के सहृदय पारखी हैं। तब युवावस्था में मुझे फोटोग्राफ़ी का बहुत शौक हुआ करता था। किसी भी जीवन-प्रसंग को कैमरे में कैद कर रखना मुझे बहुत भाता था। अपनी इस रुचि के लिए मुझे पिताजी से सदा प्रोत्साहन मिला। उन्होंने स्व-सम्पादित दैनिक 'हिन्दुस्तान' में एकाध बार मेरे छायाचित्रों को स्थान देकर मेरा उत्साहवर्धन तो किया ही, साथ ही अधिक सार्थक और स्वाभाविक छायांकन की प्रेरणा भी दी।

मेरे सम्पर्क से उनके बड़े सुपुत्र विनयादित्य पर भी कैमरे का जादू चलने लगा, और इस शौक के कारण उसकी इन्जिनियरिंग की तैयारी में ढील आने लगी। किन्तु निस्सन्देह उसने कुछ अच्छे और कलात्मक छायांकन का प्रमाण भी दिया। पिताजी से उसे अपनी फोटो-कला पर सदा भरपूर प्रशंसा मिली। आई आई. टी. कानपुर में उसकी फोटो-गैलरी को खूब सराहा गया और यहां तक हुआ कि वह फोटोग्राफी को ही अपनी आजीविका बनाने की साध लेकर पढ़ाई छोड़ कर आ गया।

कोई भी पिता आजीविका पर कला को हावी होते नहीं देख सकता। साधारण व्यक्ति पुत्र द्वारा पढ़ाई छोड़ने पर जैसी हाय-तोबा मचाता उसका अनुमान लगाया जा सकता है। वह अवश्य बौखला जाता और न केवल पुत्र को ही भला-बुरा कहता, प्रत्युत ऐसा अवांछनीय शौक (और Shock भी) लगाने वाले को भी अवश्य कोसता। किन्तु पिताजी का धैर्य अटूट रहा। उन्होंने आजीविका-चयन का निर्णय अपने पुत्र के विवेक पर ही छोड़ दिया। एक इन्जिनियर और फोटोग्राफर के सामाजिक स्तर की तुलना की अपेक्षा उनके लिए पुत्र के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण था। और हुआ भी वही। विनय जी ने स्वयं ही समझ बूझकर इन्जिनियरिंग की परीक्षा पूरी कर डाली। और क्रमशः फोटोग्राफ़ी से जुड़ा हुआ कार्य 'फोटो कम्पोजिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर डिजाइनिंग' ग्रपनाया, जिसमें इनके शौक ग्रौर विद्या का, कला और ग्राजीविका का ग्रपेक्षित सुन्दर समन्वय हो गया है। ग्रौर आज 'द वर्ड' (शब्द) नाम से दक्षिण दिल्ली में कलापूर्ण छपाई के लिए जाने माने प्री-प्रिन्टिंग यूनिट के ये मालिक हैं। इस प्रकार, एक योग्य पिता के रूप में सन्तुलित और समझभरा व्यवहार करना, केवल ग्रपेक्षित सुविधाएं देना ही नहीं, किन्तु ग्रनपेक्षित बन्धनों का अभाव रखना, ग्रनावश्यक दखलंदाज़ी न करना उनके व्यक्तित्व का ऐसा उत्कृष्ट पहलू है, जो उन्हें परिवार का मुखिया होते हुए भी असम्पृक्त योगी की सी स्थिति प्रदान करता है।

सन् 1966 में मैं ग्रपना शोध-प्रबन्ध लिख रहा था। उसका प्रथम ग्रध्याय 'विषय-प्रवेश' तैयार हो गया था। ग्रपने श्रम पर आशीर्वाद पाने की भावना से मैंने वह पिताजी को दिखाया। उन्होंने उसे जिस मनोयोग से शब्दशः पढ़ा, यथा स्थान सुझाव दिये ग्रौर ग्रकृपणता से भूरि-भूरि प्रशंसा की, उससे मेरा मनोबल एवं ग्रात्मविश्वास परिपक्व हुग्रा। उनके सभी सुझाव नपे-तुले, सटीक, अभिव्यक्ति की स्पष्टता बढ़ाने वाले तथा औचित्य से परिपूर्ण थे। इसके बाद भी जब-जब मेरा कोई लेख उनके हाथों में पहुंचा वह निखरकर शैथिल्य रहित, स्पष्टतर और अधिक प्रभावी बन गया। वस्तुतः किसी भी प्रकार की ग्राभिव्यक्ति हो, उनके स्पर्श से वह प्राणवान ग्रौर ग्राकर्षक हो उठती है। उन्हें सही अर्थों में 'सम्पादकाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया जाना चाहिए, चाहे स्वामी डा. सत्यप्रकाश जी कुछ स्मितपूर्वक ही उन्हें इस उपनाम से पुकारते हैं।

उनकी सम्पादकीय निष्पक्षता को मैंने ग्रनेक बार ग्रनुभव किया है। इस महत्त्वशाली दायित्व पर वे किसी भी दबाव के ग्रागे झुकने के लिये तैयार नहीं होते। जिस पत्र-पत्रिका से सम्बद्ध रहे, उसकी मूल नीति को सदा अपना निर्देशक सिद्धान्त माना। अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा या किसी ग्रन्य इष्ट-मित्र या सम्बन्धी की इच्छा को उसमें ग्राड़े नहीं ग्राने दिया। जब पिताजी 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक-मण्डल में थे, तब मैंने एक-दो बार ग्रपने क्षेत्र से सम्बद्ध किसी समाचार या मित्र आदि को उस प्रतिष्ठित दैनिक में स्थान दिलाने का यत्न किया। किन्तु, राष्ट्र या जन-साधारण के लिए उसे कम महत्त्व का पाकर उन्होंने ग्रस्वीकृत करने में कभी भी संकोच नहीं किया। इसी प्रकार वैयक्तिक लांछन या ग्रनावश्यक विवाद-ग्रस्त प्रसंगों को उछालने की 'पीत-पत्रकारिता' को गर्हणीय समझना उनकी शान्त-गम्भीर प्रकृति के अनुरूप उनकी सम्पादकीय शैली का ग्रनिवार्य हिस्सा बन चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर, यदि उन्होंने पाया कि कोई समाचार उल्लेखनीय है, तो उसे स्वयं ही उपयुक्त स्थान दिया। उदाहरणार्थ, भारतीय विद्याभवन, दरियागंज, दिल्ली में 'आधुनिक संस्कृत-साहित्य' पर मैंने एक निबन्ध पढ़ा था। मेरी कुछ शोध-सूचनाएं उन्हें उपयोगी प्रतीत हुई होंगी। फलत:, 8 दिसम्बर 1973 के हिन्दुस्तान में तीसरे पृष्ठ पर इसका समाचार छपने के बाद ही अपने निबन्ध की विशिष्टता पर मेरा ध्यान गया। इस समाचार में मेरे 30 पृष्ठीय निबन्ध का सार-संकेत पिताजी के संस्कृत-प्रेम और उनकी तत्त्व-ग्राही लेखनी का अच्छा परिचय देता है, अतः उसे उद्धृत करने का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहा हूं। शीर्षक था—**स्वातन्त्र्योत्तर काल में संस्कृत के सात हजार ग्रन्थ प्रकाशित'**।— "संस्कृत साहित्य की धारा किसी भी काल में लुप्त नहीं हुई. ब्रिटिश शासनकाल में भी नहीं। स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के पश्चात् संस्कृत-साहित्य का विकास किस गति से हुआ, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर इन पच्चीस वर्षों में संस्कृत प्रकाशनों की संख्या लगभग सात हजार तक पहुंच गई है। (इसमें) संस्कृत से इतर भाषाओं में हुए अनुवादों की संख्या चार सहस्र और मौलिक संस्कृत रचनाओं की संख्या भी एक सहस्र से कम नहीं है।"

'पिताजी की चिन्तन-धारा में इतनी निर्मलता और गहनता कैसे बनी रहती है?'— यह प्रश्न प्रारम्भ में मेरे लिए रहस्यमय प्रतीत होता था। सम्पर्क बढ़ने पर मुझे इसका उत्तर शनैः शनैः मिलता गया। पहले तो उन्होंने अपने पिताश्री की कुशाग्र बुद्धि को दायरूप में प्राप्त किया है। किसी पाठशाला में न पढ़ने पर अपनी सूक्ष्म-प्रबुद्धता से वे (दादा जी) कठिन से कठिन गणितीय समस्याओं को कुछ ही क्षणों में सुलझा देते थे। पौने, सवाये और ढइया पहाड़े तो उनके लिए बच्चों का खेल थे। वैसी ही तीव्र स्मरणशक्ति पिताजी की भी चिन्तन-प्रगाढ़ता की आधारभूमि है। इसके साथ एकाग्रता पूर्वक अध्ययन-मनन करना उनका सदा का स्वभाव रहा है। ऊपर से जीवन भर का सातत्य उनके परिनिष्ठित अकम्प-अस्खलित ज्ञान-संचय को समृद्धतर करता रहता है। उनका कमरा सदा 'रीडिंग रूम' ही बना रहता है और पूरा घर एक पुस्तकालय। ऐसे ही प्रतिभा-पुरुषों के लिए **'व्यसनं श्रुतौ'** की पहचान बताई गई है।

ज्ञान-चर्चाओं के सुअवसर पिताजी के साथ मिल पाना मेरा परम सौभाग्य रहा है। उन जैसे मौलिक विचारक से विचार-विनिमय करने का अपना ही आनन्द है। शंकाएं उठाने या मतभेद दर्शाने पर अत्यन्त धैर्यपूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना पक्ष प्रस्तुत करना और समझाना उनकी आत्मीयता से संयुक्त रहता है। 'ईश्वर का अस्तित्त्व,उसका स्वरूप, वेदों की अपौरुषेयता,वेदज्ञान की अनन्तता, हिन्दू-धर्म, राष्ट्रधर्म, मानवधर्म और इनका सन्तुलन' आदि अनेक गम्भीर और विवादास्पद विषयों पर उनके विचार सुस्पष्टऔर सुनिश्चित हैं। उनसे अनेक बार चर्चा करके मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि उनका पक्ष वैज्ञानिक, व्यावहारिक और विश्वजनीन होता है। उसमें सिद्धान्त और क्रियात्मकता को समन्वित करके देखा-परखा गया होता है। कट्टरता या अन्धश्रद्धा उनके विचारों को बेड़ियां नहीं पहना पातीं।

'हिन्दू' शब्द की उनकी व्याख्या से प्रेरित होकर मैंने यह तुकबन्दी की थी—

"भारत-माता को मां मानें, देश-प्रेम अपनाते हैं।
हिन्द-देश में रहते हैं तो, 'हिन्दू' ही कहलाते हैं।"

ऐसे राष्ट्रभक्तों को ही वे 'हिन्दू' शब्द से अभिहित करते हैं, फिर चाहे वे सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई, या मुस्लिम पद्धति से जीवन जीते हों। केवल पहले चार मतावलम्बियों को 'हिन्दू' कहना कांग्रेसी भूल है, जिसे पूरा देश—'हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई। आपस में हैं भाई-भाई।' के गलत बने नारे में दोहराता है। इसके स्थान पर कहना चाहिए कि "मैं चाहे किसी मत के अनुसार पूजा-पाठ करूं, परन्तु हिन्द-देश का वासी होने से इसे अपना मानने के कारण मैं 'हिन्दू' पहले हूं। 'हिन्दू-राष्ट्र' का अर्थ भी वे यही मानते हैं कि 'देश-भक्तों के अपनत्व से युक्त भारत-राष्ट्र'।"

इस विषय पर उनसे मेरा विरोध इस प्रश्न के रूप में प्रकट होता है— "जब हिन्दू शब्द का अर्थापकर्ष किन्हीं भी कारणों से किया जा चुका है; और उसे एक मत-विशेष के साम्प्रदायिक अर्थ में सैंकड़ों वर्षों से प्रयुक्त किया जा रहा है; तब एक शब्द को गौरवान्वित करने के स्थान पर राष्ट्रीय भावों को प्रमुखता देने के लिए हम 'भारत-राष्ट्र' के प्रति ही समर्पित क्यों न हो?" इसके समाधान हेतु उनका यह तर्क भी कम प्रबल नहीं है—"देशभक्ति की भावना को पुनर्जीवित करने के लिए हिन्दू शब्द में निहित हिन्द के प्रति अपनत्व द्योतक 'उ' प्रत्यय की वास्तविकता को समझना अनिवार्य है। हिन्द और हिन्दू शब्द को समानार्थक न भी मानो, तब भी उनके घनिष्ठ सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता। जयहिन्द कहने वालों को 'जयहिन्दू' कहने में आपत्ति क्यों होनी चाहिए ? देश की नागरिकता भर बताने वाले 'भारतीय' शब्द से राष्ट्र-भक्ति की भावना वैसे भी लुप्त हो चुकी है। अतः यदि अंग्रेज साम्राज्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादियों द्वारा फूट का बीज़ बोने से पहले राष्ट्रीयता के परिचयार्थ 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हो सकता था, तो अब भी क्यों नहीं हो सकता ?" इस प्रकार उनके लिए हिन्दुत्व का अर्थ भी देशप्रेम है, सिख या मुस्लिम-विरोध नहीं।

पिताजी से समय-समय पर हुए वार्तालापों में अनेक बार उनके अपने जीवन-संस्मरण सुनने को मिलते रहे हैं, जिनसे उनकी प्रबुद्धता, लगन और साहसिक वृत्तियों का परिचय पाया है। उनके भारत-यात्रा-विवरण तो वस्तुतः रोमांचक ही होते हैं। हिमालय की अगम ऊंचाइयों, कैलाश-मानसरोवर से लेकर धुर दक्षिण में कन्या कुमारी तक, और पश्चिम में द्वारिका से लेकर पूर्व में बांगलादेश तक भारत को उन्होंने घूम-घूमकर देखा है और उसकी आत्मा को पहचाना है। जब वे स्वयं अपनी यात्राओं का वर्णन करते हैं तब तो लगता है कि हम भी 'चक्रचरण' बनकर उनके साथ उस यात्रा में सम्मिलित हो गये हैं, और अपने देश को, देशवासियों को जानने के साथ-साथ वहां के जीवन-स्पन्दन का भी साक्षात् अनुभव कर रहे हैं।

श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध करने वाली उनकी वक्तृत्व कला को मैंने पहली बार गांधी-ग्राउण्ड में सुना था। उसके बाद से तो यथा-संभव मैं उन्हें अवश्य सुनने का प्रयास करता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि धीरे-धीरे वे विषय की गहराई के साथ-साथ श्रोता के हृदय में भी उतरते जाते हैं। शब्द उनके अन्तस् से उद्बुद्ध होते हैं, और भाव-तरंगों के अनुरूप ही उनके स्वर में भी स्वतः आरोह-अवरोह होता जाता है। एक तरफ़ उनके तार भारत के इतिहास और संस्कृति से जुड़े होते हैं, तो दूसरी ओर आज की सामयिक समस्याओं की नब्ज पर भी उनका अनुभवी हाथ रखा होता है। अपने स्वाध्याय और सुविचार मन्थन द्वारा जो रत्न उन्होंने संगृहीत किये हैं उनसे वे जीवन में प्रकाश भरने का उपाय सुझाते हैं। ऐसे सार्थक विचार-प्रदाता को सुनकर कौन श्रोता स्वयं को कृतार्थ नहीं मानेगा ?

पिताजी एक वाग्मी और अप्रतिहत धारा प्रवाह बोलने वाले श्रेष्ठ वक्ता हैं,यह बात तो सभी को ज्ञात है,किन्तु वे एक उत्तम श्रोता भी हैं,यह कम लोग जानते होंगे। वैसे, अच्छा ही है कि पिताजी का यह गुण इतना सुविदित नहीं है, नहीं तो उन्हें सुनने से ही फ़ुर्सत न मिले। गत वर्ष मैं अमरनाथ की यात्रा करके लौटा तो मुझसे शीघ्र मिलने और पूरा विवरण सुनने को सर्वाधिक बेचैन पिताजी ही थे। मिलते ही बोले— 'सुनाओ, कैसी रही यात्रा ?' पूरी तल्लीनता के साथ आनन्द-विभोर होते हुए उन्होंने सारा विवरण सुना। मेरे मन में भी उनकी शैली का कुछ-कुछ अनुकरण करने की भावना बनी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। सुनाने के बाद उनका यह प्रमाण पत्र पाकर मुझे हार्दिक आह्लाद हुआ था— "वाह वेद जी ! आपकी यह यात्रा तो खूब साहसपूर्ण और सार्थक रही !"

किसी भी गोष्ठी में मैंने पिताजी को पूर्ण एकाग्रभाव से सम्बद्ध विषय पर श्रवण-मनन करते ही देखा है। अभी पिछले दिनों उनके ही घर पर 'रत्नाकर मण्डल' नामक एक स्थानीय साहित्यिक संस्था की विचार-गोष्ठी में 'ध्यान-योग और विपश्यना' पर मैंने अपनी वार्ता रखी। पिताजी स्वयं भी योग दर्शन के अच्छे मर्मज्ञ हैं। उन्होंने मेरी बात आद्योपान्त सर्वाधिक तल्लीनता से सुनी। अन्त में उनकी उत्साहवर्धक टिप्पणी में उनकी एकाग्रता और विषय-ज्ञता भी स्पष्ट थी— 'वेद जी ! आपने आज धारणा, ध्यान, समाधि की समानता और उसके अन्तर को बहुत भली भांति समझाया। यह इस बात का प्रमाण भी है कि आपने योग दर्शन का गम्भीर चिन्तन किया है।'

सचमुच, पिताश्री किसी की गम्भीर और यथार्थ अनुभूति-सम्पन्न अभिव्यक्तियों से ही प्रभावित होते है, थोथे वाक्यों से नहीं। आर्यसमाज में भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो बाहरी दिखावा अधिक करते हैं, किन्तु वास्तव में उनका लक्ष्य कुछ और ही होता है। ऐसे सज्जन स्वयं को लेखों या चित्रों द्वारा विज्ञापित करने को कुछ अधिक ही छटपटाया करते हैं। ऐसे ही एक धर्म-ध्वजी कुछ घिसी-पिटी वाग्जाल प्रसूत निष्प्रभावी वाक्यावली तथा चित्र लेकर पिताजी के कार्यालय में पहुंचे। स्वाभाविक था कि पिताजी स्वीकार न करते। बस फिर क्या था, वे तो गाली-गलौच पर उतारू हो गये। बाद में धमकियों भरे अनेक निराधार-आरोप-पत्र पिताजी के घर के पते पर भी प्रेषित किये। एक बार तो उनको मारने तक की भी धमकी दे डाली। इस धमकी के उत्तर में उन्होंने उन सज्जन को पहला और अन्तिम पत्र लिखा- "कार्यालय में और घर में रहने का मेरा अमुक अमुक समय है। आप अपनी इच्छा पूरी करने के लिए इन दोनों में से किसी भी स्थान पर आ सकते हैं। यदि आपको इसमें असुविधा हो, तो जिस स्थान पर आप कहे, मैं वहीं हाजिर हो जाऊं। एक आर्य बन्धु के हाथों मरने में मुझे प्रसन्नता ही होगी।"

इतनी गालियां सहकर भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करके उसकी नासमझी पर केवल मुस्कराने वाले पिताजी के धैर्य की दाद देनी होगी। इस प्रसंग से अपने कर्त्तव्य के लिए सब कष्ट सह लेने की भावना और गलत व्यक्ति से समझौता न करने की दृढ़ता भी प्रकट होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित क्षितीश वेदालंकार के बहुआयामी व्यक्तित्व को उनके कर्मक्षेत्र में अब भलीभांति पहचाना जाने लगा है। कई अवसरों पर उन्हें सम्मानित किया गया है। गत वर्ष 30-9-88 को आर्य समाज नया बांस में उन्हें जो प्रशस्ति पत्र भेंट किया गया, उसका यह वाक्य मेरी अनुभूति से पूर्णतः मेल खाता है, 'आपने अपने व्यक्तिगत विज्ञापन से पराङ्मुख रहकर अपने पदों के दायित्व का आत्मगौरव के साथ निर्वाह किया।' तभी तो आज भी 'आर्य जगत्' के सम्पादन हेतु पिताजी अपने आराम और अवस्था की चिन्ता छोड़कर उत्तम-सामग्री के संकलन में और सम्पादन-लेखन में जी जान से जुटे रहते हैं।

73 वर्ष की परिपक्वावस्था और अब शिथिल होते उनके स्वास्थ्य की चिन्ता करते हुए कभी-कभी मैं भी उनके बच्चों की तरह उन्हें कुछ आग्रह-पूर्वक अधिक विश्राम का परामर्श देने की धृष्टता कर बैठता हूं। संकेत होता है कि अब तो समाज की चिन्ता छोड़कर अपनी वैयक्तिक आत्मोन्नति को प्रमुखता देनी चाहिए। उनका सार्थक और अनुकरणीय निर्देश होता है कि सामाजिक चिन्तन और उसकी अभिव्यक्ति ही उनकी आत्मोन्नति का राज मार्ग है।

पूरे विश्व के साथ स्वयं को एकाकार करने वाला ऐसा कर्मयोगी जिसके व्यक्तित्व में प्रेम और प्रतिभा का समन्वय हो, तथा हृदय और बुद्धि में सदा अद्भुत सन्तुलन बना रहता हो, और जिसने धर्म और मानवता का सही सामञ्जस्य स्थापित किया हो, उसके उभय-लोक-यात्रा-निपुण पवित्र चरणों में मेरा पुनःपुनः विनम्र नमन।

—1595, हरध्यानसिंह रोड,
करौल बाग, नई दिल्ली–5

सहृदय और साहसी मेरे पिताश्री

—श्रीमती विश्ववारा
सहव्यवस्थापिका 'वर्ड ट्रौनिक'

वेद में **'सा प्रथमा संस्कृतिर विश्ववारा'** का उल्लेख मिलता है, जिसे पिताश्री ने आजीवन समझने समझाने और परिभाषित करने का प्रयास किया है। इसीलिए सम्भवतः प्रथम सन्तान होने के नाते पिताजी ने मेरा नाम विश्ववारा रखा था। जब भी पिताजी के मुख से यह वैदिक संकेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनती हूं, स्वयं पर गौरवान्वित हो उठती हूं। किन्तु फिर सोचने लगती हूं कि शायद पिताजी की भावनाओं के अनुरूप अपने आपको नहीं ढाल पाई। तभी तो आज इतना उद्वेग हो रहा है मन में, कि जो पिता वक्तृत्व-कला में इतने निपुण हैं, और जिन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करते हैं, देश-विदेश से आए दिन जिनके अच्छे-सुविचारित लेखों के लिए प्रशस्ति-पत्र आते रहते हैं, उन्हीं की पुत्री आज उनके सम्बन्ध में दो शब्द लिखते हुए स्वयं को असमर्थ-सा पा रही है। दूसरी ओर, ऐसा भी सम्भव है कि यह असमर्थता अपनत्व के कारण भासित हो रही हो। जो व्यक्ति अपने इतने समीप हो, इतना अपना हो, उसके बारे में कुछ भी कहते हुए जैसे शब्दों पर लगाम लग जाती है।

घर में, हमने अपने बचपन से ही पिताजी को सदा पुस्तकों से घिरा पाया। पढ़ना तो जैसे उनका व्यसन है। पढ़ते हुए उन्हें समय का ध्यान भी नहीं रहता। हमारी माँ ही समय पर यदि भोजन की याद न कराए, तो वे कभी स्वमुख से नहीं कहेंगे कि 'खाना दो' 'भूख लगी है'—मानों वे भी घर में कोई अतिथि हों।

पिताजी घर में बहुत कम बोलते हैं, हर समय विचार-मग्न ही प्रतीत होते हैं। सम्भवतः जो कुछ वे पढ़ चुके होते हैं, उसका मन्थन कर रहे होते हैं। वैसे भी पिताजी प्रायः ऑफिस से देर से ही घर आते थे। कारण, दिन में कार्यालय में मिलने-जुलने वाले लोग अधिक आते थे तो लेखन कार्य नहीं हो पाता था। एकान्त होने पर, शान्तिपूर्ण वातावरण में ही रचनात्मक लेखन सम्भव है। अपने कार्य के प्रति इतने समर्पित रहे हैं पिताजी कि घर पहुंचने में चाहे कितना ही विलम्ब क्यों न हुआ हो, उन्होंने चिन्ता नहीं की।

सभी घरों में पति-पत्नी में कुछ न कुछ किसी भी बात पर मतभेद होने पर कहा-सुनी हुआ ही करती है। पत्नी को पति से डाँट भी खानी पड़ती है। पर हमने अपने घर में पिताजी को माँ से कभी ऊंचे स्वर में बोलते नहीं सुना, डाँटना तो दूर की बात है। उनके विचार से पत्नी को डाँटना भी असभ्यता और जंगलीपन है। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं है। वे पत्नी को सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी और सहकर्मिणी समझते हैं।

मेरा छोटा भाई डॉ. शीलादित्य जो अब बहुत गम्भीर और स्वाध्याय-शील हो गया है और आजकल अमेरिका गया हुआ है, बचपन में बहुत शरारती और आशु-रोषी था। खेलने में उसकी रुचि इतनी थी कि घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पैर टिकते ही न थे। हम सब पिताजी से शिकायत करते कि "क्या है, पिताजी, आप शील को डाँटते क्यों नहीं हैं ? खेलने में वह अपनी भूख प्यास सब भूल जाता है।" उनका एक ही जवाब होता था—"गलियों में खेलने वाले ही तो 'हीरे' हुआ करते हैं।" हम तब मानते ही नहीं थे। पर वही शील अपने बड़े भाई विनय के आई. आई. टी. कानपुर पढ़ने जाने पर घर में माँ के साथ कामों में हाथ बंटाने लगा और घर-परिवार के प्रति अपनी पूर्ण जिम्मेवारी समझने लगा तभी हमें पिताजी के उस कथन की सच्चाई समझ आई कि बच्चे के समुचित विकास के लिए उसे उन्मुक्त और स्वतन्त्र वातावरण देना कितना आवश्यक है। अब तो अनजाने में ही शील ने पिताजी का आत्मसंयमी होने का गुण इतना आत्मसात् कर लिया है कि हम हैरान होते हैं।

धुन के धनी

बचपन से ही अपनी धुन के इतने धनी हैं पिताजी कि उनके निश्चय से उन्हें कोई डिगा नहीं सकता। सन् 1939 में हैदराबाद के सत्याग्रह में जब वे सम्मिलित हुए तो परिवार में सब कुछ कुशल से नहीं था। सबके विरोध करने पर भी राष्ट्रभक्ति और सामाजिक दायित्व को सर्वोपरि मानते हुए, उन्होंने गुरुकुल या घर की अपेक्षाकृत सब सुख-सुविधाओं को त्यागकर अपने जत्थे का नेतृत्व किया; ठेठ हैदराबाद पहुंचकर सत्याग्रह किया और कठोर कारावास को गले लगाया। उसके साथ ही उनका छात्र-जीवन समाप्त हुआ। मई-जून 1959 की बात है। हमारे अत्यन्त प्रिय फुफेरे भाई की हमारे घर पर ही चार दिन की बीमारी में ही असामयिक मृत्यु हो गई। तब सारे परिवार पर भीषण वज्राघात हुआ था। अभी हम उस दुःख से पूरी तरह उबर भी न पाए थे कि पिताजी का सितम्बर माह में पर्यटन का कार्यक्रम बन गया। हमेशा तो पिताजी की अनुपस्थिति हम सह लिया करते थे, पर इस बार उनका एक माह तक घर से दूर रहना हम सह सहीं पा रहे थे। हम अकेले न रह जाएं इस समस्या का समाधान इस प्रकार हुआ। आर्यसमाज नया बांस के तत्कालीन प्रधान पिताजी के नाम मात्र के परिचित एक सज्जन को रात्रिकालीन आवास की परेशानी थी। वे सर्विस में थे इसलिए दिन तो उनका कार्यालय में बीत जाता था। पर रात में कहां जाएं ? थोड़ी समस्या उनकी थी, थोड़ी हमारी। हालांकि पिताजी उनके बारे में तब तक कुछ भी नहीं जानते थे, पर उनको रात में हमारे घर सोने के लिए उन्होंने कह दिया। तब हमारे पास केवल एक ही कमरा था। रसोई, स्नानघर, शयनकक्ष, अध्ययनकक्ष सब कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही कमरे में समाहित । ऐसे स्थान में किसी अजनबी की तो गुंशाइश ही नहीं थी । किसी अनजान व्यक्ति को कोई इस प्रकार अपने घर में शरण दे सकता है, यह उन सज्जन को सहसा विश्वास ही नहीं होता था । वे स्वयं अपनी तुनक मिज़ाजी के कारण अपने परिवार से पर्याप्त खिन्न थे और वहाँ नहीं रहना चाहते थे । किन्तु पिताजी ने उन पर इतना विश्वास किया कि अपनी अनुपस्थिति में भी उन्हें हमारे एक कमरे वाले निवास पर ही सोने की अनुमति दे दी, इस विश्वास के कारण वे पिताजी से इतने प्रभावित हुए कि धीरे-धीरे उनके स्वभाव में गम्भीर परिवर्तन आ गया और उनकी तुनक मिज़ाजी हवा हो गई । बाद में तो वे हमारे परिवार के अन्तरंग सदस्य ही बन गए । और अपने निजी परिवार से भी उनके सम्बन्ध सुधर गए ।

याद आते हैं वे दिन जब हम छोटे-छोटे भाई-बहिन पिताजी के साथ सुबह सब्जी लेने जाते हुए साथ हो लेते थे । मन में शायद यह लालच रहता था कि बाज़ार से गुब्बारे लेकर आएँगे । माँ हमें डाँटती कि क्या रोज-रोज गैस वाले गुब्बारे ले आते हो, सारे घर में गैस की दुर्गन्ध फैल जाती है । थोड़ी देर उस डाँट का असर रहता । अगले दिन फिर उसी उत्साह से हम चल देते पिताजी के साथ । उन दिनों सब्जी रोज़ लानी पड़ती थी क्योंकि तब फ्रिज का चलन नहीं हुआ था । हमारी गली के नुक्कड़ पर एक पान वाले की दुकान थी । आते-जाते हम पान वाले को देखते और हमारा मन पान खाने को करता । एकाध बार पिताजी के सामने इच्छा व्यक्त की, पर पान उन्होंने कभी नहीं दिलाया । मैं तो खैर बड़ी थी ही सबसे, विनय ने भी कभी जिद्द नहीं की । अलबत्ता शील तब तीन-चार साल का था । और वह प्रायः उस दुकान को आशा भरी निगाहों से देखा करता, किन्तु हर बार उसे मन मसोस कर रह जाना पड़ता । इसके पीछे उनकी धारणा थी कि पान खाने से दांत खराब हो जाते हैं, इसलिए न कभी स्वयं खाते थे और न हम बच्चों को खाने के लिए दिलाते थे ।

स्कूल में सभी बच्चे अल्पावकाश में खर्चने के लिए पैसे लाते थे । तब एक-दो आने में भी भरपेट नाश्ता हो जाता था । पर पिताजी ने स्कूल जाने तक हमें कभी जेब खर्च नहीं दिया, इस आशंका से कि कहीं फिजूल-खर्ची की आदत न पड़ जाए और ऊटपटांग चीजें खाकर कहीं हम अस्वस्थ न हो जायँ । पिताजी कहते थे कि जो वस्तु खाना चाहते हो, वह घर में मँगाकर सब आपस में मिलजुल कर खाओ, अकेले नहीं । इसीलिए फलादि का अभाव पिताजी ने घर में कभी नहीं रहने दिया । प्रत्येक मौसम के मौसमी फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य आते थे हमारे यहाँ । ऐसे ही हर महीने की पहली तारीख को पिताजी कोई न कोई मिठाई भी अवश्य लाते थे । पेठे की मिठाई को सर्वाधिक निरापद मान कर सर्व प्रमुख स्थान उसी को मिलता था ।

हमारे उस एक कमरे के मकान में सर्दियों में सुबह-सवेरे ही धूप आ जाती थी । छुट्टी वाले दिन पिताजी बारी-बारी से हम सब बच्चों की मालिश करते । सिर की मालिश कराते हुए हमें कभी नींद भी आने लगती थी । कानों में तेल डालते, थोड़ा व्यायाम कराते । दरवाजे की चौखट के सहारे खुद भी दण्ड लगाते और हमसे भी लगवाते और फिर एक-एक कर सबको गरम पानी से नहलाते । क्या ही सुखद दिन थे । हमारे छुटपन के दिनों में माँ की अधिक व्यस्तता के क्षणों में पिताजी भरसक माँ का हाथ बंटाने की कोशिश भी करते ।

धीरे-धीरे हम बड़े होने लगे । हम अपनी कक्षाओं की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते रहे और पिताजी अपनी जीवन-परीक्षा । सन् 1952-53 में ही पिताजी ने मेरठ कॉलेज से—जो उस समय आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था—संस्कृत में एम.ए.की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । महीने में एक सप्ताह के लिए 'हिन्दुस्तान' अखबार में पिताजी की नाइट ड्यूटी आती थी । उस रात्रिकालीन पारी के दौरान ही कक्षा में उपस्थिति दर्शाने हेतु वे मेरठ जा पाते थे और रात को फिर अखबार की ड्यूटी पूरी किया करते थे । नींद की कसर ट्रेन में पूरी होती थी ।

मुद्राराक्षस नाटक

उन्हीं दिनों मेरठ विश्वविद्यालय के छात्रों ने संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षस' नाटक का दिल्ली के वाई. एम. सी. ए. (यंगमैन क्रिश्चियन एसोसिएशन के सभागार) में मंचन किया । मैं तब सात-आठ साल की ही तो थी, इसलिए और तो कुछ याद नहीं है, बस इतना स्मरण है कि पिताजी उसमें 'चाणक्य' बने थे । चाणक्य का रोल ही नाटक में सर्वप्रमुख था । जिस प्रकार नाटक में वे अपने शिष्य शार्ङ्गरव को पुकारते थे, उसकी अनुगूँज अभी तक मेरे कानों में बाकी है । पिताजी का यह रूप भी मेरे लिए आश्चर्यकर और सुखकर ही था । मुझसे छोटे भाई विनय को पिताजी के ये गुण विरासत में मिले हैं । स्कूल की ओर से भाषण-प्रतियोगिताओं में उसने भी कई पुरस्कार प्राप्त किए हैं, नाटकों में भाग लिया है, कॉलेज में पत्रिकाओं का सम्पादन किया है । अपने व्यवसाय में भी इस सम्पादकीय गुण की जब जैसी आवश्यकता होती है, वह उपयोग करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियो पर भी पिताजी ने संस्कृत के कई नाटकों में भाग लिया पर समय का अपव्यय अधिक होने से उस ओर का आकर्षण पिताजी ने छोड़ ही दिया।

बाद में पता लगा कि जब भारत सरकार ने हिन्दी-विरोधी नीति अपनाई और हिन्दी के अनेक दिग्गज महारथियों ने उस नीति का विरोध किया, तो पिताजी ने डायरेक्टर को चिट्ठी लिखकर यह सूचित कर दिया कि "भारत सरकार के हिन्दी विरोधी कदम के विरोध में मैं रेडियो का बहिष्कार करता हूं—क्योंकि मुझ अकिंचन के पास अपना मानसिक विरोध प्रकट करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। इसलिए भविष्य में मैं कभी रेडियो प्रोग्राम में भाग नहीं लूँगा।" उन्होंने अपने इस निश्चय की पब्लिसिटी नहीं की और इस प्रकार अतिरिक्त आय और ख्याति का एक अच्छा साधन अनायास स्वेच्छा से छोड़ दिया। उसके बाद से कई बार निमन्त्रण आने पर भी वे कभी किसी रेडियो प्रोग्राम में शामिल नहीं हुए और न उन्होंने कभी कोई रेडियो वार्ता लिखी।

ऊपर मैंने जिस 'मुद्राराक्षस' नाटक का जिक्र किया है, उसके बारे में बड़ी होने पर मुझे पता लगा कि भारत की राजधानी में वह संस्कृत का प्रथम नाटक था। उससे पहले किसी ने राजधानी में संस्कृत नाटक के मंचन का साहस नहीं किया था। वह नाटक इतना पसंद किया गया था कि जनता के आग्रह पर अगले दिन भी उसे दुहराना पड़ा। उस समय लोकसभाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर दोनों दिन बराबर आए और नाटक के सभी पात्रों को, खास तौर से चाणक्य (पिताजी) को खूब शाबाशी दी। विदेशी दूतावासों ने और राजधानी के अंग्रेजी के अखबारों ने इस नाटक में विशेष रुचि ली, क्योंकि संस्कृत का नाटक उनके लिए सर्वथा नई चीज थी। कई दूतावासों के अधिकारी तो 'मुद्राराक्षस' का अंग्रेजी अनुवाद साथ लेकर आए थे, जिससे नाटक को समझने में कठिनाई न हो। पर मेरठ कॉलेज के उस समय के संस्कृत विभागाध्यक्ष और देश के प्रसिद्ध प्राच्य शिक्षाविज्ञ प्रो. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री हरेक अंक के मंचन से पूर्व संस्कृत और अंग्रेजी में संक्षेप से अभिनेय घटनाचक्र का वर्णन कर देते थे, इससे विदेशी दूतावास भी उसका अच्छा आनन्द ले सके।

उदार-हृदय

मेरे पिता इतने सरल हृदय, निश्छल और उदार हैं कि किसी अन्य के कारण स्वयं परेशानी में भी पड़ जाते हैं। उनकी सदाशयता और अव्याव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारिकता के कारण एक बार हमारे घर में कुर्की वाले भी आ गए थे। हुआ यूं, कि इनके ऑफिस के किसी सहकर्मी ने जो किसी चिटफण्ड के सदस्य थे, गारण्टर के रूप में पिताजी के हस्ताक्षर करवा लिये। वे सहयोगी महाराज तो उस चिट से पैसा निकाल कर खा-पीकर, मस्त, चिटवालों की किश्तें चुकाने का नाम नहीं। गारण्टर होने के नाते चिटफण्ड वालों ने कुर्की के लिए पिताजी को फंसा दिया।

पिताजी प्राय: प्रति रविवार को आर्यसमाज के अधिवेशनों में और उनके वार्षिकोत्सवों मैं भाषणार्थ जाते रहते हैं। इससे उनकी सामाजिक गतिविधि बनी रहती है। उसमें आनन्द तो लेते ही हैं। ऐसे ही किसी उत्सव में उनके साथ आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् और उनके गुरु श्री पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार भी एक वक्ता थे। भाषणोपरान्त जो दक्षिणा उन्हें प्राप्त हुई, वह उनकी आशा से काफी कम थी। दोनों को घर भेजने के लिए एक ही टैक्सी का प्रबन्ध किया गया। उन्होंने राह में पिताजी से पदाधिकारियों की कृपणता की बात कहकर सर्वथा मौन साध लिया। पिताजी से उनकी यह मनोदशा देखी न गई। इसलिए अपनी दक्षिणा की समस्त राशि चुपचाप उन्हें दे दी। पं. हरिशरण जी की खिन्नता इससे दूर हो गई। गृहस्थी और बाल-बच्चों वाले होकर भी पिताजी ने अपने गुरु की, जो गृहस्थी भी नहीं हैं, केवल मनोदशा भांपकर गुरु-भक्ति का परिचय दिया। यह घटना सम्भवत: पिताजी को अब याद भी नहीं होगी। किन्तु उस दिन माँ घर में नहीं थी, और पिताजी को दूध आदि देते हुए मैंने उनके कार्यक्रम का सविस्तार विवरण जानना चाहा तो अकस्मात् मुझे यह घटना सुनाई। आज उसका उल्लेख करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रही हूं क्योंकि पिताजी ने अपनी आवश्यकता से अधिक अपने गुरु के काल्पनिक कष्ट को दूर करने को महत्त्व दिया। आज के इस अर्थप्रधान समाज में तो वे गैर-दुनियादार ही सिद्ध होंगे।

सिद्धान्तवादी

पिताजी पूर्णत: सिद्धान्तवादी हैं। उन्होंने अपने जिन सिद्धान्तों को मानदण्ड बनाया हुआ है उसके अन्तर्गत सब कुछ सहनीय और स्वागत योग्य है। जब पिताजी 'दैनिक हिन्दुस्तान' समाचार पत्र में सह सम्पादक के पद पर कार्यरत थे तो बहुत से लोग उनके इर्द-गिर्द केवल इसलिए चक्कर लगाते रहते थे कि उनकी कोई रचना 'हिन्दुस्तान' पत्र में छप सके। पर रचना की गुणवत्ता के अभाव में पिताजी ने किसी की कोई रचना छपने दी हो, स्मरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आता। सन् 73-74 में मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में एम. लिट्. की छात्रा थी। उन दिनों जो विभागाध्यक्ष थे उनकी शायद आकांक्षा रही कि उनके लेख 'हिन्दुस्तान' पत्र में नियमित स्थान पा सकें। पिताजी यदि दुनियांदार होते तो उनके लिए यह कोई कठिन काम नहीं था। दुनियादारी तो यही है न कि 'इस हाथ दे, उस हाथ ले।' पर यह उनके सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध था कि अपने किसी प्रयोजन के लिए वे ऐसा कोई पक्षपात पूर्ण कार्य करें।

आज जब स्मृतियों के झरोखे से झांक रही हूं तो समझ नहीं आ रहा 'क्या भूलूं, क्या याद करूँ'। मैं अब भी जब कभी मायके जाती हूं, पिताजी को हमेशा मसनद के सहारे बैठकर पढ़ते हुए ही पाया है। 'नमस्कार, हालचाल' का थोड़ा सा औपचारिक आदान-प्रदान होने के बाद पिताजी फिर उसी चिरपरिचित मुद्रा में परिलक्षित होते हैं। कभी तो लगता है कि कितने निर्मोही हैं पिताजी। हम आए हैं तब भी वही किताबें और अखबार। जैसे हमसे कोई सरोकार ही नहीं। पर जब एकाध दिन वहाँ ठहरने का अवसर मिलता है तो किसी न किसी वाक्य से वे ऐसी रसभरी और स्नेहसिक्त बौछार करते हैं कि अन्तर्मन तक भीग उठता है।

अपने जीवन की एक घटना मैं कदापि नहीं भूल सकती। सन् 1958 की बात है। मैं नवीं कक्षा की छात्रा थी तब। हमारे स्कूल में उद्घोषणा हुई कि स्कूल से छात्राओं को पश्चिमी भारत की यात्रा के लिए ले जाया जाएगा। जो छात्राएं इच्छुक हों, वे अपना नाम और नियत राशि स्कूल में जमा करा दें। उस दिन अचानक पिताजी कार्यालय से जल्दी घर आगए थे। हम सब रात का भोजन साथ बैठकर ही करते थे। माँ बनाती जाती और हम भाई-बहिन गरम-गरम भोजन का आस्वाद लेते। उसी ससय हम भाई-बहिन अपने स्कूल में घटी घटनाओं का ब्यौरा दिया करते थे। वैसे तो पिताजी को भोजन के समय बात करना पसन्द नहीं। वे मानते हैं कि बातचीत में लगे रहने से चबाने की ओर ध्यान नहीं रहता। पर हम सब कहाँ मानने वाले थे। केवल मुझसे छोटे और शेष सबसे बड़े भाई विनय को तो तभी अवसर मिलता था अपनी जिज्ञासाएं शान्त करने का। पिताजी उपलब्ध भी तो उसी समय होते थे। सो उस दिन मैंने भी अपने स्कूल की घोषणा वाली बात सूचनार्थ निवेदन कर दी। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि मैं ऐसी किसी यात्रा पर जा पाऊंगी। पिताजी ने बस इतना पूछा कि तू जाना चाहती है? मैंने स्वीकृति में हामी भर दी। पिताजी ने मुझे उस समय कुछ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा। आजकल बच्चे अपनी मांगे मनवाने के लिए पीछे ही पड़े रहते हैं और माँ-बाप भी उनसे पीछा छुड़ाने के लिए केवल आश्वासन देकर रह जाते हैं। मैं भी अपनी बात कहकर निश्चिन्त हो चुकी थी और भूल भी गई थी। अगले दिन मेरी कक्षा में स्कूल की एक परिचारिका मुझे स्कूल कार्यालय में ले जाने के लिए आई। मैं डरते-डरते उसके साथ कार्यालय पहुंची, क्योंकि कार्यालय में बुलाया जाना मानों किसी अपराध के लिए दण्डित करना हो। पर जब कार्यालय में पहुंची तभी पता लगा कि पिताजी मेरा यात्रा व्यय देने आए है। 'बिन मांगे मोती मिले' की उक्ति यहाँ पूरी तरह चरितार्थ होती है। पिताजी तो स्वयं घुमक्कड़ी के शौकीन हैं। वे ही तो किशोरावस्था में की गई शिक्षा-यात्राओं के महत्त्व को जान सकते थे। ऐसे यात्रा-कार्यक्रमों के लिए पिताजी ने हम सबको सदा ही उत्साहित किया है। अब भी हम किसी स्थान पर जाने का आयोजन करते हैं तो सबसे अधिक प्रसन्नता उन्हें ही होती है और हमारे यात्रा-विवरण भी मनोयोग से सुनकर जितने भाव-विभोर और आनान्दित वे होते हैं, अन्य कोई नहीं।

साहसी यायावर

उनकी यायावरी साहसिकता के बारे में जाने बिना तो उनके व्यक्तित्व का आकलन अपूर्ण होगा। जब भी उन्हें अवसर मिले, देश-देशान्तर के भ्रमण पर निकल पड़े। कैलाश-मानसरोवर की, दुर्भाग्य से जो आज भारत से छिने हुए हैं, कठिनतम यात्रा से लेकर निकटवर्ती पड़ौसी देश नेपाल और बांग्ला देश तथा सुदूर अफ्रीकी (नैरोबी, मोरीशस) और यूरोपीय देश (लन्दन) तक की यात्राएं कर डाली हैं। समूचे भारत को तो उन्होंने अपने पैरों से नापा ही है। उनकी एक दुर्गम यात्रा का विवरण इसलिए आवश्यक है कि उनके अदम्य साहस का उद्‌घाटन हो सके। हिमाचल प्रदेश में पांगी नामक स्थान चम्बा से कोई 80 मील दूर है जहां साच नामक कठिन दर्रा पार करके जाना पड़ता है। पांगी ऐसा दुर्गम स्थान है कि जिस प्रकार शहरी जीवन में 'इंग्लैंड रिटर्न' को महत्त्व दिया जाता है उसी तरह पहाड़ी जीवन में 'पांगी रिटर्न' को महत्त्व दिया जाता है। वहां जाने वाले सरकारी कर्मचारियों को दुगुने वेतन के अलावा 'कफन अलाउन्स' भी दिया जाता है—इस ख्याल से कि पता नहीं अब यह व्यक्ति जीवित लौटकर आ पाएगा या नहीं। ये उस यात्रा में दर्रे को पार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते ग्लेशियर के एक हिमखण्ड में दरार पड़ने लगी। ये उस स्थान को पारकर कुछ ही कदम आगे बढ़े थे। यदि एक सैकण्ड का भी विलम्ब हो जाता तो? सोचकर ही मन काँप उठता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दरार फटने की भयंकर आवाज ने इनकी श्रवण-शक्ति को आघात पहुंचाया, जो आज तक भी क्षीण है और वे श्रवण यन्त्र के अभाव में आपस में की गई बातचीत का पूरा लुत्फ नहीं उठा पाते। मजे की बात तो यह कि इस हादसे का पता हमें इनसे नहीं लगा, यद्यपि यात्रा का पूरा विवरण ये जिस रोचक ढंग से सुनाते हैं वह स्वयं में एक अनुभव है, मानों उस यात्रा में हम भी सम्मिलित हों। कुछ महीनों के बाद उस समय के उनके एक सहयात्री ने हमें यह घटना सुनायी, तभी पता चल सका।

पिताजी में एक बात और विशेष है जो हरेक में दुर्लभ है। वह यह कि वे जब किसी यात्रा पर निकलते हैं तो उस स्थान की भौगोलिक जानकारी के साथ-साथ वहाँ की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों पर भी पूर्ण शोध करके ही गन्तव्य स्थान को प्रस्थान करते हैं।

ऐसे तो अनेक संस्मरण हैं जिनमें इन्होंने जान की जोखिम तक उठाया है। एक ही पर्याप्त होगा। जब ये गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के विद्यार्थी थे तो एक दिन सायंकालीन एकाकी भ्रमण में उन्हें एक साँप ने काट खाया। तुरन्त काटे हुए स्थान से थोड़ा सा ऊपर पाँव को इन्होंने कसकर रूमाल से बाँध दिया और भागते-भागते गुरुकुल वापस लौटकर सहपाठियों और गुरुजनों को तथा अस्पताल में डॉक्टर को बताया कि साँप ने काट लिया है, तो कोई इनकी शान्त मुख मुद्रा को देखकर मानने को ही तैयार नहीं कि साँप काट चुका है। जब दंश का स्थान देखा तब विश्वास किया। गुरुकुल के आचार्य की आँखों में तो आँसू आ गए। उनके मुंह से निकला— 'हाय गुरुकुल का होनहार विद्यार्थी ऐसे चला जाएगा।' अन्य लोग भी स्तब्ध पर ये निर्विकार। फिर उपचार के लिए भाग दौड़ शुरू हुई।

ऐसे धीर-गम्भीर, सरल-निश्छल, स्नेहिल, सिद्धान्त प्रिय, श्रद्धेय पिताश्री के चरणों में मेरा शतशः नमन। प्रभु से प्रार्थना है कि उनका सतत स्नेह और पथ प्रदर्शन आजीवन हमें मिलता रहे।

—1595, हरध्यानसिंह रोड,
करौलबाग, नई दिल्ली-5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९८८ में [illegible], दिल्ली में अभिनन्दन के अवसर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

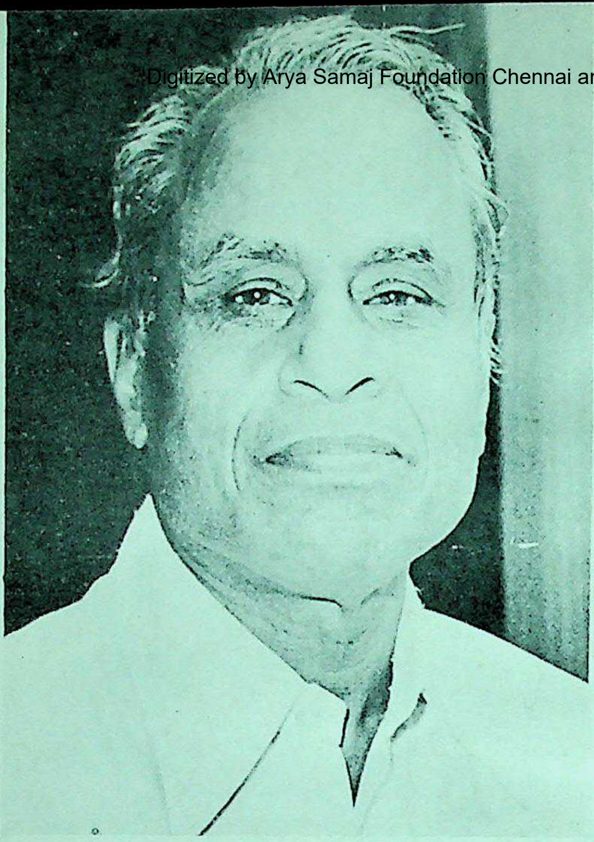

सन् १९७५ में हिन्दुस्तान टाइम्स के 'इविनिंग न्यूज' में सचित्र परिचय के लिए लिया गया चित्र

८ मार्च, १९८९ को उपराष्ट्रपति निवास पर डा० शंकरदयाल शर्मा द्वारा 'शतपथ ब्राह्मण' के तीन खण्डों का विमोचन। नीचे बैठे हैं स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, श्री क्षेमचन्द्र सुमन, क्षितीश वेदालंकार, चिरंजीत और विजयकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षितीश जी सन् ४० में,
नागपुर में, सार्वदेशिक
सभा के उपदेशक के रूप में

सन् १९८७ में, तालकटोरा सभागार में मुख्य अतिथि केन्द्रीय रक्षामंत्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त 'महात्मा हंसराज विशेषांक' का विमोचन कर रहे हैं। साथ खड़े हैं सम्पादक श्री क्षितीश वेदालंकार, प्रो॰ वेदव्यास, श्री रामनाथ सहगल, श्री दरबारी लाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

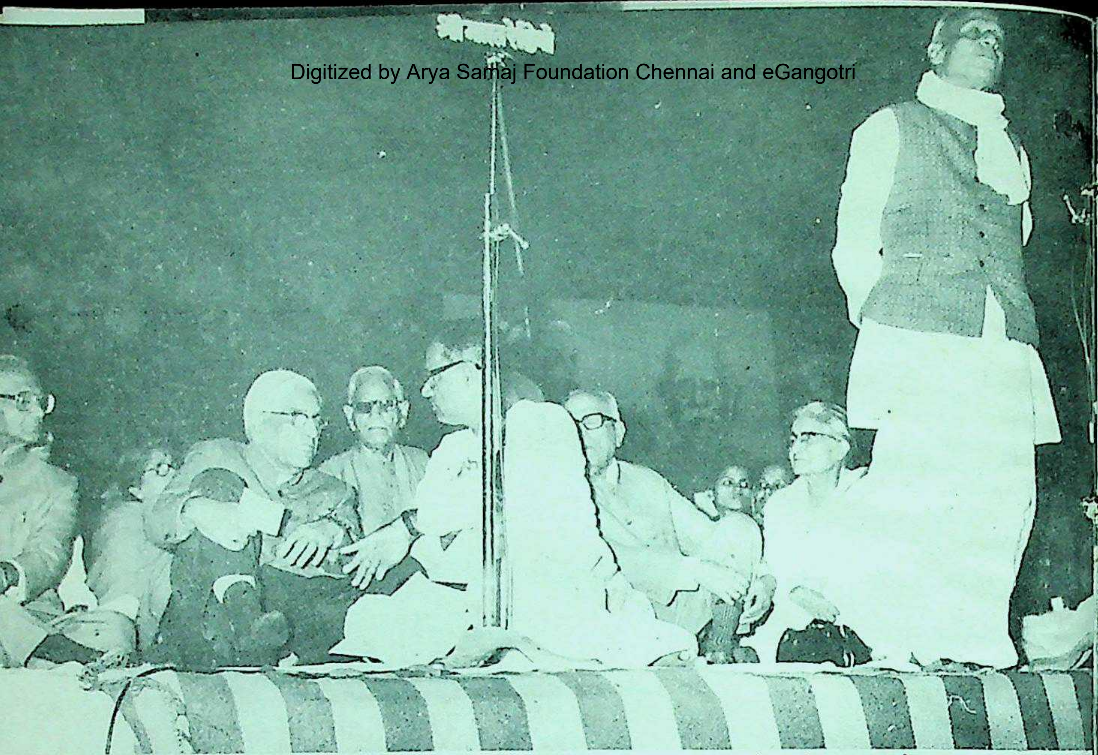

सन् १९८३ में अजमेर में हुई ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर शिक्षा सम्मेलन में भाषण करते हुए। मंच पर श्री दत्तात्रेय वाबले, प्रो॰ वेदव्यास, महेन्द्र प्रताप शास्त्री, प्रो॰ रत्नसिंह, श्रीकरण शारदा, कु॰ विद्यावती आनन्द तथा अन्य।

चौधरी चरणसिंह द्वारा 'दयानन्द दिव्य दर्शन' का विमोचन सन् १९७८। नीचे सूचनामंत्री, श्री लाल कृष्ण अडवाणी, संसद सदस्य और सार्वदेशिक सभा के महामंत्री श्री ओमप्रकाश त्यागी, चौ॰ देशराज तथा अन्य नेता

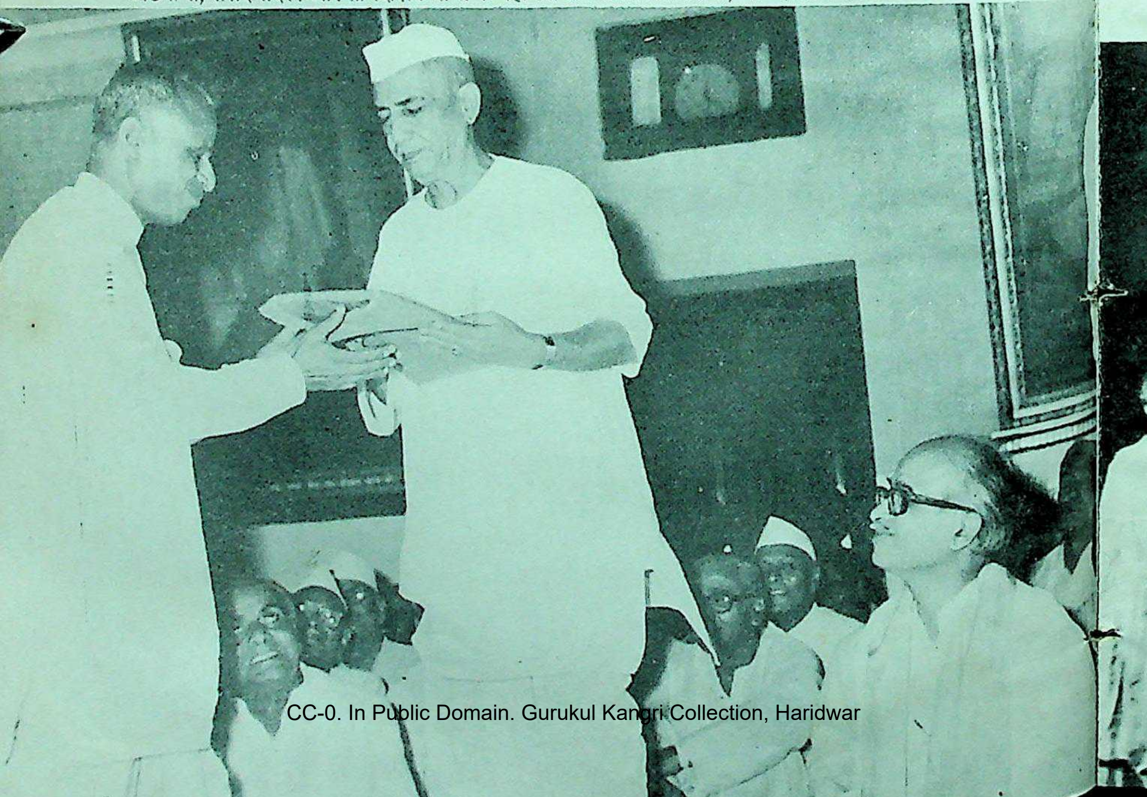

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

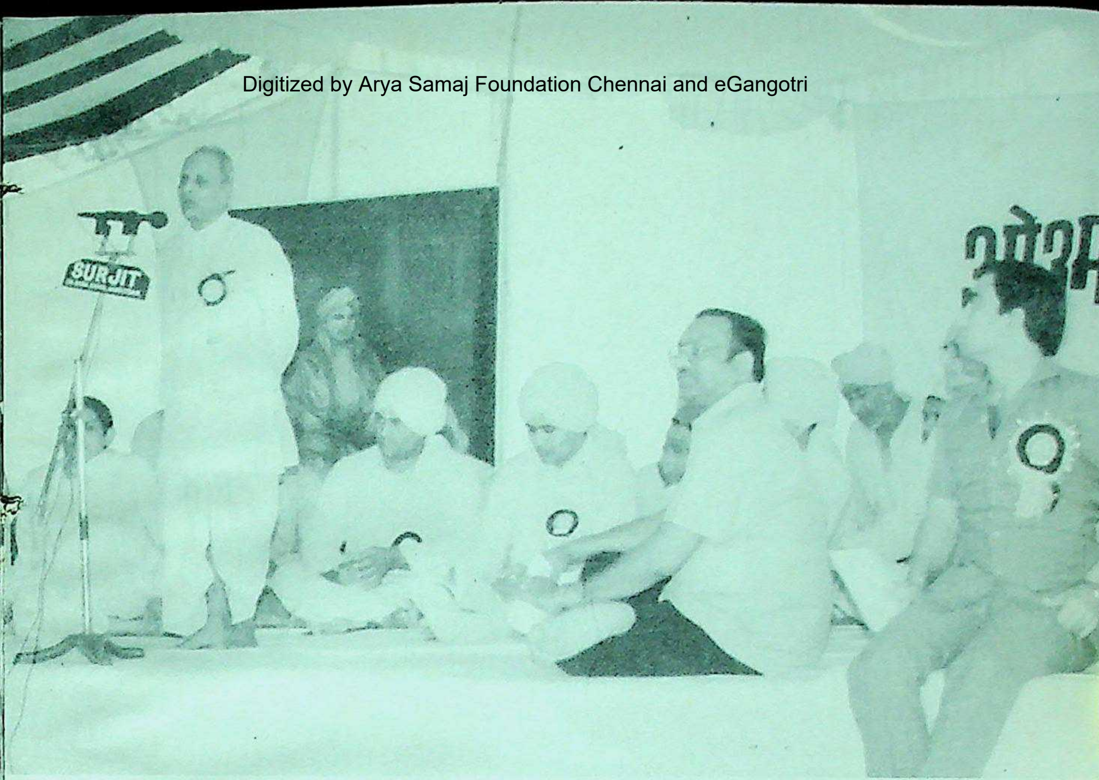

सन् १९८५ में अमृतसर में हुए आर्य युवक महासम्मेलन में राष्ट्र रक्षा सम्मेलन का उद्घाटन भाषण देते हुए

६ अप्रैल १९८९ को हिमाचल भवन, दिल्ली में 'ऋषि दयानन्द की हिन्दी सेवा' संगोष्ठी में भाग लेने वाले प्रमुख वक्ता — डा॰ धर्मपाल, प्रो॰ शेरसिंह, स्वामी आनन्द बोध सरस्वती, डा॰ विजयेन्द्र स्नातक, क्षितीश वेदालंकार और हिन्दी अकादमी के महासचिव डा॰ नारायणदत्त पालीवाल

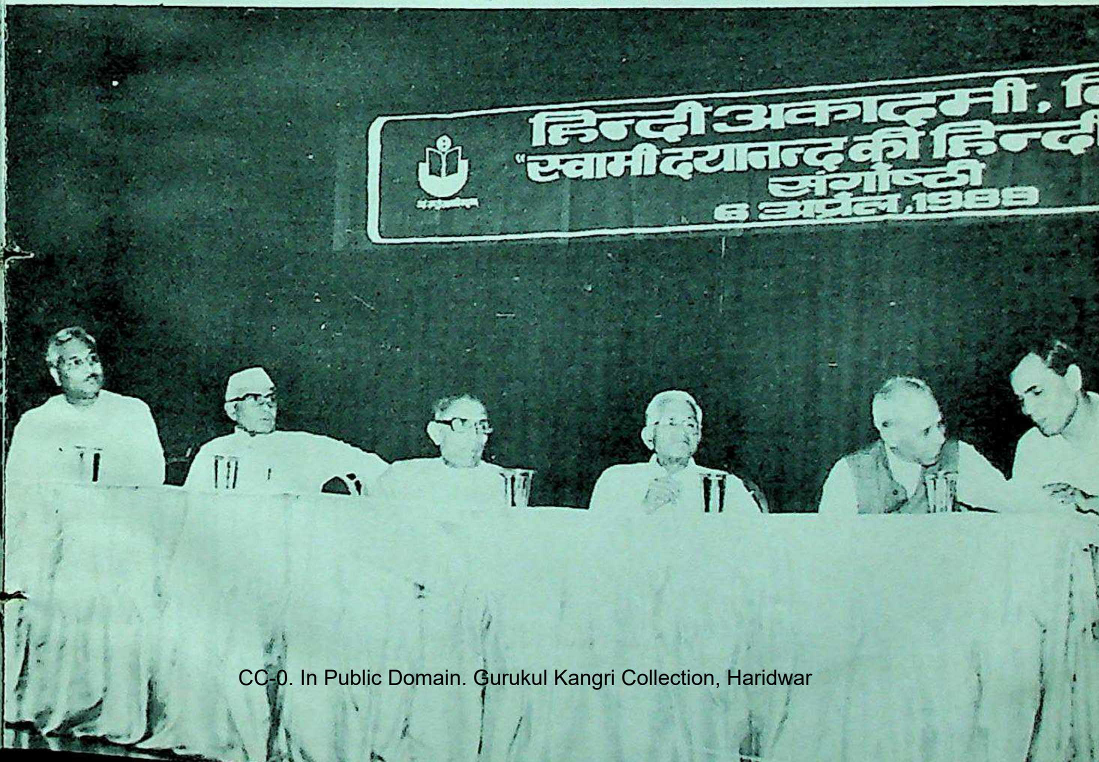

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

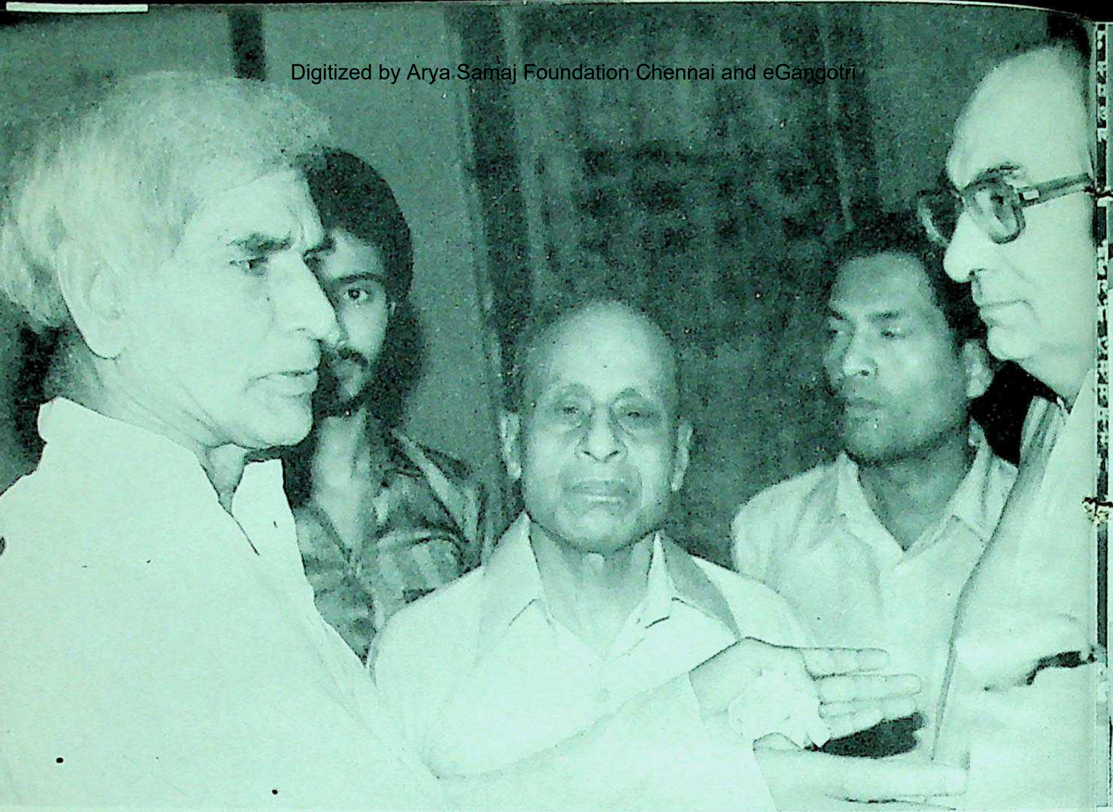

सन् १९८७ में, पंजाब से आए शरणार्थियों से मिलने के लिए आर्यसमाज अनारकली, मन्दिर मार्ग में बाबा आमटे के साथ

सन् १९८६ में वेद संस्थान, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली में ऋषि दयानन्द जन्म दिवस की अध्यक्षता करते हुए। बाएं स्वामी विद्यानन्द सरस्वती और दाएं डा० फतह सिंह

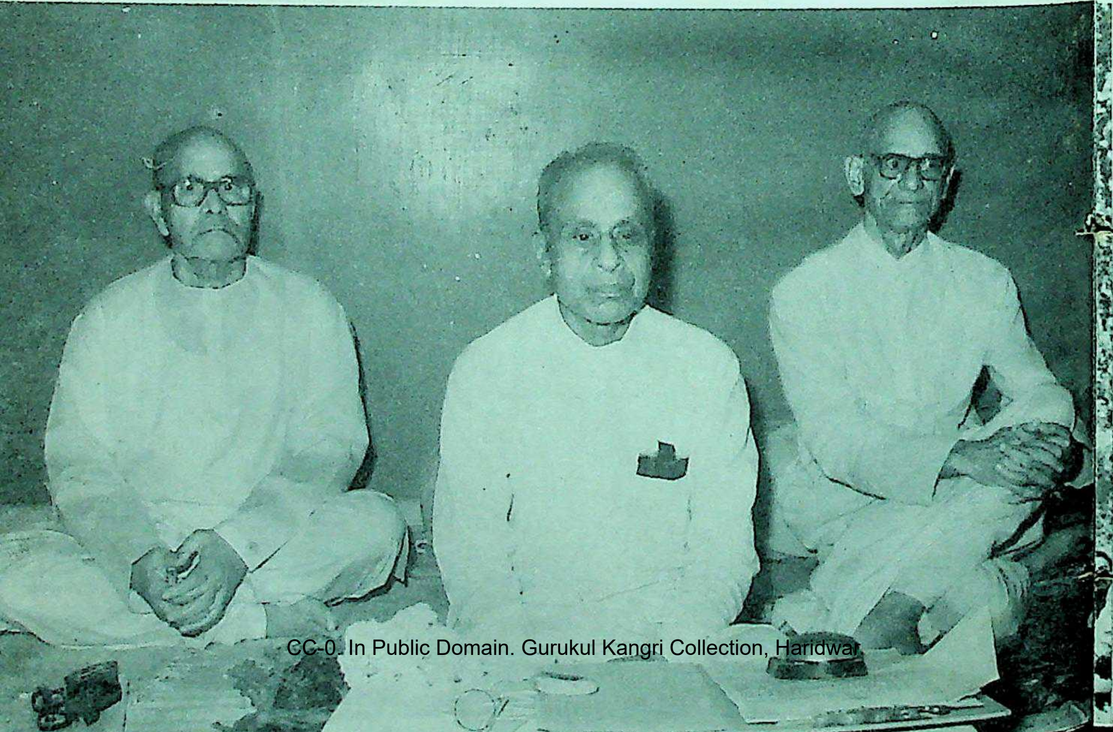

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९८६ में ऋषि निर्वाण दिवस पर व्याख्यान के लिए पधारने पर अजमेर रेलवे स्टेशन पर स्वागतार्थ उपस्थित— प्रो० शेरसिंह (पूर्व केन्द्रीय मंत्री), श्री धर्म सिंह कोठारी, प्रि० वासुदेव आर्य, श्री वीरेन्द्र कुमार आर्य, श्री रामसिंह शर्मा, तथा अन्य

दिल्ली आर्य केन्द्रीय युवक परिषद द्वारा २० नवम्बर, १९८८ को आर्यसमाज अनारकली मन्दिर मार्ग के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अभिनन्दन। साथ में परिषद के प्रधान श्री अनिल आर्य

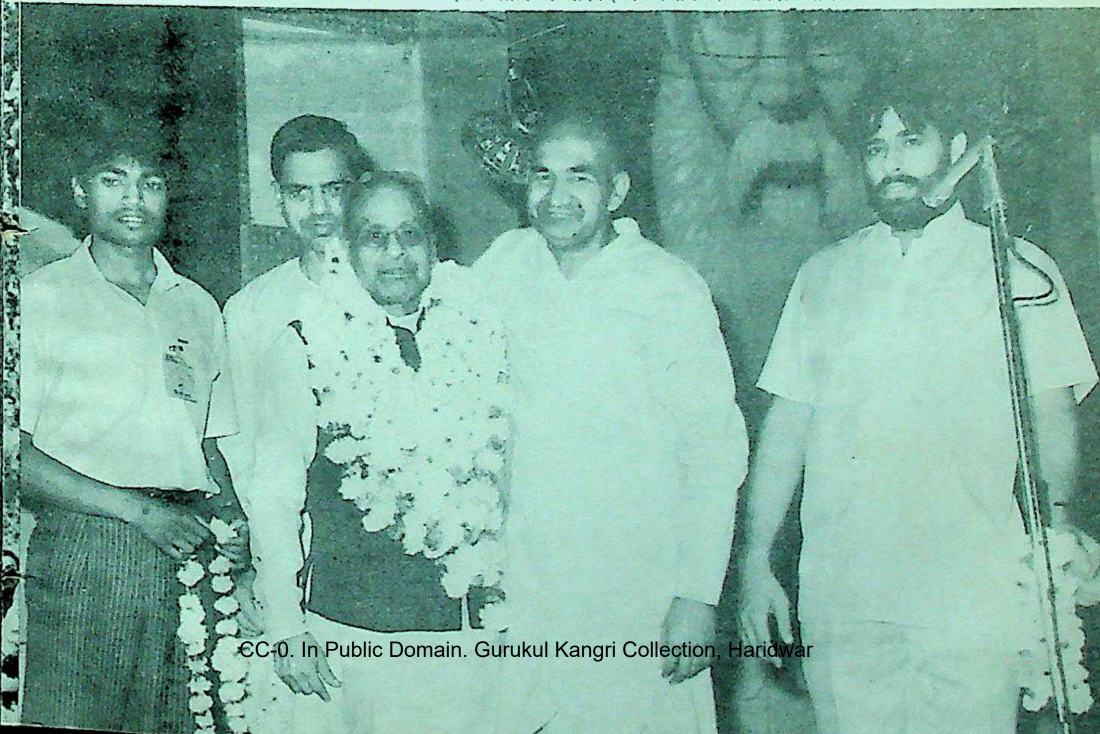

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली में 'समग्र विचार मंच' की ओर से पूर्वी अफ्रीका की यात्रा के अपने अनुभव सुनाते हुए १९७८ में। बाएं श्रीमती कमलारत्नम्, मंच के मंत्री, दाएं श्री शरदेन्दु, श्री सरलकुमार

सन् १९७३ में मारीशस की यात्रा के समय जलपोत में लिया गया चित्र। बाएं से शान्तिदेवी मलिक, सुरेश चन्द्र शास्त्री, क्षितीश वेदालंकार, जहाज के कप्तान, गुजरात के एक प्रसिद्ध आर्य नेता, फतहचंद शर्मा अराधक, क्षेम चन्द्र सुमन, रामलाल मलिक

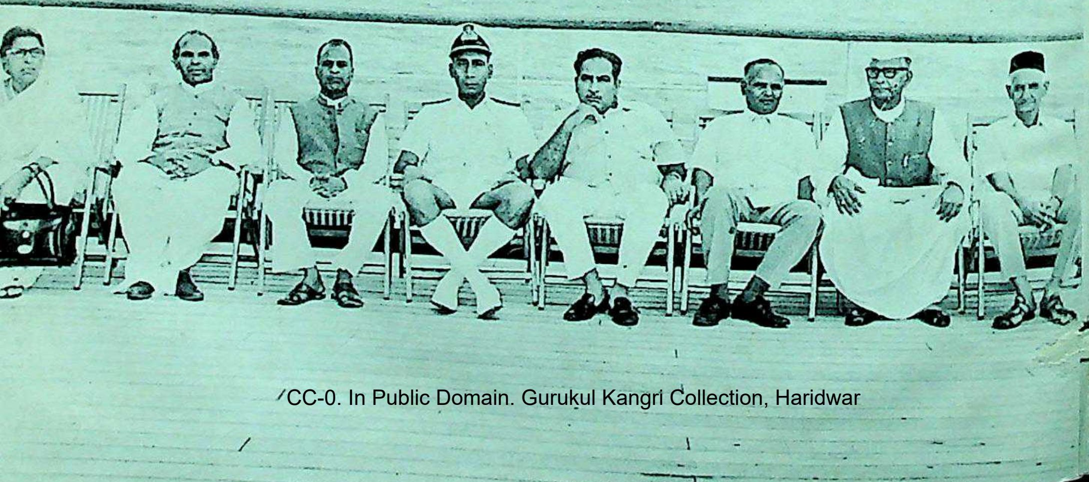

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

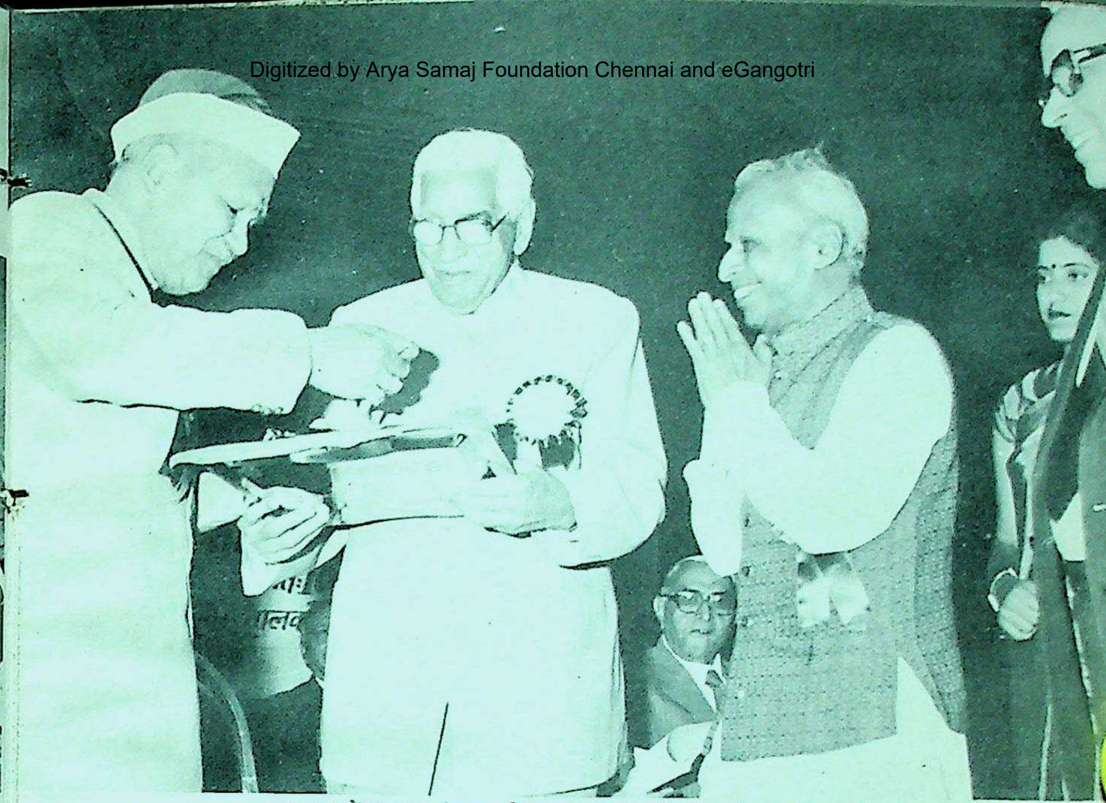

सन् ८८ में महात्मा हंसराज दिवस पर उपराष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा क्षितीश जी को पुरस्कृत करते हुए

सन् ८७ में केन्द्रीय वित्त मंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह 'हंसराज विशेषांक' का विमोचन करते हुए। साथ में क्षितीशजी और प्रो० वेदव्यासजी तथा श्री अनिल

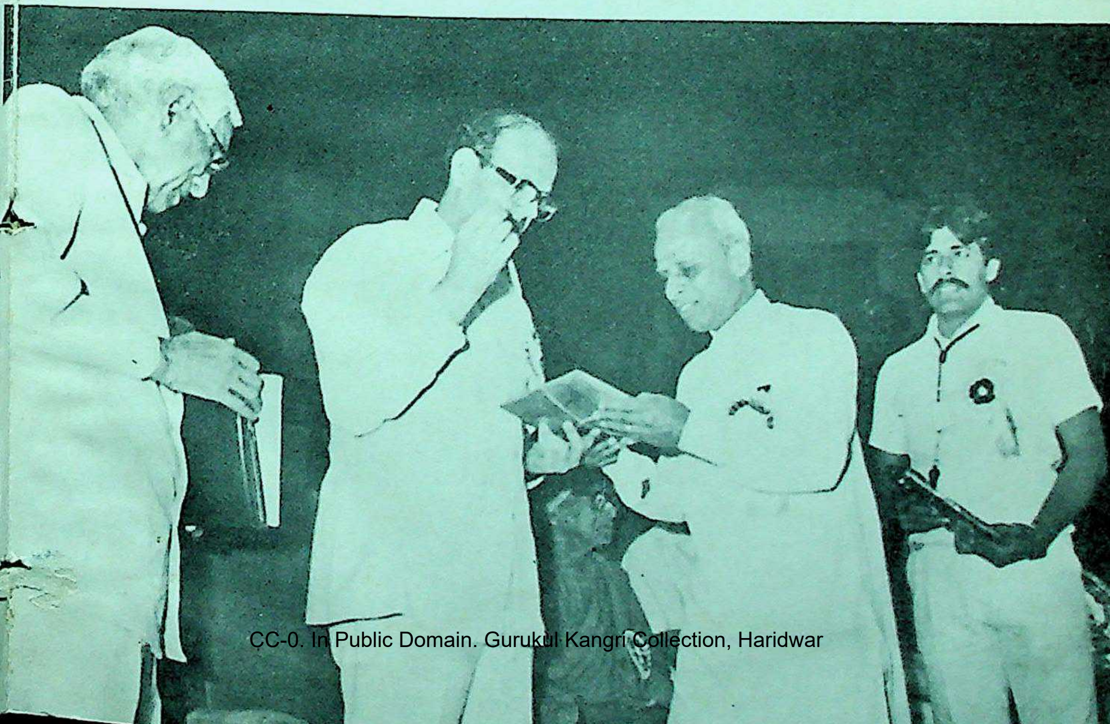

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

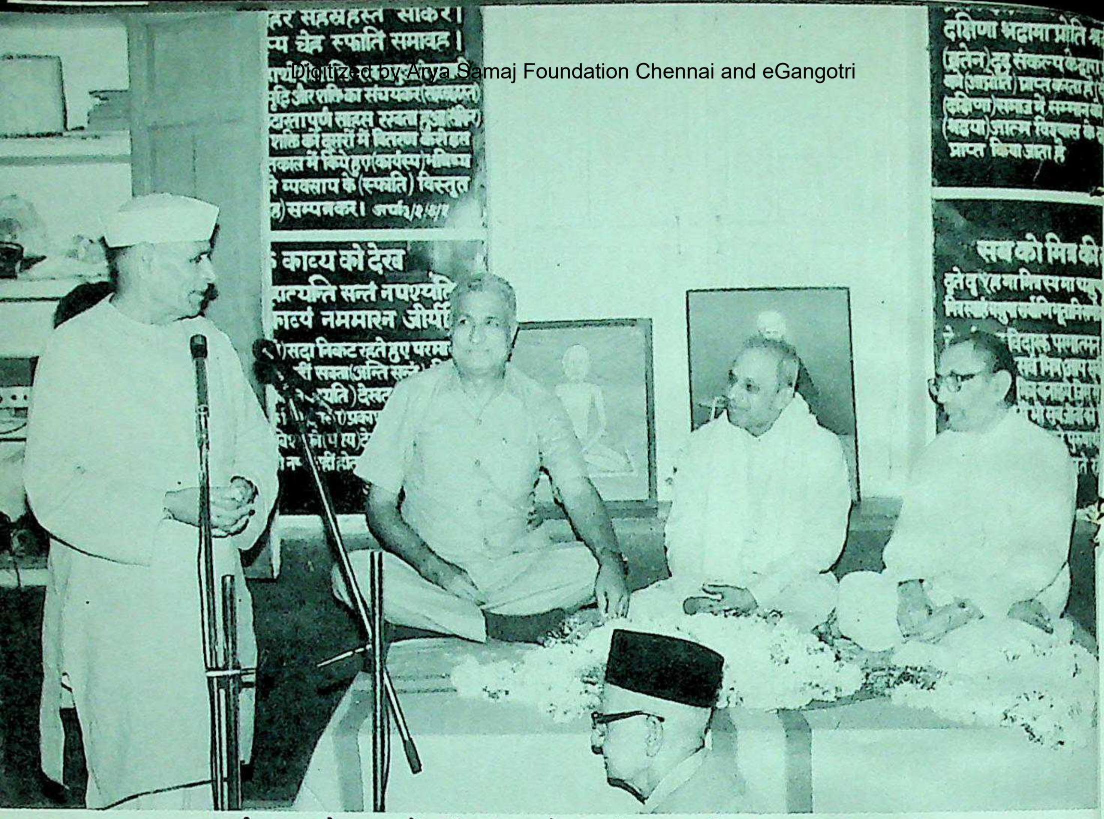

आर्यसमाज करोल बाग में अभिनन्दन करते हुए श्री रामचन्द्र विकल (संसद सदस्य)।
दाएं — श्री रामनाथ सहगल, बाएं— स्वामी आनन्दबोध सरस्वती, अध्यक्ष

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् को सम्बोधित करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

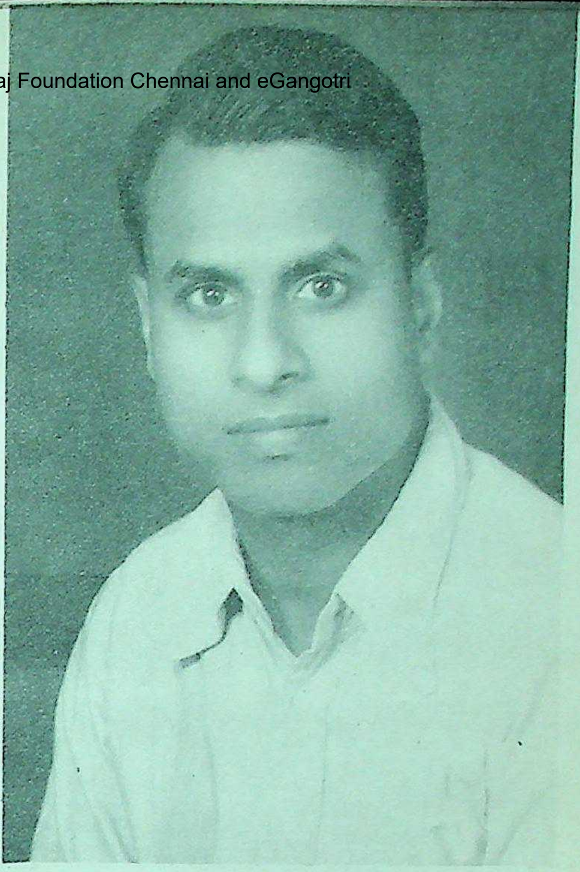

जब क्षितीश जी मेरठ कालेज
में एम० ए० के छात्र थे
— सन् ५२

'वेदार्थ कल्पद्रुम' के रचयिता, धुरंधर विद्वान आचार्य विशुद्धानन्द शास्त्री (बदायूं) के साथ

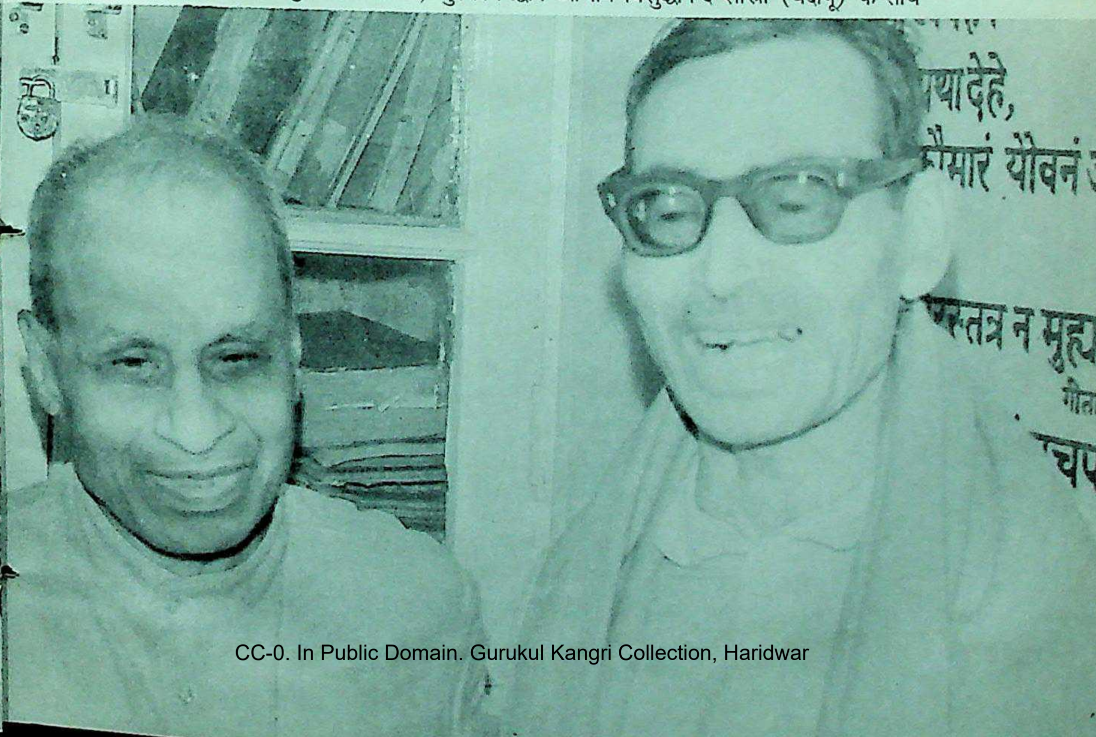

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

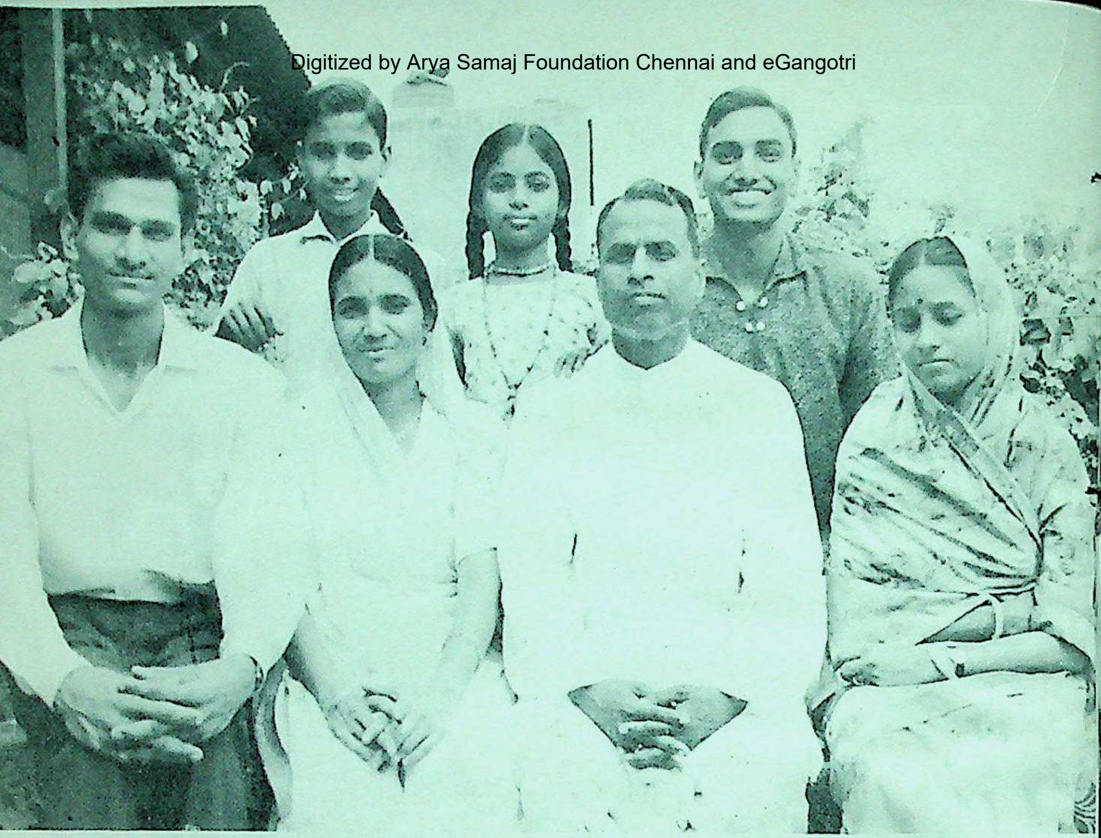

परिवार का सन् ६५ का चित्र— (बांएं से) डा० वेदव्रत, पवित्रा देवी, क्षितीश वेदालंकार, विश्ववारा। पीछे खड़े — शीलादित्य, स्नेहरश्मि, विनयादित्य

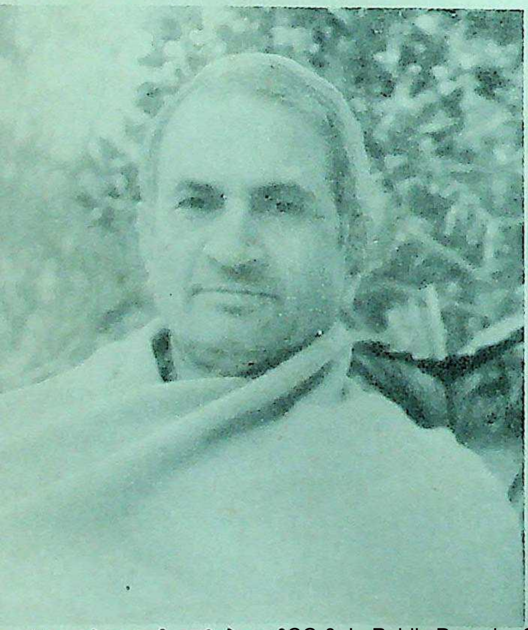

श्री वासुदेव आर्य, पत्नी के भाई। प्रसिद्ध आर्य विद्वान्, कन्या महाविद्यालय ब्यावर के प्राचार्य, अनेक सामाजिक आर्य संस्थाओं से सम्बद्ध

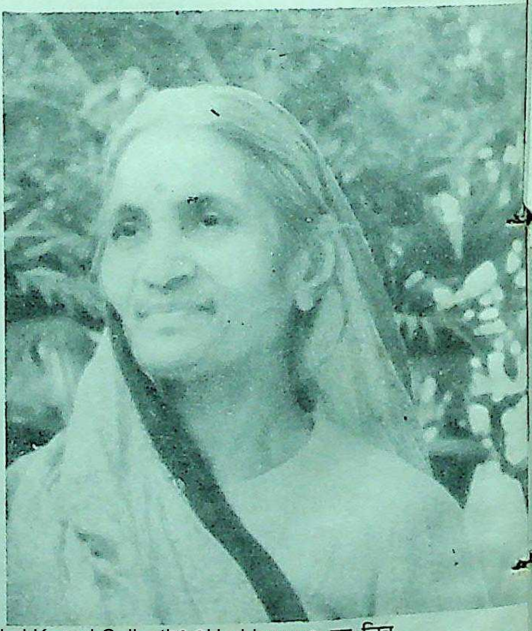

पवित्रादेवी—सहधर्मिणी। सन् १९८९ का चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० वेदव्रत (जामाता) और विश्ववारा (बड़ी पुत्री) सन् ६८ का चित्र। इस समय डा० वेदव्रत श्रद्धानन्द कालेज में संस्कृत विभागाध्यक्ष, और विश्ववारा वर्डट्रौनिक में व्यवस्थापक

कु० वरिम रेणु, दौहित्री (अब विमान परिचारिका)

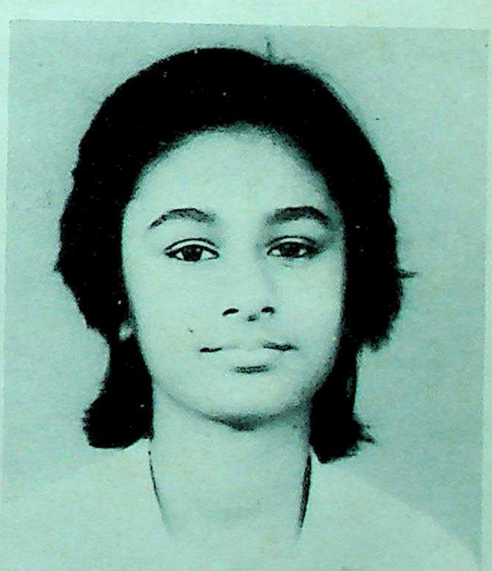

कु० अदिति, दौहित्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनयादित्य और अर्चना (बड़ा पुत्र और पुत्रवधू), सन् १९७६ का चित्र। इस समय विनयादित्य का फोटो टाइपसेटिंग और प्रिंटिंग का निजी कार्य एवं अर्चना बैंक आफ बड़ौदा में आफीसर

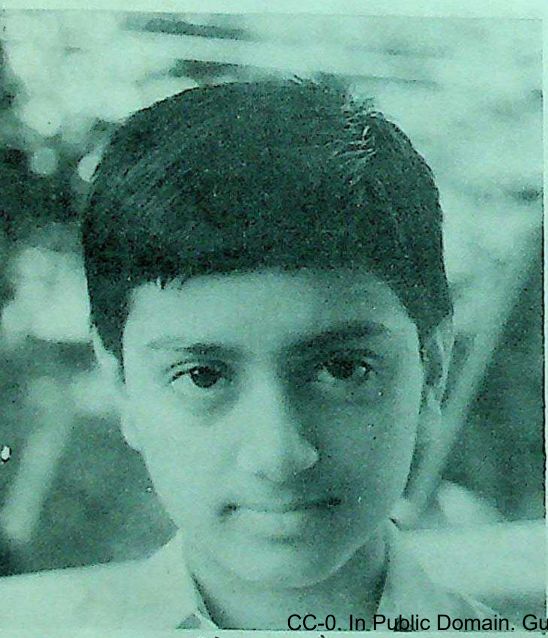

अनिमेष—बड़ा पौत्र

पारिजात—पौत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा॰ शीलादित्य और डा॰ अंजु (छोटा पुत्र और पुत्रवधू), १९८१ का चित्र। शीलादित्य आई आई टी दिल्ली में असिस्टेंट प्रोफेसर। अंजु ज्ञान भारती में वरिष्ठ अध्यापिका (इस समय दोनों अमरीका में)

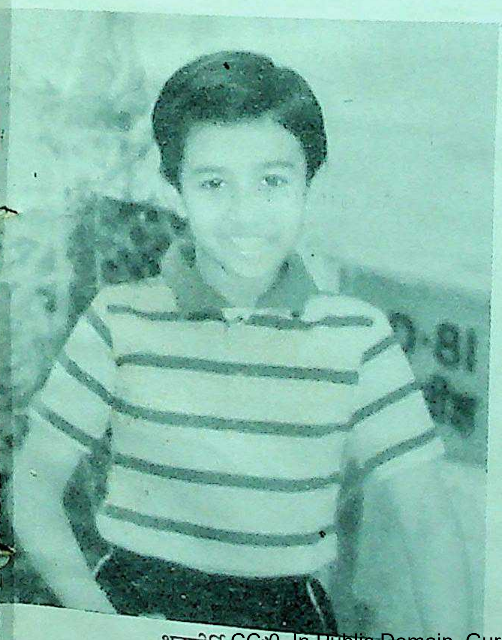

श्रुतकीर्ति—पौत्र

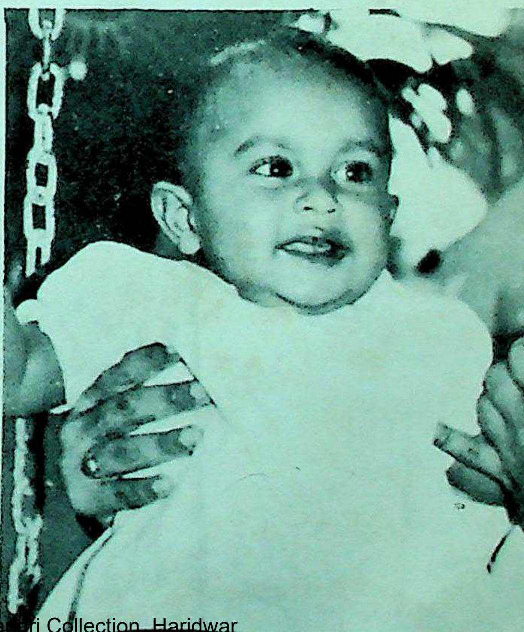

दिव्यकीर्ति—पौत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

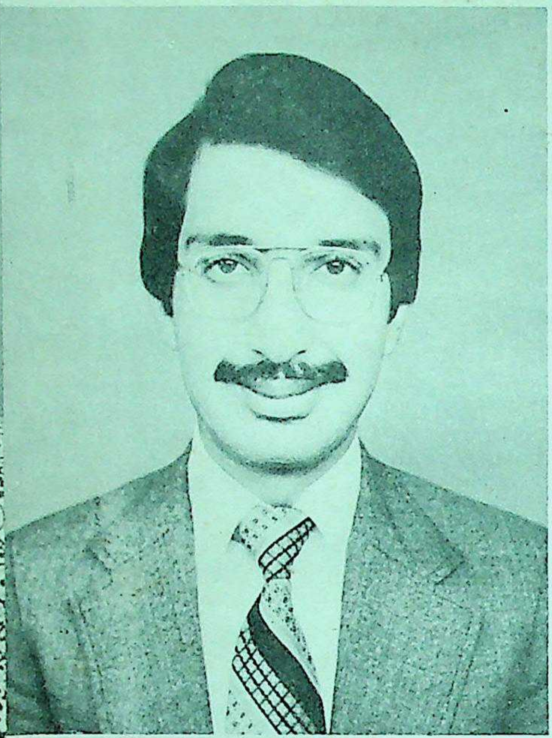

प्रहलाद चन्द्र (जामाता) — हिन्दुस्तान एंटिबायटिक्स लि॰ दिल्ली में ज़ोनल मैनेजर

स्नेहरश्मि (छोटी पुत्री) यूनाइटेड इंश्योरेंस, दिल्ली में एडमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर

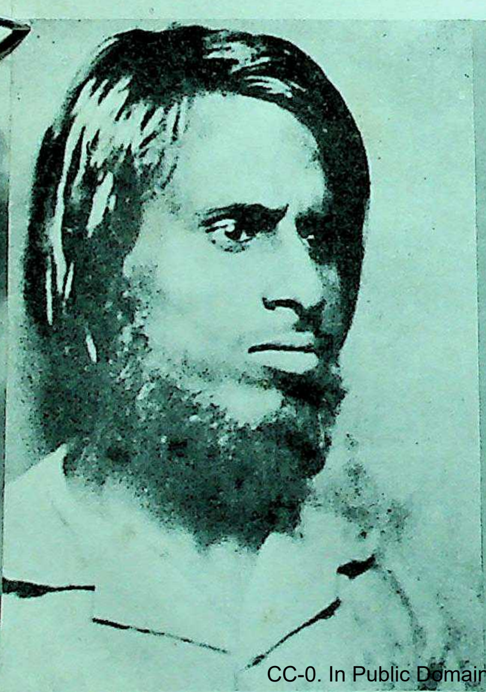

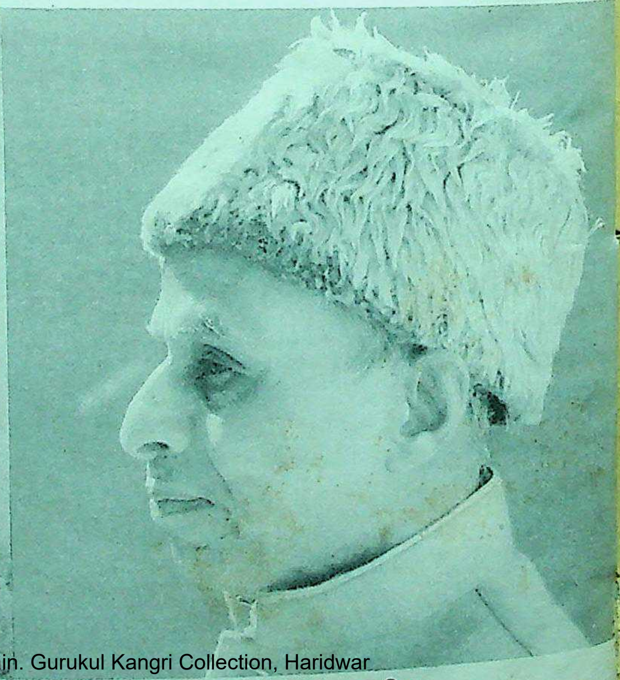

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तब और अब। सन् १९३९ में हैदराबाद निजाम की जेल से छूटने के बाद   सन् १९८९ का चित्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रकार के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी पत्रकारिता

—क्षितीश वेदालंकार

सक्रिय रूप से मेरी पत्रकारिता सन् 1947 में देश के विभाजन के बाद प्रारम्भ हुई। परन्तु उसका बीज बहुत पहले बचपन में पड़ चुका था।

सम्भवत: 12 वर्ष की आयु रही होगी। गुरुकुल कुरुक्षेत्र में पांचवीं कक्षा में प्रथम आने पर मुझे 5 रु. पुरस्कार मिला। उस समय यही पुरस्कार बहुत था। इस पैसे का क्या करता। गांधी का रंग चढ़ना शुरू हो चुका था। उस 5 रु. से उस समय महात्मा गांधी का 'नवजीवन' नामक साप्ताहिक पत्र मैंने मंगा लिया। उसका वार्षिक मूल्य 5 रु. ही था। उसके लेखों को समझने की तमीज़ तो तब क्या होती। हां फाइल को मैं खूब संभाल कर रखता। उसका उपयोग कभी कभी हमारे गुरुजन ही करते।

उन्हीं दिनों एक हस्तलिखित पत्रिका निकालने की उमंग उठी। एक सहपाठी भी साथी बना। सबसे पहले समस्या उठी नाम की। पत्रिका का नामकरण बहुत सोच-समझकर हमने रखा— 'मनोज।' हमारा इस नामकरण के पीछे उद्देश्य यह था कि हमारे मन में जो आएगा, सो लिखेंगे—मनोज—अर्थात् मन में उत्पन्न हुए विचार, कविता, कहानी, चुटकुले आदि।

मेहनत से पत्रिका निकाली। उसमें अपने बनाए हुए छोटे छोटे चुटकुले और कविताएं— यदि उन्हें कविता कहा जा सके, कुछ हिन्दी और संस्कृत की सूक्तियां, तथा कुछ इधर-उधर की अपनी मन मर्जी की सामग्री समेटकर, सामान्य कापी के आकार की आठ-दस पृष्ठों की पत्रिका का जब पहला अंक तैयार हो गया, तो प्रसन्नता से उछलते हुए और यह सोचकर कि खूब शाबाशी मिलेगी, वह अंक अपने आश्रमाध्यक्ष को भेंट किया। वे तो उसका नाम देखते हुए आग-बबूला हो गए। डांटते हुए बोले—'यह नाम किसने रखा है?' "जी, हमने ही रखा है।" उसी तैश में वे बोले— 'पत्रिका निकालने चले हैं, कुछ पता भी है, कि 'मनोज' का क्या अर्थ होता है?' मैंने सहज भाव से कहा— 'जी, जो मन में उत्पन्न हो उसे मनोज कहते हैं। हमने अपने मन से बनाए चुटकुले और कविताएं ही इसमें रखी हैं। हमने तो अपनी दृष्टि से बड़ा सार्थक नाम रखा है।' उन्होंने पत्रिका को फेंकते हुए कहा— 'मनोज का अर्थ होता है—कामदेव। पता कुछ है नहीं, पत्रिका निकालने चले हैं। खबरदार! जो इस नाम से पत्रिका निकाली।' हम 'कामदेव' का अर्थ भी तब क्या समझते। पर इतना जान गए कि यह कोई अश्लील शब्द है जिसका प्रयोग गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के लिए वर्जित है। 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः।' बस, 'मनोज' की अकाल मृत्यु हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके कोई एक वर्ष बाद, गुरुकुल के अध्यापकों की मन्त्रणा से ही एक हस्तलिखित पत्रिका निकालने की योजना बनी, जिसका नाम रखा गया— 'सदाचार।' उससे हमारे जैसे छोटे ब्रह्मचारियों को अलग ही रखा गया। सातवीं और आठवीं कक्षा के बड़े ब्रह्मचारियों को उसका भार सौंपा गया। मुलतानी मिट्टी का खांचा तैयार करके उसे छापने का प्रबन्ध किया गया। जामनी स्याही से सुलेख में फुल स्केप के कागज पर लेख लिखे जाते और गीली मुलतानी मिट्टी के प्रेस में किसी डण्डे से दबाकर उसकी आठ-दस प्रतियां तैयार की जातीं। कितना सरंजाम और गहमागहमी होती। छोटे ब्रह्मचारियों को उससे दूर रखे जाने पर भी न जाने कैसे मेरी एक छोटी सी कहानी, शायद इसलिए कि कहानी का शीर्षक भी 'सदाचार' था, उस पत्रिका में स्थान पा गई। पर उस पत्रिका के भी दो-तीन से अधिक अंक नहीं निकल सके। बाल-मृत्यु तो इस देश का पुराना रोग है न !

फिर सीधे याद आता है— गुरुकुल कांगड़ी के महाविद्यालय में प्रवेश का। तब हम 'छोटे ब्रह्मचारी' नहीं रहे थे। महाविद्यालय के छात्र थे। 11वीं कक्षा से 14वीं कक्षा तक महाविद्यालय प्रवेश का यह काल साहित्यिक रुचि के विकास और परिष्कार का अच्छा अवसर प्रदान करता था। उन दिनों एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकलती थी— 'राजहंस'। उसमें विद्यालय के छात्र, तथा कभी-कभी गुरुजन भी, लिखा करते थे। प्रायः गुरुकुल से स्नातक बनने के बाद जिन विद्यालंकारों ने साहित्यिक जगत् और पत्रकारिता के क्षेत्र में नाम कमाया, उनमें से अधिकांश की प्रशिक्षण-भूमि यही 'राजहंस' रही। उसमें किसी छात्र का लेख छपना स्वयं अपने साथियों में गौरव का विषय होता— उस लेख के गुण-दोष की चर्चा होती, इससे परिष्कार का सुयोग भी मिलता। कभी-कभी उस पत्रिका में मेरे लेख भी छपते जिससे त्रयोदश और चतुर्दश कक्षा के ब्रह्मचारियों तक भी मेरा नाम अपरिचित नहीं रहा। बाद में, मैं जब स्वयं 14वीं कक्षा में पहुंचा, तो 'राजहंस' में 'वीणा की झंकार' (दैनिक अर्जुन में निकलने वाला उन दिनों का अत्यन्त लोकप्रिय स्तम्भ) की नकल पर 'वितको की झनझन' के नाम से एक स्तम्भ नियमित रूप से कुछ मास तक लिखता रहा— जिसमें प्रायः गुरुकुल से सम्बद्ध सामयिक घटनाओं पर कुछ व्यंग्य-भरी चुटकी ली जाती। उसकी मिश्रित प्रतिक्रिया होती।

जब 'गुरुकुल' नाम से साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ, तब मुझे याद है कि 12 वीं कक्षा में रहते हुए मैंने 'महात्मा बुद्ध' पर एक लेख लिखा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी ओर गुरुकुल के आचार्य जी का भी ध्यान गया और उन्होंने पूछा कि यह ब्रह्मचारी कौन है । फिर मुझे बुलाकर कहा— 'तुम्हें इस दिशा में आगे बढ़नेका प्रयत्न करना चाहिए ।' 13वीं और 14वीं कक्षा में तो फिर कभी-कभी 'गुरुकुल' पत्र में मेरे यात्रा-सम्बन्धी लेख 'चक्र-चरण' के नाम से निकलते रहे ।

हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह में भाग लेकर निजाम की जेल से छूटने के बाद, गुरुकुल का स्नातक होने पर पत्रकारिता के नाम पर मेरे पास यही जमा-पूंजी थी, जिसे 'हल्दी की गांठ' कह सकते हैं। [स्नातक बनने की कथा भी विचित्र है । जब स्नातक-परीक्षा ऐन सिर पर थी और मेरा सारा जीवन दांव पर था, तभी मैं सब कुछ छोड़छाड़ कर बलि-पन्थ का पथिक बन बैठा । इसमें निहित खतरे को नहीं समझता था, यह बात नहीं । तो क्या केवल यश पाने के लिए ? नहीं, वह बात भी नहीं । हैदराबाद में सत्याग्रह का बिगुल बजा । गुरुकुल में सूचना आई । सन् 1939 के जनवरी मास के अन्त की बात है । फरवरी में स्नातक-परीक्षा होने वाली थी । मैं अपने लिये नहीं, गुरुकुल के यश के लिए— कि पहला जत्था गुरुकुल कांगड़ी का होगा— स्नातक-परीक्षा को छोड़कर उससे भी बहुत बड़ी और कड़ी परीक्षा के लिए तैयार हो गया । संगी-साथियों ने, गुरुजनों ने,माता-पिता ने–– सबने रोकना चाहा, पर जवानी का जोश और देश के लिए मर-मिटने की तमन्ना । कोई रुकावट काम नहीं आई । और गुरुकुल का ही नहीं, आर्य सत्याग्रह का पहला जत्था निजाम की जेल में पहुंच गया । यज्ञ प्रारम्भ हुआ, तो आहुतियां भी पड़नी प्रारम्भ हो गईं । इसी बीच स्नातक-परीक्षा हो गई, गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर दीक्षान्त समारोह भी हो गया, और मुझे गुरुकुल के शिक्षा-पटल ने मेरी अनुपस्थिति में ही 'स्नातक' घोषित कर दिया और वेदालंकार की उपाधि मेरे घर भेज दी । शायद यह पहला ही अवसर होगा जब किसी को बिना परीक्षा दिए स्नातक घोषित किया गया हो । शिक्षा-पटल की राय थी कि इसने तो प्रैक्टिकल परीक्षा देकर गुरुकुल की शिक्षा को सार्थक कर दिया ।

1939 के अगस्त के उत्तरार्ध में जेल से छूटकर आया, तब बेकार था । कुछ दिन गुरुकुल में रह कर 'आर्यसत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति' नामक पुस्तक लिखी— जो बाद में परिवर्धित रूप 'निजाम की जेल में' नाम से प्रकाशित हुई । उसके बाद कुछ दिन मेरठ में टीकरी ग्राम के पास पं. बुद्धदेव विद्यालंकार द्वारा स्थापित प्रभात आश्रम में चला गया । आजीविका की चिन्ता थी ही । गुरुकुल का स्नातक होते ही मन ही मन एक निश्चय कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया था— अब अपने पिता से एक पैसा नहीं लूंगा। उनका काम मुझे पढ़ा-लिखाकर स्नातक बना देने तक सीमित था। सब आगे चाहे मुझे कुछ भी करना पड़े, पर अपने ही पसीने की कमाई खाऊंगा।

प्रभात आश्रम में ही गुरुकुल कांगड़ी केआचार्य श्री स्वामी अभयदेव जी का— जिनके स्नेहभाजन होने का गर्व मुझे आज भी है, पत्र आया। लिखा था— "सन् 41 की जनगणना के लिए सार्वदेशिक सभा को कुछ उपदेशकों की जरूरत है। मैंने तुम्हारा नाम भेज दिया है। तुम अस्वीकार मत करना।" मैंने उन्हें लम्बा पत्र लिखा— "उपदेशकी में मेरी रुचि नहीं है। मुझे तो लिखने-पढ़ने में आनन्द आता है। यदि कोई ऐसा काम हो, या कुछ पत्र-कारिता-सम्बन्धी, तो आप मेरी सहायता करें।" उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया— "तुम्हारी भावना और प्रवृत्ति मैं समझता हूं। फिर भी मेरी सलाह है कि तुम यह उपदेशकी का काम स्वीकार कर लो। एक वर्ष की ही तो बात है। यह तुम्हारे जीवन में काम आएगा। यदि इसे अपने आचार्य का आदेश मान कर भी पालन करोगे, तो तुम्हारे हित में होगा।"

यों न चाहते हुए भी उपदेशकी मेरे पल्ले पड़ गई। सार्वदेशिक सभा ने मुझे जनगणना सम्बन्धी कार्य के लिए चालीस रु. मासिक वेतन पर मध्यप्रदेश और विदर्भ में काम करने के लिए नागपुर भेज दिया, क्योंकि प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख्य कार्यालय उन दिनों वहीं था।

लगते हाथ पाठकों को यह भी बताता चलूं कि उस एक वर्ष में मैंने जिस तूफानी गति से सारे प्रान्त में (विदर्भ उन दिनों मध्यप्रदेश का ही भाग था) घूम-घूम प्रचार किया उसका परिणाम यह हुआ कि अनुपात की दृष्टि से मध्यप्रदेश की जनता ने अपने आपको 'आर्य' लिखाने में भारत भर के अन्य सभी प्रान्तों को पीछे छोड़ दिया। सरकारी अधिकारी भी इससे चकित रह गए। उन्हें आश्चर्य था कि मध्यप्रदेश में आर्यसमाज का इतना प्रचार न होते हुए भी उसने उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों का भी, जिनमें आर्यसमाज का अपेक्षाकृत प्रचार बहुत अधिक है, रिकार्ड कैसे तोड़ दिया। प्रान्तीय असेम्बली में भी यह प्रश्न उठा। तब श्री घनश्यामसिंह गुप्त असेम्बली के स्पीकर थे। उन्होंने उत्तर दिया— 'आर्यसमाजियों ने इस दिशा में कार्य किया है।' श्री घनश्याम सिंह गुप्त तब तक मुझे नहीं जानते थे। उसके बाद उन्होंने एक बार दुर्ग में अपने घर बुलाकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैं कृत कृत्य हुआ।

सन् 41 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वार्षिक अधिवेशन का दृश्य देखने— जिसकी चर्चा विद्यार्थी-जीवन में खूब सुना करते थे— लाहौर गया। उस बार सभा के पुराने सब अधिकारी बदल गए और चुनाव में नए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारी जो बने, वे सब गुरुकुल के स्नातक थे। पं. बुद्धदेव विद्यालंकार प्रधान बने, पं. भीमसेन विद्यालंकार मंत्री, और पं. यशपाल सिद्धान्तालंकार वेद प्रचाराधिष्ठाता। तब तक उपदेशक के रूप में मैं सर्वथा अपरिचित और नौसिखिया नहीं रहा था। मध्यप्रदेश का काम जन-गणना के बाद समाप्त हो चुका था। मैं खाली था। प्रस्ताव आया। मैं तैयार हो गया और वहां से सीधा ही प्रोग्राम पर भेज दिया गया।

फिर इस उपदेशकी ने देश-विभाजन तक पीछा नहीं छोड़ा। पीछा तो अब भी नहीं छोड़ा। पर आचार्य अभयदेव जी का यह कथन अवश्य सत्य सिद्ध हुआ— 'मेरे कहने से एक वर्ष के लिए यह काम कर लो, तुम्हारे जीवन में काम आएगा।' यह उपदेशकी मेरे जीवन में कितनी ही काम आई हो, और उससे मुझे कितना ही यश मिला हो, पर पत्रकारिता में प्रवेश के लिए यह उपदेशकी ही बाधक बन गई।

देश-विभाजन के दुर्योग के पश्चात् कुछ दिन तक पंजाब से आने वाले हजारों शरणार्थियों का जो पहला कैम्प आर्यसमाज दीवानहाल के सामने वाले मैदान में (जहां इस समय लाजपतराय मार्केट बना है) लगा था, वहां काम करता रहा। पंजाब उजड़ चुका था। मैं भी। हाथ खाली, जेब खाली। उन्हीं दिनों 'नवभारत टाइम्स' निकलने की तैयारी हुई। उसके जो सम्पादक मनोनीत हुए, वे गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक थे। मुझसे भी अपरिचित नहीं थे। पर उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि कोई उपदेशक कभी अच्छा पत्रकार नहीं बन सकता। उन्होंने मुझे हतोत्साहित किया। मुझे आत्मग्लानि भी कम नहीं हुई। तब मैं 1947 के अक्तूबर में 'अर्जुन' के सर्वेसर्वा श्री पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति से मिला। उन दिनों 'अर्जुन' की धाक थी। उसी धाक के कारण मैं मन में संकोच कर रहा था कि मुझे वहां कौन पूछेगा। पर इन्द्र जी मेरे काम-धाम से परिचित थे। उन्होंने तुरन्त कहा— 'कल से आ जाओ।'

'अर्जुन' में कई अग्रज स्नातक-बन्धु काम कर रहे थे। उन्होंने स्नेह दिया। सक्रिय पत्रकारिता का ककहरा सिखाया। वहां जैसा आत्मानुशासन था, स्टाफ की कमी और साधनों के अभाव में वहां जितना परिश्रम करना पड़ता था, उससे किसी भी पत्रकार में प्रशिक्षण-वृद्धि के साथ आत्मविश्वास की भी वृद्धि होती जाती। उस समय हिन्दी की कोई संवाद समिति थी नहीं। 'अर्जुन' में पी. टी. आई. के टेलिप्रिंटर की मशीन भी नहीं थी। इसलिए हर घण्टे के बाद चपरासी पी. टी. आई. के दफ्तर से तारों का बण्डल लाता और उप सम्पादक लोग अंग्रेजी के उन तारों में से अपने मतलब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समाचार छांट कर उनका हिन्दी में अनुवाद करने में जुट जाते। उप सम्पादकों का मुख्य काम अंग्रेजी से हिन्दी में समाचारों का अनुवाद करना ही होता था। इसके लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का अच्छा ज्ञान आवश्यक था। अगर इनमें से किसी भी भाषा के ज्ञान में कमी होती, तो वह तुरन्त पकड़ में आ जाती। अगले दिन पत्र में छपने पर वह छिप नहीं सकती थी। इसलिए हरेक को काफी सतर्क रहना पड़ता था।

'अर्जुन' में बारी बारी से एक एक महीने की रात की ड्यूटी आती। वह धैर्य, परिश्रम और कुशलता की परीक्षा की घड़ी होती। रात की ड्यूटी पर केवल एक ही उप सम्पादक रहता। वही प्रथम पृष्ठ पर जाने वाले सब समाचारों का अनुवाद करता। महत्त्व के अनुसार उनका क्रम निर्धारित करता। सारे प्रूफ पढ़ता। पेज का डिसप्ले तैयार करता और फिर फोरमैन के पास खड़े होकर पेज बनवाता। करते करते रात के तीन बज जाते तब छुट्टी होती। सवेरे चार बजे नये बाजार में (जो अब श्रद्धानन्द बाजार कहलाता है) 'अर्जुन' के बाहर हॉकरों की भीड़ लग जाती। उस समय 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (अंग्रेजी), 'तेज' (उर्दू) और 'अर्जुन' (हिन्दी)—ये तीनों समाचार पत्र नये बाजार से ही निकलते थे और तीनों के दफ्तर और प्रेस साथ साथ ही थे। इसलिये सारे हॉकर भी वहीं इकठ्ठे होते थे। कहने की जरूरत नहीं कि आम जनता में उन दिनों 'अर्जुन' की जितनी पूछ थी, उतनी किसी अन्य समाचार पत्र की नहीं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् धीरे धीरे देश के हालात में जैसे जैसे परिवर्तन आते गए, वैसे ही पत्रों और पत्रकारों की हालत में भी। पूंजीपतियों का भी ध्यान पत्रों की ओर गया। राजधानी में अपना अपना राजनीतिक वर्चस्व कायम करने के लिए पूंजीपतियों में होड़ लग गई। जो प्रसिद्ध उद्योगपति थे, वे पत्र-पति भी बन गए। बिड़ला. टाटा, डालमिया, गोयनका—जैसे उद्योगपति भी इस क्षेत्र में कूद पड़े। पूंजी का खेल प्रारम्भ हो गया। जो पत्रकारिता पहले देश सेवा का माध्यम थी, वह धीरे-धीरे स्वार्थ-साधन का माध्यम बनने लगी। जो पहले मिशन था, अब वह व्यवसाय बनने लगा। पूंजीपतियों के जहां विभिन्न क्षेत्रों में बड़े-बड़े उद्योग थे, वहां उन्होंने पत्रकारिता को भी एक उद्योग की तरह चलाना शुरू किया। पूंजीपतियों के पास पैसे की कमी नहीं थी। साधनों की भी नहीं। धीरे धीरे इस पूंजी के खेल के सामने साधन-हीन और पूंजीहीन पत्र छीजने लगे। वे कुपोषण के शिकार हो गए। मिशनरी पत्रकारों की नस्ल खत्म होने लगी। 'भूखे भजन न होहिं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाला, यह लो अपनी कण्ठी माला।' अधिकांश पत्रकार कण्ठीमाला छोड़ छोड़ कर भूख से बचने के लिए पूंजीपतियों के समाचार-पत्रों की ओर भागने लगे।

उन्हीं दिनों की बात है। 'अर्जुन' की नई रोटरी मशीन आई थी। अब तक वह बिना रोटरी के सामान्य मशीन पर ही छपता था। रोटरी मशीन के लिए 'पावर' का नया कनेक्शन जरूरी था। आजादी के बाद सरकारी कर्मचारियों के मुंह में रिश्वत का खून लगना शुरू हो चुका था। बिना रिश्वत के कनेक्शन मिल नहीं रहा था। इन्द्र विद्यावाचस्पति जैसा स्वाभिमानी और 'न दैन्यं न पलायनम्' का उपासक पत्रकार रिश्वत दे नहीं सकता था। उन दिनों श्री नरहरि विष्णु गाडगिल ऊर्जा मंत्री थे। इन्द्र जी के परिचित थे और प्रशंसक भी। कई हितैषियों ने पं. इन्द्र जी को सलाह दी कि आप ऊर्जा मंत्री से मिलकर समस्या का समाधान कर लीजिए। पर पं. इन्द्र जी का आत्माभिमान इसके लिए भी तैयार नहीं हुआ। परिणाम? रोटरी मशीन महीनों बेकार गोदाम में पड़ी रही। हजारों रु. का 'डेमरेज' लग गया। 'अर्जुन' वह पैसा कहां से चुकाता। एक आदर्श पत्रकार को अपने आदर्शों की कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी— इसकी आज कौन कल्पना करेगा? गणेशशंकर विद्यार्थी का 'प्रताप', कृष्णदत्त पालीवाल का 'सैनिक', मक्खनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर'— ऐसे ही और अनेक मनस्वी पत्रकारों के पत्र इसी प्रकार की परिस्थितियों के शिकार होकर अस्तायमान होते जा रहे थे और पूंजीपतियों के पत्र नित नई आभा से उदित होते जा रहे थे।

'अर्जुन' के बिकने की नौबत आ गई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वालों ने उसे खरीद लिया। इससे पहले उन्होंने दैनिक 'भारतवर्ष' निकाला था। दरियागंज में जिस स्थान से मुस्लिम लीग का अंग्रेजी अखबार 'डॉन' निकलता था, उसी स्थान से 'भारतवर्ष' निकला पर पूंजीपतियों के अखबारों से होड़ में वह पिछड़ गया। तभी 'अर्जुन' की तरफ उनका ध्यान गया। खरीद तो लिया, पर उसे चलाने की ओर संघ वालों ने कभी ईमानदारी से ध्यान नहीं दिया। कुछ दिन तक 'आर्गनाइजर' भी वहीं से निकलता रहा। पर कठिनाइयों पर विजय न पाई जा सकी।

अपनी पत्रकारिता की बात करते करते तत्कालीन पत्रकारिता के इस प्रसंग को कदाचित् कुछ पाठक अप्रासंगिक समझें, पर शायद घटनाचक्र की इसके बिना संगति न लग सके। अधिकांश साथी 'अर्जुन' छोड़कर जा चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। जिसके सींग जहां समाये। मैं तब भी 'अर्जुन' में ही था। उन्हीं दिनों श्री अटलबिहारी वाजपेयी, श्री विनयकुमार मलहोत्रा तथा अन्य अनेक प्रसिद्ध संघ प्रचारकों के साथ भी काम किया। उससे पहले श्री महावीर अधिकारी, श्री हरिदत्त शर्मा (अब दिवंगत) आदि बाद में प्रसिद्ध हुए अनेक पत्रकार भी कुछ दिन तक 'अर्जुन' में काम करते रहे, परन्तु फल-हीन वृक्ष पर पंछी कब तक जमते। सब छोड़ छोड़कर अपने अलग घोंसले बनाने लगे। उन दिनों 'अर्जुन' में कभी कभी कभी ऐसे अवसर भी आए, जब महीने के अन्त में वेतन के बजाय पत्रकारों को 'अर्जुन' के विनिमय में आने वाले अखबारों की 5-10 किलो रद्दी पकड़ा दी जाती और कहा जाता कि इसे बेच कर अपना काम चलाइए। कभी कभी कुछ अन्य पत्रों में लिख कर भी थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक जुटा लेता। पर एक बार स्थिति विषम हो गई। तब उससे छुटकारा दिलाने में मेरी पत्नी ने सहयोग दिया। उसने एक स्कूल में संस्कृत की अध्यापिका का काम शुरू कर दिया। उन्हीं दिनों गुरुकुल की स्नातक की उपाधि को भारत सरकार की ओर से बी. ए. के बराबर मान्यता का दर्जा मिल गया तो कुछ हितैषियों ने सलाह दी कि अब तुम सीधा एम. ए. में बैठ सकते हो। एम. ए. करने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में अवसर अच्छा मिल सकता है।

'अर्जुन' में मैं पांच वर्ष तक रहा। वहां समाचार सम्पादक भी रहा और कुछ दिन तक 'साप्ताहिक अर्जुन' में सम्पादक के रूप में भी मेरा नाम जाता रहा। तभी कंचन-जंघा शिखर के निकट पण्डिम शिखर पर प्रथम भारतीय पर्वतारोहण अभियान दल के सदस्य के रूप में दुर्गम यात्रा की। शिखर पर आरोहण में हमें सफलता तो नहीं मिली— साधनों का नितान्त अभाव भी उसमें बाधक था, परन्तु उसके बाद भारत में पर्वतारोहण की निरन्तर बढ़ती प्रवृत्ति को देखकर अपने उस प्रथम अभियान की सार्थकता पर गर्व करने को जी चाहता है।

'पण्डिम के दुर्गम पथ पर' शीर्षक से मेरी एक लेखमाला साप्ताहिक हिन्दुस्तान में निकली। मेरे द्वारा की गई कुछ पुस्तकों की समीक्षा भी दैनिक हिन्दुस्तान में निकली थी— जो चर्चित हुई थी। तभी मुझे पता लगा कि हिन्दुस्तान से कोई सज्जन काम छोड़कर रेडियो में जा रहे हैं और उनकी जगह खाली हो रही है। उन दिनों श्री मुकुट बिहारी वर्मा सम्पादक थे। उनसे मिला। उन्होंने कहा— 'कल से आ जाओ।' मैं अगले दिन से 'हिन्दुस्तान' के कार्यालय में काम करने जाने लगा। वहां भी परिचित साथी थे। सबने पूरा सहयोग दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विचित्र बात यह है कि अपनी बेरोजगारी के दिनों में मैंने जहां कहीं काम के लिए प्रार्थनापत्र भेजा, वहां मुझे कभी साक्षात्कार तक के लिए बुलाया नहीं गया, पत्र का उत्तर भी नहीं मिला। पर जहां जहां मैंने काम किया, वहां कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया, और न ही मुझे कोई नियुक्ति पत्र मिला। नियुक्ति पत्र के अभाव में 'हिन्दुस्तान' में भी मैं पहले एक मास तक दुविधा में रहा। इसीलिए एक मास तक रात की ड्यूटी 'अर्जुन' में करता और दिन की ड्यूटी 'हिन्दुस्तान' में—दोनों जगह काम करता रहा। बात कब तक छिपती। जब पहले मास के अन्त में 'हिन्दुस्तान' से वेतन मिल गया, तो मैंने अर्जुन छोड़ दिया। उन्होंने मुझे उस मास का वेतन नहीं दिया। मैंने भी नहीं मांगा। 'हिन्दुस्तान' में नियमित रूप से वेतन न मिलने का प्रश्न ही नहीं था। तब जीवन में कुछ निश्चिन्तता आई। उससे पहले मैं मेरठ कालेज में एम. ए. में प्रवेश ले चुका था। 'हिन्दुस्तान' में मास में एक सप्ताह के लिए रात की ड्यूटी आती। जिस सप्ताह रात की ड्यूटी आती उस सप्ताह मैं मेरठ कालेज जाकर अपनी उपस्थिति अंकित करवा आता। उस समय वहां संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे प्रो. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री। मैंने उनसे शुरू में ही निवेदन कर दिया था कि मैं मास में केवल एक सप्ताह के लिए ही मेरठ आ सकूंगा। उन्होंने शर्त स्वीकार कर ली थी। धीरे धीरे वे दो साल भी पूरे हो गए और प्रथम डिवीजन में पास हो गया। एम. ए. करने के समय मैं 35 वें साल में चल रहा था, पर कालेज में किसी ने मुझ पर 23-24 साल से अधिक के होने का शक नहीं किया। एम. ए. का भूत उतरने के बाद एक बार भारतीय नागरिक प्रशासन सेवा (आई. ए. एस.) की परीक्षा देने का भी मन बनाया। पर पता लगा कि मैं उस आयु-सीमा को पार कर चुका हूं, इसलिए इरादा छोड़ दिया।

'हिन्दुस्तान' में सन् 1952 के मार्च मास से लेकर सन् 1979 के मार्च मास तक रहा। इन 27 वर्षों में पत्रकारिता सम्बन्धी कई कटु-मधु अनुभव हुए, किन्तु गाड़ी क्योंकि ठीक लाइन पर चलती रही, इसलिए कभी पटरी से नहीं उतरी। बड़ा संस्थान था, बड़ा पत्र था, साधनों का अभाव नहीं था, काम करने का भी अच्छा अवसर था। 'सेवितव्यो महावृक्षः' का सहारा पाकर निश्चिन्तता भी थी। इन 27 वर्षों में देश की राजनीति के और पत्रकारों की राजनीति के अनेक रंग देखे। उसकी चर्चा अनावश्यक है। पर कुछ घटनाओं का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

एक बार श्री घनश्यामदास बिरला ने अंग्रेजी का एक लेख हिन्दी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद करवाने के लिए मैनेजर के पास भेजा। वह लेख अनुवाद करने के लिए मुझे दिया गया। साथ ही कहा गया कि अनुवाद की भाषा बड़ी सरल होनी चाहिए और ऐसी कि उसमें कहीं अनुवाद की गन्ध भी न आये। यही लगे कि लेखक ने लेख सीधा हिन्दी में ही लिखा है। मेरे लिए यह भी परीक्षा की घड़ी थी, क्योंकि मेरे बारे में कुछ ईर्ष्यालु साथियों ने यह प्रवाद फैला रखा था कि यह तो बड़ी कठिन और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी लिखता है। मैंने बिरला जी की कुछ पुस्तकें पढ़ रखी थी। मुझे मालूम था कि वे कैसी भाषा लिखते हैं। मैंने उन्हीं की शैलीमें उस लेखका अनुवाद करके मैनेजर को दे दिया। मैनेजर ने बिरला जी को भेजा। बिरला जी ने उस अनुवाद की प्रशंसामें जो कुछ लिखा,उससे मैनेजर भी बहुत प्रसन्न हुआ,क्योंकि इसका श्रेयतो उसी को मिलना था। मुझ अकिंचन को कौनपूछता। पर इससे मैनेजरका मेरी ओर विशेष ध्यान गया और वे मेरे प्रशंसक भी बने। पर इसका एक दुष्परिणाम भी हुआ। वे यह चाहने लगे कि उनका कृपापात्र बनने के लिए मैं अपने अन्य साथियों के संबंध में उनको सूचनाएं देता रहूं जिससे सबको अनुशासन में रखने में उन्हें सुविधा हो। यह मेरे स्वभाव के विपरीत था। मैनेजर ने कई बार मुझे विशेष जिम्मेवारी के काम और पद देने चाहे, पर मेरा स्वभाव उसमें आड़े आता रहा। खुशामद मुझे आती नहीं। औरों की निन्दा या स्तुति में मेरी रुचि नहीं। बिना बुलाए किसी अफसर के दरबार में हाजिरी बजाने जाना नहीं। अपने काम से काम। और आधुनिक युग में यही लोक व्यवहार के विपरीत पड़ता है। इसलिए कई अवसर मैंने जानबूझकर छोड़ दिए। इसलिए अपने काम की जहां मैंने प्रशंसा पाई, वहां जपने व्यक्तित्व के प्रति बेरुखी— और किसी हद तक अन्याय भी— अनायास अर्जित किया।

'हिन्दुस्तान' में गए कुछ ही दिन हुए थे। उस समय तक मैं ही सबसे जूनियर था। हमारे एक वरिष्ठ और अनुभवी पत्रकार की रात की ड्यूटी आई। 'हिन्दुस्तान' में रात की ड्यूटी में तीन व्यक्ति रहते थे— एक उपमुख्य सम्पादक और दो उप-सम्पादक उसकी सहायता के लिए। 'अर्जुन' की तरह एक ही व्यक्ति पर सारा बोझ नहीं रहता था। पर उस वरिष्ठ साथी ने एक दिन रात की ड्यूटी करने के बाद सम्पादक को लिखा— "इस कमजोर शिफ्ट के साथ मैं काम नहीं कर सकता।" उनके साथ जो दो और साथी रात को भेजे गए थे, वे कार्य में इतने कुशल नहीं थे। इसलिए उनकी शिकायत किसी हद तक ठीक थी। मेरा उस दिन साप्ताहिक अवकाश था। सम्पादक ने चपरासी के हाथ मेरे घर चिठ्ठी भिजवाई कि आज से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें रात की ड्यूटी पर आना है । मैं गया । उसी कमजोर शिफ्ट के साथ मैंने काम किया, जिसके साथ काम करने से वरिष्ठ साथी ने मना कर दिया था । सवेरे जब अखबार निकला, तो सबने उसे सराहा । स्टाफ के सबसे जूनियर आदमी ने यह अखबार निकाला है— तो उस जूनियर की ओर सबका ध्यान जाना ही था । उसके बाद तो उप सम्पादक होते हुए भी लगातार शिफ्ट इंचार्ज बनाया जाता रहा । मैं इस सफलता में अपने उस आत्मविश्वास को महत्व देता हूं जो 'अर्जुन' में रहते हुए रात की ड्यूटी में में एकाकी होने पर अनायास अर्जित हो जाता था । क्योंकि इसके बिना गति नहीं थी । आज तो बड़े अखबारों में कोई भी सम्पादक यह विश्वास करने को तैयार नहीं होगा कि रात की ड्यूटी में कोई व्यक्ति अकेला रहकर भी अखबार निकाल सकता है । मैंने बड़े बड़े दिग्गज पत्रकारों के भी समाचारों की भीड़ भाड़ में हाथ पांव फूलते देखे हैं— किस समाचार को लें, किसे छोड़ें, किस समाचार को कितनी प्रमुखता दें, किसे प्रथम पृष्ठ पर स्थान दें और किसे अन्तिम पृष्ठ पर—आदि-आदि । 'कवयोऽप्यत्र मोहिता: ।'

एक बार अखिल भारतीय हिन्दी समाचार पत्र प्रतियोगिता में 'हिन्दुस्तान' प्रथम आया, तो अधिकारियों ने निश्चय किया कि जिस शिफ्ट इंचार्ज पत्रकार की निगरानी में वह अंक तैयार हुआ है, उसे पुरस्कृत किया जाए । किसी को कल्पना नहीं थी कि स्टाफ के सबसे जूनियर व्यक्ति को यह श्रेय प्राप्त होगा । पर वह हुआ । जब सरकार की ओर से वह पैम्फलेट छपकर आया जिसमे प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आने वाले अखबारों के प्रथम पृष्ठों के चित्र छपे थे, तब चित्र देखते ही मैंने कहा कि यह पेज तो मेरा बनाया हुआ है । सब स्तब्ध । बात सही थी । मुझे पुरस्कृत किया गया ।

फिर तो जब-जब प्रतियोगिता की घोषणा होती, तो उस सारे सप्ताह मुझे ही विशेष रूप से रात की ड्यूटी में शिफ्ट इंचार्ज बनाकार भेजा जाता । इस प्रकार लगातार तीन वर्ष तक 'हिन्दुस्तान' हिन्दी के सब अखबारों में प्रथम आता रहा, और तीनों बार मुझे पुरस्कृत होने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा । उसके बाद 'हिन्दुस्तान' ने प्रतियोगिता में भाग लेना ही छोड़ दिया—हर बार हमारा पत्र ही प्रथम आता है, अब इस में क्या भाग लेना ।

'हिन्दुस्तान' में रहते हुए पत्रकारिता से सम्बद्ध प्रायः सभी विधाओं में लिखने का अवसर मिला । साथियों में अग्रज श्री गोपाल प्रसाद व्यास भी थे । हास्य-व्यंग्य के कुशल लेखक, कविता में नारीवाद के प्रवर्तक, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्राण और लालकिले में कवि सम्मेलनों का आयोजन करके हिन्दी को नया आयाम देने वाले, पद्मश्री से सुभूषित और न जाने क्या क्या। जब 'हिदुस्तान' में 'यत्र तत्र सर्वत्र' का नया स्तम्भ प्रारम्भ हुआ, तो वह बहुत लोकप्रिय हुआ। अनेक वरिष्ठ साथी उसे लिखा करते थे। एक बार हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार और शैलीकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' दिल्ली में 'हिन्दुस्तान' के दफ्तर में आए और उन्होंने 'यत्र तत्र' के लिए व्यास जी को बधाई देनी शुरू की। इसे व्यास जी की उदारता कहूं, या सत्यवादिता।

उन्होंने मिश्र जी से कहा कि मैं तो सप्ताह में केवल एक दिन ही यह स्तम्भ लिखता हूं, सप्ताह के शेष दिनों में तो और साथी लिखते हैं। मिश्र जी ने पूछा—'वे साथी कौन-कौन हैं?' व्यास जी ने मुझे बुलाकर मिश्र जी के सामने खड़ा कर दिया। मिश्र जी ने मुझे गले से लगा लिया और बोले—"अरे, तुम तो बड़े छिपे रुस्तम निकले। हम तो समझते थे कि यह स्तम्भ व्यास जी लिखते हैं। अब पता लगा कि असली 'मुजरिम' तो तुम हो। बहुत-बहुत बधाई।" मैंने कहा—"यह तो व्यास जी जैसे साथियों की उदारता और आपकी गुण-ग्राहकता है, जो इतना स्नेह और मान देते हैं।" उसके कुछ वर्ष बाद मिश्र जी ने मुझे और 'हिन्द समाचार-समूह' के सम्पादक तथा सर्व सर्वा वाला जगत् नारायण को (जो बाद में आतंकवादियों की गोली से अपनी निर्भीकता के लिए शहीद हुए) सहारनपुर बुलाकर बड़े पैमाने पर भव्य सार्वजनिक अभिनन्दन किया। मेरे जैसे यशोभीरु व्यक्ति के लिए वह दुर्लभ अवसर था।

'हिन्दुस्तान' में रहते हुए ही एक बार मैंने प्रथम पृष्ठ पर बड़े अक्षरों में एक समाचार का हैडिंग दिया जो कहीं दूर जाकर पूंजीपतियों के हितों के विरुद्ध पड़ता था। सम्पादक ने बुलाकर मुझसे जवाब तलब किया— 'यह हैडिंग कैसे दिया?' मैंने कहा—'राष्ट्र के हित में दिया है।' सम्पादक महोदय ने, जो स्वयं बहुत देशभक्त माने जाते थे, कहा—'तुम राष्ट्र की सर्विस करते हो, या बिरला की सर्विस करते हो।' यह सुनकर मेरे तन-बदन में आग लग गई। मैंने उत्तर में कहा—'मुझे नहीं मालूम था कि आप इस ढंग से सोचते हैं। मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दूंगा। आप मेरे विरुद्ध जो कार्रवाई करना चाहें, कर सकते हैं।'—और यह कह मैं उठ कर चला आया। उनको ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी। हो सकता है, उस हैडिंग के बारे में मालिकों की ओर से कोई संकेत या निर्देश आया हो। उसके बाद क्या हुआ, मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जानता। पर मैं अपनी ओर से समस्त विपरीत परिणामों के लिए तैयार था।

श्री मुकुट बिहारी वर्मा के अवकाश ग्रहण के पश्चात् श्री हरिकृष्ण त्रिवेदी कार्यवाहक सम्पादक बने। उनको कहा गया कि आप सहायक सम्पादक के रूप में अपनी सहायता के लिए स्टाफ में से किसी को भी चुन लीजिए। उन्होंने निस्संकोच होकर मेरा नाम लेते हुए कहा कि मुझे तो यह व्यक्ति दे दीजिए, सहायक सम्पादक सम्बन्धी समस्त कार्यों को यह बखूबी सँभाल सकता है। सम्भव है, मुझसे वरिष्ठ साथियों को इससे बुरा लगा हो, क्योंकि जहां यह प्रतिष्ठा और गौरव का पद था, वहां दैनिक अखबार की रोजमर्रा की खिचखिच से, अनियमितता के जीवन से और रात की ड्यूटी से बचने का माध्यम भी था।

मेरे साथ एक और विचित्रता भी रही। मैं जिस पद पर रहा और जिस ग्रेड का वेतन पाता रहा, प्रायः उससे ऊंचे पद और ग्रेड का काम करता रहा, जब कि और साथियों को इस दुर्भाग्य या सौभाग्य का सामना नहीं करना पड़ा। जब तक उप-सम्पादक रहा, तब तक प्रायः उप मुख्य सम्पादक का काम करता रहा, और जब उप मुख्य सम्पादक बना तो सहायक सम्पादक का काम करता रहा। जब सहायक सम्पादक बना तो संयुक्त सम्पादक का काम करता रहा। अपना-अपना भाग्य! पर मेरी यह भी दृढ़ धारणा रही है कि हरेक चीज का फैसला यहीं नहीं होता। इसीलिए लगातार 15 वर्ष तक सहायक सम्पादक का कार्य करते हुए भी यदि उसके अनुकूल वेतन से मैं वंचित रहा, तो मैं इसमें दोष अपना ही मानता हूं। भले ही कितनी ही मानसिक यातना भुगतनी पड़ी, पर मैं अपने आदर्शों से डिगने को तैयार नहीं हुआ। मैनेजर और सम्पादक दोनों मेरे काम के प्रशंसक पर खुशामद और दरबारगिरी के भूखे। यही मुझसे नहीं हो सका—इसीलिए दोनों अपने-अपने तईं अन्दर-अन्दर मुझसे खार खाते रहे। मैं पिसता रहा।

मैं अकेला ही रविवासरीय संस्करण का भार संभालता रहा (जिसके लिए अब चार आदमी हैं), सम्पादकीय पृष्ठ के लेखों का चयन और सम्पादन करता रहा, प्रायः अग्रलेख भी लिखता रहा, तथा आवश्यकता पड़ने पर 'यत्र तत्र सर्वत्र' भी लिखता रहा। आजकल के लोग हैरान होते हैं कि एक आदमी इतना काम कैसे करता रहा। पर काम से मुझे कभी घबराहट नहीं हुई। इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर "पत्रकारिता के विविध आयाम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में, जो पत्रकारिता सम्बन्धी विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले सन्दर्भ-ग्रन्थ की तरह है, अग्रलेख कैसे लिखना चाहिए और सम्पादकीय पृष्ठ को, जो किसी भी अखबार का सबसे महत्त्वपूर्ण पृष्ठ होता है, कैसे तैयार करना चाहिए—इस विषय पर मुझसे ही लेख लिखने को कहा गया।

श्री रतनलाल जोशी ने अपने सम्पादक काल में 'हिन्दुस्तान' में एक नई परम्परा प्रारम्भ की थी। वे रविवार को साहित्यिक ढंग का दो कालम का एक ही लम्बा अग्रलेख लिखा करते जिसमें शेरों-शायरी और कथा कहानी की पुट रहने से वह पाठकों को बड़ा रुचिकर होता। वे भाषा के जादूगर तो थे ही, उनके पास इस प्रकार की सामग्री का भी भण्डार था। 'नवनीत' के अनेक वर्ष तक सम्पादक रहते हुए उन्होंने इस विषय में जो साधना की थी, उसकी पृष्ठ भूमि तो थी ही। वह रविवासरीय अग्रलेख कभी-कभी मुझसे भी लिखवाते—किसी और से कभी नहीं कहते। शायद उनको भी मुझ पर ही विश्वास था। मुझे उस समय तो बड़ी बेगार लगती, मन में आक्रोश भी होता, पर सहज आस्थावश उसमें भी कोई भलाई छिपी दिखती। निश्चय ही वह अवसर मुझे न मिलता तो अपने अन्दर छिपी वैसी सम्भावनाओं को उजागर होने का भी अवसर न मिलता। सन् 1975 में उनके कार्यनिवृत्त हो जाने के पश्चात् यह दायित्व भी मुझ पर आ पड़ा। पाठकों की अनुकूल प्रतिक्रिया पाकर मुझे भी उसमें रस आने लगा। पर इसमें खतरा भी कम नहीं था।

देश में आपातकाल लागू हो चुका था। समाचारों और लेखों पर सेंसर लगा दिया गया था। कई समाचार-पत्रों ने अग्रलेख का स्थान खाली छोड़ना प्रारम्भ कर दिया था। पत्रों में छपने वाले व्यंग्य चित्र बन्द हो गए थे। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर अंकुश लग गया था। वही खुशामद वाली बात। खुशामद करो और ऐश पाओ। पर अन्तःकरण की आवाज का क्या होगा? धर्म-संकट था। मन की कहो, तो मरे। मन की न कहो, तो उससे बढ़ कर आत्महत्या क्या होगी? उन्हीं दिनों की बात कहता हूं। मैंने पहला लेख लिखा—'सखि वसन्त आया!' वसन्त पंचमी के अवसर पर लिखा था, इसलिए वसन्त आने की बात तो समयानुकूल थी। पर मैंने लिखा कि कौन कहता है—वसन्त आ गया। बिना कोकिल की काकली के वसन्त कैसा! पर यहां तो कोकिल की वाणी पर प्रतिबन्ध है, इसलिए हम नहीं मानते कि वसन्त आ गया है। कुछ सुधी पाठकों ने इसकी व्यंजना को समझा, कुछ ने नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा । पर धीरे-धीरे साहित्यकार लोग जान गए कि यह तो सर्वथा नया तेवर है और इसमें आपातकाल में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर लगाए गए अंकुश पर साहित्यिक प्रहार है । इसी साहित्यिक घटा की ओट में मैं क्या-क्या नहीं कहता रहा । सुधी साहित्यकार व्यंजना का आनन्द लेते रहे, और जो व्यंग्य को नहीं समझ सके वे केवल साहित्यक वर्णन का रस लेते रहे ।

उन्हीं दिनों जब रक्षा मन्त्री श्री जगजीवनराम ने मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दिया,तो मैंने लेख लिखा—'जीवन है नाम चुनौती का'—फिर वह जीवन चाहे व्यक्ति का हो, चाहे जग का । बस इतना ही संकेत काफी था । जिस घटनाचक्र के मध्य वह लेख लिखा जा रहा है उक्त संकेत के बाद भी कोई उसके मर्म को न समझे तो उसकी बुद्धि की बलिहारी ! पर समझदार लोग तो भाव-विभोर हो गए । फिर एक नारा चला था—'इन्दिरा इज़ इण्डिया ।' इसका भी उत्तर दिया था 'भारत माता का अर्थ है.......' नामक लेख में, और नेहरू जी को ही उद्धृत करते हुए लिखा था कि वे तो कहते थे कि भारतमाता का अर्थ है—भारत के निवासी, और भारतमाता की जय का अर्थ है—भारत के निवासियों की जय । पर आज कुछ लोग कहते हैं कि भारतमाता किसी महिला-विशेष का नाम है । अगले दिन लोकसभा में यही बात दुहरा दी गई ।

आपातकाल में ही यह विवाद उठा था कि समस्त विपक्षी दल मिलकर एक अभिमन्यु का वध करना चाहते हैं। मैंने लिखा कि 'कौरव कौन और पाण्डव कौन ?' अगले दिन सारी दिल्ली में पोस्टर चिपक गए–'कौरव कौन, पाण्डव कौन ?' तब प्रश्न उठा कि यह संकेत कहां से आया । तब किसी ने चुगली भी कि 'हिन्दुस्तान' के रविवासरीय अग्रलेख से यह 'क्ल्यू' आया है । फिर क्या था । सरकारी अधिकारियों ने बड़ी बारीकी से उस लेख का अध्ययन किया और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उस लेख का भाव तो वही है जो दिल्ली में चिपके पोस्टरों में दिखाया गया है, पर लेख इस ढंग से लिखा गया है कि उसके किसी भी शब्द पर न आपत्ति की जा सकती है, न कार्रवाई की जा सकती है । 'सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे'—इस कहावत का यही अर्थ नहीं है क्या ? नहीं तो साहित्य किस काम आएगा ?

कुछ हितैषियों ने आकर कान में कहा—'तुम आग से खेल रहे हो । इस आपातकाल में हरेक बड़े अखबार के दफ्तर में जासूसों की भरमार है । वे इस बात की टोह में रहते हैं कि कौन आपातकाल के विरोध में जबान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोलता है। मैंने कहा कि मैं तो जबान खोलता ही नहीं, जो कुछ कहना होता है—कलम से कहता हूं। 'यही तो सबसे खतरनाक काम है। तुम अपनी जबान न खोलते हुए भी हजारों को जबान खोलने का रास्ता बताते हो। अगर किसी दिन नजर में चढ़ गए, तो न दलील, न अपील, न वकील—सीधे जेल की हवा। 'और पाठक माई बाप! सच कहूं तो मैं भी कभी-कभी रात-रात भर परेशान रहता—नींद न आती—कि आज यह लिख कर आया हूं, कल सवेरे समाचार-पत्र जनता के हाथ में पहुंचने पर न जाने उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी और मुझे उसका न जाने क्या परिणाम भोगना पड़ेगा। फिर एक दिन एक समझदार वरिष्ठ पत्रकार ने संजीदगी से कहा—'तुमने हिन्दी में ये लेख लिखे, इसलिए बच गए। यदि अंग्रेजी में लिखे होते तो नहीं बच सकते थे। कितने सरकारी अफसर हैं जो तुम्हारी साहित्यिक हिन्दी को और उसमें छिपे मार्मिक व्यंग्य को समझ सके होंगे!'

इसी तरह आग से खेलते-खेलते सन् 1979 के मार्च में 'हिन्दुस्तान' से कार्य निवृत्त होने का अवसर आ गया। पीछे उन्हीं अग्रलेखों के संकलन के रूप में तीन पुस्तकें निकली—(1) 'फिर इस अन्दाज से बहार आई!' (2) 'ओ मेरे राजहंस!' (3) 'देवता कुर्सी के!' ये तीनों पुस्तकें काफी चर्चित रहीं। पर केवल साहित्यकारों तक।........अवकाश ग्रहण करने से पहले की बात है। शनिवार की शाम को मैं रविवासरीय अग्रलेख लिखने के मूड़ में था कि एक परिचित सज्जन मिलने आ गए। प्रयोजन कुछ बताया नहीं। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बात होती रही। मैं सोचूं—ये अब टलें, अब टलें। पर वे तो अटल बने रहे। अन्त में मैंने ही कहा—'मेरे योग्य कोई और सेवा हो तो बताइए।'—अर्थात् अब आप जाइए। पर वे नहीं टले। तो मैंने कहा—'अब यदि मैं आपसे घण्टे सवा घण्टे तक कोई बात न कर सकूं, तो मुझे क्षमा करिये।'—और यह कह कर मैं लिखने में लग गया। वे यमदूत की तरह सामने बैठे रहे। जब मैं अग्रलेख समाप्त कर चुका तब मैंने आजिजी से कहा—'अब तो बताइए कि आपके आने का क्या प्रयोजन था?' तब वे सज्जन धीरे से बोले—'मैं तो यही देखने आया था कि आप यह रविवासरीय अग्रलेख कैसे लिखते हैं जिसकी लोग इतनी प्रशंसा करते हैं।' वे दिल्ली विश्वविद्यालय के एक वरिष्ठ प्राध्यापक थे। मैंने कहा—'तो आप मेरी परीक्षा लेने आए थे?' वे हँसने लगे। कहने लगे—'मैं सोचता था कि मेज पर चारों तरफ पुस्तकें फैली पड़ी होंगी, कुछ इसमें से लेते होंगे, कुछ उसमें से लेते होंगे, और अग्रलेख तैयार।' मैंने कहा—'अब तो आपको तसल्ली हो गई।' और मन में कहा—हमारे भी हैं मेहरबां कैसे कैसे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दुस्तान' से रिटायर होने के बाद सोचा था कि बस हम अपनी इनिंग्स खेल चुके, और अब वापिस पैविलियन में बैठ कर औरों को खेलते हुए देखेंगे। पर यह क्या मालूम था कि रिटायर का एक अर्थ 'दुबारा टायर लग जाना' भी होता है। 'छुटती नहीं है यह मुंह से लगी हुई' कह लीजिए, या 'आराम हराम है' का संस्कार कह लीजिए। 'आर्य जगत्' की सम्पादकी का टायर दुबारा लग गया। तो फिर वैसी ही भागदौड़ और व्यस्तता। बल्कि पहले से भी और अधिक। घर वाले कहते—'यह अच्छे रिटायर हुए। अब आपसे बात करने के लिए हमें भी पहले से 'एपोइंटमेंट' लेनी पड़ती है—कि अमुक दिन अमुक समय आप घर पर रहेंगे या नहीं। अब 'आर्य जगत्' में काम करते हुए भी दस वर्ष हो गए हैं। कुछ साहित्यकार साथी कहते हैं—'कहां फँस गए!' कुछ दूसरे साथी कहते हैं—'हिन्दुस्तान' में या 'अर्जुन' में रह कर तुमने देश की जो सेवा की होगी, सो की होगी, पर अब अपने निर्भीक और सुलझे हुए विचारों से आर्यसमाज और देश की जो सेवा कर रहे हो, उसकी तुलना नहीं है।

आर्यसमाज का एक वर्ग राजनीति से सदा बिदकता रहा है। हवा में उड़ने वाले कुछ आर्यसमाजियों को 'जय जगत्' और विश्वशान्ति के नारे से बड़ी राहत मिलती है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के उद्घोष से समस्त विश्व के प्रति अपने उत्तरदायित्व को स्वेच्छा से ओढ़ने में गर्व अनुभव करते हुए वे राष्ट्र की बात करना वैदिक धर्म को संकुचित करना समझते हैं। यों भी अधिकांश आर्यसमाजियों का रुझान आधुनिक अर्थों में साम्प्रदायिकता की ओर अधिक रहा है। वे संविधान में वर्णित 'सेक्युलरिज्म' को भी अस्वीकार करते हैं। पर मैं उसका समर्थन करता हूं। मैं कहता हूं कि शासक को 'सेक्युलर' ही होना चाहिए— इस लोक में प्रत्येक नागरिक के साथ बिना किसी भेदभाव के न्याय करना और सुशासन की व्यवस्था करना ही उसका कर्त्तव्य है। इसलिये साम्प्रदायिक दलों को राजनीतिक पार्टी मानना या उन्हें चुनाव लड़ने की अनुमति देना संविधान के विरुद्ध है। साथ ही मैं यह भी कहता हूं कि आर्यसमाज की दो भुजाएं हैं— एक वेद और दूसरी राष्ट्र। एक भी भुजा के न रहने पर वह लूला हो जाएगा। यही एक ऐसा व्यावर्तक लक्षण है जो उसे अन्य सब सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं से अलग करता है। आर्यसमाज में जो लोग केवल 'वेद वेद' चिल्लाते रहते हैं और राष्ट्र की बात नहीं करते, वे अनर्थ करते हैं और समाज को आत्मघात की ओर ले जाते हैं।

इसी तरह मैं 'हिन्दू' शब्द को भी धर्म या सम्प्रदाय के साथ नहीं, देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ जोड़ता हूं। मुझे मालूम है कि आर्यसमाज के कई स्वनामधन्य महानुभावों को 'हिन्दू' शब्द से एलर्जी है, और इसके कारण गाहे-ब-गाहे मेरी आलोचना करने से वे बाज नहीं आते। पर मुझे अपने विचारों में परिवर्तन का कोई कारण दिखाई नहीं देता क्योंकि मैं उन्हीं विचारों में देश का हित समझता हूं।

'आर्य जगत्' में आने के कुछ ही दिन बाद की बात है। मैंने एक लेख लिखा— "असम के छात्रो! हम तुम्हारे साथ हैं।" एक बुजुर्ग साथी ने कहा— 'तुम यहां भी नेतागिरी से बाज़ नहीं आए। कोई और समाचार पत्र अभी तक जो बात नहीं कहता, वह कहने की हिम्मत तुम कैसे कर रहे हो? बड़े तीसमार खां बने हो।' पर कुछ दिन बाद स्वामी अग्निवेश का फोन आया—'मैंने तुम्हारा यह लेख बम्बई में पढ़ा। मेरी तो आंखें खुल गईं। अभी तक मैं इसे केवल प्रादेशिक आन्दोलन समझता था। अब समझा कि मूलतः यह राष्ट्रीय आंदोलन है और हमें सब प्रकार से इसका समर्थन करना चाहिए।' इसके बाद स्वामी अग्निवेश स्वयं असम गए और उसकी ओर सरकार का तथा जनता का ध्यान खींचने के लिए पटेल चौक पर उन्होंने अनशन भी किया।

इसी तरह पंजाब के सम्बन्ध में कुछ अग्रलेख लिखे। पाठकों ने आग्रह किया कि इन लेखों को पुस्तकाकार छपना चाहिए। मेरा विचार था कि इस विषय पर तो अलग से ही एक पूरी पुस्तक लिखी जानी चाहिए। पाठकों ने कहा— 'तो लिखो न। पूरी पुस्तक ही लिखो। किसने रोका है तुम्हें।' और तब दिन रात लगाकर 'तूफान के दौर से पंजाब' नामक पुस्तक लिखी। जिसका पहला संस्करण कुछ ही मास में समाप्त हो गया। फिर दूसरा परिवर्धित संस्करण निकला। वह भी देखते-देखते निकल गया। तब अनेक पाठकों के आग्रह से, विशेष कर श्री हरिवंशराय बच्चन के आग्रह से उसका तीसरा संस्करण अंग्रेजी में निकला। अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित होकर किसी पुस्तक का निकलना आम बात है, पर हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद होकर प्रकाशित होना किसी पुस्तक के लिये असामान्य बात है। उन दिनों पंजाब के सम्बन्ध हिन्दी और अंग्रेजी में अनेक पुस्तकें निकलीं, बड़े प्रकाशकों और प्रसिद्ध पत्रकारों के नाम उन पुस्तकों के साथ जुड़े थे, पर कई निष्पक्ष सम्पादकों ने अपनी समीक्षा में यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की कि पंजाब की समस्या को जिस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पूरी बेबाकी के साथ इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है, वैसा अन्य पुस्तक में नहीं किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी कहने लगे— "मैं तुम्हारे अनेक विचारों से सहमत नहीं हूं, और मौका पड़ने पर खुलेआम विरोध भी करता हूं। मैं यह भी कहता हूं कि तुम हो तो हीरे, पर कीचड़ में पड़े हो। फिर भी मैं समझता हूं कि तुम्हारे अग्रलेखों का पुस्तक रूप में संकलन होना चाहिए जिससे भावी पीढ़ी को यह पता लग सके कि अमुक घटना पर अमुक समय में तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया थी। तुम्हारे अनेक विचारों से सहमत न होने पर भी तुम्हारे हृदय की निश्छलता और राष्ट्रप्रेम की अकुण्ठित भावना का मैं प्रशंसक हूं।' मैंने कहा— 'स्वामी जी ! मैं न तीन में, न तेरह में। मैंने तो किसी भी दिशा में कोई कीर्तिमान स्थापित नहीं किया। मुझे तो सामान्य बने रहने में ही असामान्य आनन्द मिलता है। आप मुझे अपने स्नेह का पात्र समझते हैं, मेरे लिए यही क्या कम गर्व की बात है ?' स्वामी जी भी भाव-विभोर होकर बोले— 'तू यों नहीं मानेगा। अब मैं स्वयं देखूंगा।'

कुछ दिन बाद पता लगा कि मेरे 'आर्यजगत्' में प्रकाशित एक वर्ष के लेखों को उन्होंने पुस्तक रूप देकर प्रकाशित कर दिया है और दूसरे वर्ष के लेखों को प्रकाशित करने की तैयारी है।

अब इस स्नेह का मैं क्या प्रतिकार दूं ! मैं अकिंचन। पर पूज्य जनों और अन्य स्नेही जनों के स्नेह की छाया में चलते चलते, पलते-बढ़ते, पथ के 73 संकेत पार कर चुका हूं और 74 वें पर कदम बढ़ाने की तैयारी कर रहा हूं। यह स्नेह और आशीर्वाद ही मंजिल तक पहुंचने की शक्ति देगा। पर मंजिल कहां है, यह कौन जानता है !

संपादकीय पृष्ठ

—क्षितीश वेदालंकार

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है :—

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी।
तैसे हि नाथ पुरुष बिनु नारी।।

—कुछ-कुछ इसी तरह की बात समाचार-पत्र के संपादकीय पृष्ठ के लिए कही जा सकती है। जैसे बिना मेरुदंड के मनुष्य, वैसे ही बिना संपादकीय पृष्ठ के समाचार-पत्र। संपादकीय पृष्ठ न केवल संपादक के व्यक्तित्व का द्योतक होता है, प्रत्युत समस्त समाचारपत्र के व्यक्तित्व की झांकी प्रस्तुत करता है। कुछ पत्र केवल समाचारों को महत्व देते हैं, अग्रलेख या संपादकीय पृष्ठ को नहीं। निःसंदेह समाचार-पत्र में सर्वाधिक महत्व समा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों का होता है और इसीलिए सब समाचार-पत्रों में ताजा से ताजा और अधिक से अधिक समाचार देने की होड़ लगी रहती है। समाचार जुटाने के लिए समाचारदाताओं, संवाददाताओं, विशेष संवाददाताओं और प्रतिनिधियों की भरमार रहती है और इन पर भरपूर व्यय भी किया जाता है। पर किसी भी समाचार-पत्र के व्यक्तित्व का निर्माण केवल समाचारों के आधार पर नहीं होता। उसका निर्माण होता है मुख्यतः संपादकीय पृष्ठ से पत्र की अंतरात्मा संपादकीय पृष्ठ है, वह उसकी अंतरात्मा की आवाज है। इसलिए कोई बड़ा समाचार-पत्र बिना संपादकीय पृष्ठ के नहीं निकलता।

पत्र के व्यक्तित्व का बोध

पाठक प्रत्येक समाचार-पत्र का अलग व्यक्तित्व देखना चाहता है उसमें कुछ ऐसी विशेषता देखना चाहता है जो उसे अन्य समाचार पत्र से अलग करती हो, जिस विशेषता के आधार पर वह उस पत्र की पहचान नियत कर सके। यह विशेषता समाचार-पत्र के विचारों में, उसके दृष्टिकोण में प्रतिलक्षित होती है, किंतु बिना संपादकीय पृष्ठ के समाचार-पत्र के विचारों का पता नहीं लगता। यदि समाचार-पत्र के कुछ विशिष्ट विचार हों, उन विचारों में दृढ़ता हो और बारंबार उन्हीं विचारों का समर्थन हो तो पाठक उन विचारों से असहमत होते हुए भी उस समाचार-पत्र का मन में आदर करता है। मेरुदंडहीन व्यक्ति को कौन पूछेगा ?

किसी-किसी समाचार-पत्र का संपादकीय पृष्ठ इतना नीरस होता है कि उसे पढ़ना भी एक सजा जैसा लगता है। संपादकीय पृष्ठ की नीरसता संपादक के व्यक्तित्व की नीरसता की निशानी है, क्योंकि वह संपादक का अपना निजी पृष्ठ समझा जाता है। इसमें शक नहीं कि जितनी उत्सुकता से और जितनी अधिक संख्या में लोग समाचारों को पढ़ते हैं उतनी उत्सुकता से और उतनी अधिक संख्या में संपादकीय पृष्ठ या अग्रलेख को नहीं पढ़ते। पर जितने भी सुशिक्षित और प्रबुद्ध पाठक होते हैं उन सबकी प्रत्येक विषय में अपनी कुछ राय होती है, अपने कुछ विचार होते हैं और वे संपादक की राय जानना चाहते हैं। संपादकीय पृष्ठ का एक ही लक्ष्य है—वह यह कि सामान्य पाठकों से अधिक प्रबुद्ध पाठकों को वह अपनी विशिष्ट सुविचारित पाठ्य सामग्री से प्रभावित करे। केवल खबरें छापने से और उन खबरों के सम्बन्ध में अपनी ओर से कोई टिप्पणी या कोई विचार न देने से सुविज्ञ पाठकों की दृष्टि में पत्र का महत्व घट जाता है।

सामान्य नागरिक के पास समयाभाव रहता है, इसलिए संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पाठकों के लिए घटनाओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है, जो तथ्य स्पष्ट नहीं हैं उनको स्पष्ट करके उभारता है और खबरों का मूल्यांकन करता है। समझदार पाठक यही चाहता है। इस परिवर्तनशील संसार में घटनाओं का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि पाठक उनका तारतम्य स्मरण नहीं रख पाता। समय-समय पर आने वाली खबरों को जोड़ कर पाठक अपने मन में कोई एक चित्र नहीं बना पाता, क्योंकि या तो वह उस विषय में बहुत कम जानता है या उसे सारे तथ्य याद नहीं रहते। बड़ी-बड़ी राजनीतिक घटनाओं में कार्य-कारण संबंध स्थापित करना उसके वश की बात नहीं होती, न ही वह पूर्वापर प्रसंगों की शृंखला जोड़ पाता है। संपादक अपनी विचारपूर्ण टिप्पणियों से और शांतचित्त रह कर किये गये विश्लेषण से घटनाओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की सामर्थ्य पाठक को देता है। सब घटनाओं का एक समन्वित और समझ में आने योग्य चित्र उपस्थित करने के लिए कल, परसों, सप्ताह-भर पहले और उससे भी पहले क्या-क्या घटित हुआ और क्या घटित हो सकता था या भविष्य में क्या-क्या घटित होना संभव है— यह सब बताना संपादक का काम है। एक वाक्य में कहना हो तो कह सकते हैं कि प्रतिक्षण परिवर्तनशील वर्तमान को स्पष्ट करना और भविष्य को बुद्धिमत्तापूर्वक इंगित करना संपादक का काम है। और यह सब काम वह संपादकीय पृष्ठ के माध्यम से ही कर सकता है। इसलिए उस पृष्ठ का इतना महत्व है।

संपादकीय पृष्ठ में क्या होता है ?

संपादकीय पृष्ठ में केवल अग्रलेख नहीं होता। उसमें पाठकों के पत्र होते हैं, विशिष्ट स्तंभ लेखकों और राजनीतिक समीक्षकों के लेख होते हैं, विभिन्नपत्र-पत्रिकाओं के लेखों के सार-संक्षिप्त उद्धरण होते हैं और कभी-कभी कुछ गवेषणापूर्ण लेख भी होते हैं। स्थानीय या राष्ट्रीय हितों के संबंध में संपादकीय विभाग के सदस्यों द्वारा तैयार किये गये लेख भी होते हैं।

संपादकीय पृष्ठ के वैविध्य को बनाये रखने के लिए हरेक बड़े समाचार-पत्र ने कुछ अपनी अलग परंपराएं कायम कर रखी हैं। जैसे, कुछ पत्र विभिन्न राज्यों की गतिविधियों से संबद्ध 'अमुक राज्य की चिट्ठी' के रूप में अपने संवाददाताओं द्वारा भेजी गयी उस राज्य की गतिविधियों की रिपोर्ट प्रकाशित करते हैं। ये चिट्ठियां केवल भारत के राज्यों संबंध में नहीं, अपितु,नेपाल,बर्मा,पाकिस्तान, श्रीलंका जैसे पड़ौसी देशों के संबंध में भी होती हैं। मारीशस, फीजी, थाईलैंड, जापान, हांगकांग, इंडोनेशिया और इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलावा सुदूर मास्को, लन्दन, वाशिंगटन तक की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों की सूचना देने वाली चिट्ठियां हिंदी के पत्रों में छपती हैं। इस विषय में वाराणसी के 'आज' ने जितने व्यापक क्षेत्रों को समाविष्ट किया है, उतना कदाचित् भारत के किसी अन्य भाषा के पत्र ने नहीं किया।

कुछ पत्रों ने एक अन्य ढंग का विभाजन कर रखा है। सप्ताह में छह दिन के लिए (सातवें दिन तो प्रायः रविवासरीय संस्करण निकालते हैं) उन्होंने हरेक दिन के अलग-अलग विषय नियत कर रखे हैं। एक दिन कृषि के संबंध लेख जायगा तो दूसरे दिन विज्ञान के सम्बन्ध में, तीसरे दिन स्वास्थ्य के संबंध में, चौथे दिन शिक्षा और संस्कृति के संबंध में आदि। ('नव-भारत टाइम्स' दिल्ली ने इस विभाजन का अच्छा निर्वाह किया है।) राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के संबंध में भी अमूमन संपादकीय पृष्ठ पर लेख आते रहते हैं। अक्सर देखने में आया है कि अंग्रेजी के समाचार-पत्रों में जहां अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर अधिक जोर दिया जाता है, वहां भाषायी पत्रों में राष्ट्रीय विषयों पर। तात्कालिक और स्थानीय समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले लेखों का अभाव कभी-कभी अखरता है। शायद इसका कारण यह हो कि बड़े पत्रों के बड़े संपादकों को हवा में उड़ने की इतनी आदत हो जाती है कि उन्हें धरती की या अपनी नाक तले की चीज नजर नहीं आती, या अन्तर्राष्ट्रीयता के चक्कर में उन्हें स्थानीय समस्या महत्वहीन प्रतीत होती है।

व्यंग्य-विनोदात्मक स्तंभ

संपादकीय पृष्ठ के प्रति जनता की रुचि जागृत करने के लिए प्रायः हिंदी के पत्र उसी पृष्ठ पर एक हास्य-व्यंग्य का विनोदात्मक ढंग से लिखा स्तम्भ प्रकाशित करने लगे हैं। सार्वजनिक न होने पर भी यह परंपरा उसी तरह वृद्धि पर है जैसे कवि-सम्मेलनों में हास्य-रस की कविताओं का पाठ। इसमें संपादकीय पृष्ठ की नीरसता को कम करने में सहायता मिलती है। ऐसे स्तंभ के पाठकों की संख्या उक्त लेख के पाठकों की संख्या से अधिक होती है, क्योंकि इस में बात ऐसे ढंग से कही जाती है कि बुद्धि पर जोर नहीं पड़ता। जिस चीज के पढ़ने से बुद्धि पर जितना अधिक जोर पड़ता है, पाठक उससे उतना ही अधिक बिदकता है।

यद्यपि 'चौबेजी का चिट्ठा' या 'भंग की तरंग में' की यह परम्परा काफी पुरानी है, पर तीस-चालीस साल पहले तक इस प्रकार के स्तम्भ की आवश्यकता केवल मासिक पत्रिकाओं में ही समझी जाती थी। शायद दैनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों में इस प्रकार के स्तम्भ की शुरुआत पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति ने 'अर्जुन' में 'गांडीव के तीर' और 'नारद की वीणा' से की थी। अब तो ऐसा लगता है कि जिन पत्रों में इस प्रकार का स्तंभ नहीं होता वे लोकप्रियता में एक सीढ़ी नीचे ही रह जाते हैं।

जब तक ऐसे स्तंभों के लेखन का उत्तरदायित्व किसी एक लेखक पर न हो तब तक उनमें एकरूपता संभव नहीं है, फिर भी ऐसे स्तंभों की लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि जिस किसी पत्र में भी ऐसा स्तंभ होता है उस पत्र में वही स्तंभ सब से अधिक पढ़ा जाता है। 'हिंदुस्तान' में 'यत्र तत्र सर्वत्र', 'अधिकार' में 'येन केन प्रकारेण', 'आज' में 'चलती चक्की', 'आर्यावर्त' में 'चटपटानन्द की चिट्ठी', 'स्वतन्त्र भारत' में 'कांव-कांव', 'नई दुनिया' में 'सुनो भाई साधो', 'जागरण' (झांसी) में 'मन की मौज', 'नवभारत' (नागपुर) में 'फूल और कांटे', 'विश्वमित्र' (बम्बई-कलकत्ता) में 'चलते-चलते' और 'रमता योगी', 'राष्ट्रदूत' में 'कंटीले फूल' और 'विविध वार्ता', 'सन्मार्ग' में 'दांवपेच' आदि की लोकप्रियता इसका प्रमाण है।

इस प्रकार के स्तंभ में प्रायः दैनिक घटनाओं की व्यंग्यपूर्ण चर्चा होती है। उसमें राजनीतिक चर्चा के साथ साहित्यिक पुट भी रहता है। एक तरह से वह साहित्यिक रचना की ही कोटि में आता है। यद्यपि सामयिक घटना पर आधारित होने के कारण उसमें उतना स्थायित्व नहीं होता। इस प्रकार के कुछ स्तंभों में नेताओं की उक्तियों या वक्तव्यों के किन्ही अंशों या फुटकर छोटी खबरों पर एक-दो वाक्य में ही चुटकी ली जाती है। पाठक को तो उसमें रस आयेगा ही।

इस प्रकार के स्तंभों का लेखन उतना आसान नहीं होता, जितना समझा जाता है। फिर रोज-रोज लिखना तो और भी मुश्किल होता है। और जब किसी एक ही व्यक्ति को यह काम रोज करना पड़े तो पाठक को भले ही उसमें आनन्द आये, पर लेखक के लिए तो वह निरा निरानन्द का विषय रहता है— ठीक वैसे ही जैसे भोजन में उपस्थित षड्रस व्यंजनों के उपभोग में खानेवाले को तो आनन्द आ सकता है, पर रसोइये के लिए तो वह श्रम-साध्य ही होता है। यह भी संभव है कि जिस व्यक्ति को समाचार-पत्र के कार्यालय में इस प्रकार का स्तंभ लिखने का काम सौंपा जाताहै उसे कार्यालय संबंधी अन्य कामों का दायित्व भी निभाना पड़ता हो और जब अन्य काम में वह थक कर चूर हो जाय तब उसे पाठकों के मनोरंजनार्थ यह 'स्पेशल डिश' या चटपटी चाट तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनी पड़ती हो। ऐसा करने के लिए लेखक को इन स्तंभों में कभी-कभी व्यर्थ की 'लफ्फाजी' या 'बकवास' मात्र का सहारा लेना पड़ता है। पाठक इससे संतुष्ट नहीं होता, उसे लेखक की मनोदशा से क्या मतलब। उसे तो रोज मेज पर गरमागरम, ताजा और स्वादिष्ट भोजन चाहिए।

यह कैसी वीर पूजा

हिंदी पत्रों के संपादकीय पृष्ठ की एक और विशेषता भी है, जो अंग्रेजी के समाचार-पत्रों में दिखायी नहीं देती। भारत उत्सव और वीर-पूजा में आस्था रखने वाला देश है। भारत में न उत्सवों और पर्वों की कमी है न वीर नायकों की। हिंदी पत्रों में जहां इन पर्वों पर संपादकीय पृष्ठ पर लेख जाते रहते हैं, वहां वीर-पूजा सम्बन्धी भी। जब से राजनीति सर्वव्यापक हो गयी है, तब से राजनीतिज्ञों की सर्वशक्तिमान् देवता की तरह पूजा करना भी आवश्यक समझा जाने लगा है। कस्बों के छोटे पत्र तो अपनी इस 'प्रवृत्ति' के लिए बदनाम हैं ही, अखिल भारतीय स्तर के बड़े पत्र भी आये दिन इस या उस मंत्री की प्रशस्ति में सचित्र लेख, या उसके साथ साक्षात्कार, या उसके जन्म-दिवस पर उसके संबंध में विशेष लेख स्वयं लिख कर या लिखवाकर प्रकाशित करते हैं। यह अच्छी पत्रकारिता नहीं कहलाती। पत्रकारिता और भटैती पर्यायवाची नहीं हैं।

कुछ समाचार-पत्र संपादकीय पृष्ठ पर पुस्तक-समीक्षा भी सप्ताह में एक बार देते हैं। इंदौर के 'नई दुनिया' पत्र ने संपादकीय पृष्ठ पर 'विविधा' नामक एक स्तंभ प्रारंभ किया है, जिसमें इधर-उधर से प्रकाशित या अप्रकाशित ऐसी सामग्री संकलित की जाती है तो ज्ञानवर्धक होने के साथ रुचिवर्धक भी हो। अंग्रेजी के समाचार-पत्र 'हिंदुस्तान टाइम्स' में प्रति दूसरे दिन प्रकाशित होने वाला 'जंतर मंतर' या रविवासरीय संस्करण में प्रकाशित होने वाला 'डायवर्सिटीज' स्तंभ कुछ-कुछ इसी प्रकार प्रकार का होता है।

कुछ समाचार-पत्र संपादकीय पृष्ठ पर व्यंग्य चित्र भी देते हैं। जैसे लखनऊ का 'स्वतंत्र भारत'। किसी सीमा तक ये व्यंग्य-चित्र उस पृष्ठ पर व्यंग्य-विनोद के स्तंभ के अभाव को अखरने नहीं देते।

संपादक के नाम पत्र

इस पृष्ठ का सब से अधिक महत्वपूर्ण स्तंभ 'संपादक के नाम पत्र' होता है। प्रायः प्रत्येक समाचार-पत्र ने इस स्तंभ के नाम अलग-अलग रखे हुए हैं। 'लोकवाणी' (हिंदुस्तान', दिल्ली), 'जनवाणी' (राष्ट्रदूत', जयपुर), 'आपने लिखा है' (आर्यावर्त्त, पटना), 'नजर अपनी-अपनी' (नवभारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाइम्स'), 'जनता की ग्रावाज' ('विश्वमित्र' बंबई), आदि । पर सबका ग्रभिप्राय एक ही है । जितने पाठक 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ के होते हैं, उतने अग्रलेख के नहीं होते । कारण यह है कि अग्रलेख केवल किसी एक व्यक्ति के विचारों का, संपादक या संपादकीय मंडल के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि यह स्तंभ जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है । जनता के द्वारा लिखे गये संपादक के नाम ये छोटे-छोटे पत्र एक तरह से जनता के अग्रलेख होते हैं ।

इस स्तंभ की एक ग्रौर विशेषता होती है । पाठक अधिक ईमानदारी से लिख सकता है । यह स्तंभ एक खुला जनमंच होता है जो जनतंत्र का सब से बढ़िया माध्यम है । स्वतंत्र देश के नागरिक प्रत्येक विषय में ग्रपनी राय दें, यह ग्रच्छी बात है,और स्वतंत्र जनतंत्र के विकास के लिए उपयोगी भी है । स्तंभ से सरकार को यह पता चलता रहता है कि अमुक कदम की जनता पर क्या प्रतिक्रिया हुई है, जो सही नीति-निर्धारण में सहायक होता है । फिर समाचार-पत्र के अन्य स्थान तो नेताओं के भाषणों या ग्रन्य समचारों से भरे रहते हैं, ले-देकर यही एक स्तंभ जन-सामान्य के लिए बचता है । इस स्तंभ में पत्र-लेखक अपने मन की बात कह कह सकता है । वह अशिक्षित जनता के विचारों को भी प्रकाश में ला सकता है । इसलिए 'संपादक के नाम पत्र' का लेखक आदर का पात्र है, उपेक्षा का नहीं ।

पत्र कौन लिखते हैं ?

यह पत्र-लेखक कौन है ? जो लोग आपसे सहमत होते हैं, वे सामान्यत: पत्र कम लिखते हैं । जो असहमत होते हैं, अधिकतर वे ही पत्र लिखते हैं । इसलिए उन पत्रों को छापने की संपादक की एक नैतिक जिम्मेदारी होती है । चूंकि पत्र-लेखक के विचार संपादक से भिन्न होते हैं, इसलिए उन्हें प्रकाशित करने के लिए मानसिक साहस की आवश्यकता होती है । कुछ समाचार-पत्र इतने उदार नहीं होते । वे सदा अपने मंतव्य के समर्थक पत्र ही छापते हैं । खास तौर से दलीय पत्र इस रोग से ग्रधिक ग्रस्त होते हैं । समाचार-पत्र की गरिमा इस बात में है कि वह निष्पक्ष रहे और मानवीय दृष्टि से जितना संभव हो निष्पक्ष रह कर ग्रपने मंतव्य के कटु आलोचकों के पत्रों को भी प्रकाशित करे । हां, पत्रों की भाषा में शिष्टता और शालीनता का ध्यान तो होना ही चाहिए ।

जब तक अग्रलेख निर्जीव होंगे, तब तक संपादकीय पृष्ठ भी निर्जीव रहेगा ग्रौर निर्जीव संपादकीय पृष्ठ में 'संपादक के नाम पत्र' वाला स्तंभ कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजीव नहीं हो सकता। कभी-कभी इस स्तंभ को जीवंत बनाने के लिए संपादकीय विभाग के लोग ही किसी ऐसे विषय पर अपनी ओर से चर्चा का की श्रीगणेश करते हैं जिस पर जनता का ध्यान तुरंत जाता है और पक्ष-विपक्ष में पत्र आने शुरू हो जाते हैं।

पाठकों के ये पत्र अधिकतर किन विषयों पर होते हैं ? प्रायः संपादकीय नीति के पक्ष या विपक्ष में ही सामान्य जन अपने विचार प्रकट करते हैं। जो पत्र इस इस स्तंभ में प्रकाशित होते हैं उनके समर्थन या विरोध में भी पाठकों के पत्र आते हैं। समाचार-पत्र में प्रकाशित लेखों के बारे में भी पत्र आते हैं। अनेक बार किसी सामान्य या असामान्य समाचार के संबंध में पाठक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। कभी-कभी किसी दार्शनिक या साहित्यिक विषय पर भी इसी स्तंभ में वाद-विवाद चलता है: जैसे, मनुष्य को शांति कैसे मिल सकती है ? क्या रावण के दस सिर थे ? तुलसीदास जी का जन्म-स्थान कौन-सा है—राजापुर, सोरों, चित्रकूट या वाराणसी ? रामचरितमानस के विभिन्न पाठों की एकरूपता की समस्या, हिंदी की वर्तनी की समस्या, आदि-आदि।

शिकायती पत्र

हिंदी के समाचार-पत्रों में सब से अधिक पत्र होते हैं—व्यक्तिगत शिकायतों के। इससे हिंदी-भाषी समाज की आर्थिक और सामाजिक दशा का भी अपने आप बोध हो जाता है। अन्य प्रादेशिक भाषाएं बोलनेवाले लोगों की भी स्थिति संभवतः हिंदी-भाषी समाज से बेहतर नहीं है, पर अंग्रेजी भाषा के समाचार-पत्रों में व्यक्तिगत शिकायतों के पत्रों की न्यूनता इस बात का संकेत तो है ही कि भारत का आंग्ल भाषा-भाषी समाज उतना अभावग्रस्त, शोषित और पीड़ित नहीं है, जितना गैर आंग्ल भाषा-भाषी समाज है। ये व्यक्तिगत शिकायतें भी बड़ी विविध ढंग की होती हैं—कहीं किसी को भविष्यनिधि का पैसा नहीं मिला, विधवा को उसके स्वर्गीय पति की पेंशन नहीं मिली, डाकखाने से मनीआर्डर गायब हो गया, विद्यार्थी को उसका परीक्षा-परिणाम या रोल नम्बर नहीं मिला, किसी डाकखाने में लिफाफे या पोस्टकार्ड ही खत्म हो गये, कोई अध्यापक या नगर निगम का चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी तीन मास से वेतन न मिलने से परेशान है, कहीं बस-सर्विस ठीक नहीं है, कहीं यात्रियों से कंडक्टर के दुर्व्यवहार की शिकायत है, कहीं दिल्ली दुग्ध-योजना के अन्तर्गत बने दुग्धकेन्द्रों पर अव्यवस्था की शिकायत है, कहीं सड़कें टूटी होने, और नालियों की सफाई न होने की शिका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत है। ऊपर की मंजिल पर पानी न चढ़ने और चाहे जब बिजली गुल हो जाने की शिकायत तो आम है। यातायात-नियमों के उल्लंघन और पुलिस की ज्यादती की शिकायत भी आम है, कहीं किसी सरकारी विभाग की धांधली की शिकायत है, कहीं किसी सरकारी अफसर की रिश्वत और भ्रष्टाचार की शिकायत है, रेलों में कुलियों और आरक्षण सम्बन्धी शिकायतों की भी कमी नहीं होती— इस प्रकार दैनिक जीवन में सामान्य नागरिक को जिन-जिन परेशानियों से गुजारना पड़ता है उन सबकी शिकायत वह पत्र लिखकर अखबार में छपवाना चाहता है।

प्रश्न यह है कि अखबार में छपे इन शिकायती पत्रों का कुछ प्रभाव भी होता है या नहीं ? इसका उत्तर यह है कि जो समाचार-पत्र जितना अधिक प्रतिष्ठित होता है और जिसका जितना अधिक प्रसार होता है उसमें छपे पत्र का उतने ही बड़े पैमाने का असर होता है। शायद छोटे-मोटे अखबारों में प्रकाशित शिकायती-पत्रों का उतना असर नहीं भी हो। इसलिए बड़े अखबारों के कार्यालयों में संपादक के नाम भेजे गये शिकायती पत्रों की भरमार रहती है। कभी-कभी पाठक किसी सरकारी अधिकारी को, थानेदार को, मन्त्री को, प्रधानमन्त्री को या राष्ट्रपति को भेजे गये अपने व्यक्तिगत शिकायती-पत्र की प्रतिलिपि संपादक के पास भेजते हैं, परन्तु कोई संपादक इन प्रतिलिपि वाले पत्रों को छापना पसंद नहीं करता।

कभी-कभी इस स्तंभ में व्यक्तिगत राग-द्वेष से प्रेरित पत्र भी छप जाते हैं। किसी बनावटी नाम से या किसी अन्य व्यक्ति के नाम से भी पत्र भेजने से लोग नहीं चूकते और कभी-कभी ऐसे पत्र छप भी जाते हैं। पर इसमें संपादक का कोई दोष नहीं होता, क्योंकि पाठक से अपरिचित होने या दूरस्थ होने के कारण संपादक पाठक की ईमानदारी की परख नहीं कर सकता। वह अपनी सहज उदारता या नैतिक जिम्मेदारी की भावना से उस पत्र को प्रकाशित कर देता है। जब अदालत की मार्फत उसे किसी व्यक्ति की मानहानि का नोटिस मिलता है तो पेशियां भुगताने में परेशान उसी को होना पड़ता है, क्योंकि कानून की दृष्टि से पत्र का लेखक उस मानहानि के मामले की पकड़ में नहीं आता, पर उस पत्र को प्रकाशित करके जनता के समक्ष लाने वाला संपादक कानून के शिकंजे से नहीं बच पाता। इससे यह भी स्पष्ट है कि इस स्तंभ का संपादन करने वाले व्यक्ति की कितनी अधिक जिम्मेदारी होती है।

समाचार-पत्र मूल रूप से जनता-जनार्दन की सेवा के लिए है, इसलिए होना तो यह चाहिए कि शिकायती पत्र प्राप्त होने पर उसकी प्रतिलिपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक की ओर से उस संबद्ध अधिकारी को भेजी जाय जिसके विरुद्ध शिकायत की गयी है, फिर उसका जो उत्तर आये उस उत्तर के साथ वह शिकायती पत्र अखबार में प्रकाशित किया जाय, परन्तु समाचार-पत्र कार्यालय का काम इससे बहुत बढ़ जायगा। अंग्रेजी का 'स्टेट्समैन' कुछ अर्से से इस प्रकार की परम्परा चला रहा है, परन्तु हिंदी के किसी समाचार-पत्र द्वारा अभी तक इस प्रकार की किसी नियमित कार्रवाई की सूचना देखने-सुनने में नहीं आयी।

ये शिकायती पत्र स्वयं पत्र-लेखक व्यक्ति की दृष्टि में जितने महत्वपूर्ण होते हैं उतने महत्वपूर्ण अन्य पाठकों की दृष्टि में नहीं होते। यदि संपादक के नाम पत्र वाले स्तंभ में ऐसे शिकायती-पत्रों की ही भरमार हो तो अन्य पाठक 'बोर' हो सकते हैं और स्तंभ का स्तर भी गिरता है, परन्तु इन शिकायती पत्रों से सर्वथा किनारा कर लेना ही उचित नहीं होगा। इसलिए अच्छा यह है कि सप्ताह में एक या दो दिन निश्चित कर दिये जायं जब इस स्तंभ में केवल शिकायती पत्र ही प्रकाशित हों और शेष अन्य दिनों में शिकायती पत्र न देकर ऐसे पत्र प्रकाशित किये जायं जो अधिक से अधिक जनता की विविध समस्याओं को समाविष्ट करने वाले हों या विचारोत्तेजक हों और जिनमें बुद्धिजीवी लोग भी रुचि ले सकें।

कभी-कभी किसी पत्र के सम्बन्ध में संपादक की पाद-टिप्पणी आवश्यक होती है जिसमें संपादक की ओर से किसी प्रश्न का उत्तर या सफाई दी गयी होती है। कभी ऐसा अवसर भी आता है जब संपादक को किसी पत्र के प्रकाशन के लिए खेद-प्रकाश करना पड़ जाता है। वह स्थिति निस्संदेह प्रिय नहीं होती। पर इससे घबराना क्यों? जनसेवा की यह भी एक अनिवार्यता है। जब कभी ऐसा करना जरूरी हो तब शालीनता और विनम्रता के साथ खेद-प्रकाश में भी संकोच नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक रूप से जिन पत्रों का जवाब देना जरूरी हो, वह भी दिया ही जाना चाहिए।

कभी-कभी 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ में बारंबार एक ही विषय के पक्ष-विपक्ष में पत्रों के प्रकाशन से वह विषय जनता में आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेता है। वह आंदोलन उग्र भी हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि वह आंदोलन समाचार-पत्र के दृष्टिकोण के समर्थन में ही हो। जनता प्रायः भावुक अधिक होती है, तर्कशील कम। इसलिए आंदोलन के अवांछनीय रूप ग्रहण करने की संभावना उपस्थित होते ही उस प्रकार के पत्रों का प्रकाशन बन्द कर दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में यहां एक उदाहरण याद आ रहा है। 'हिंदुस्तान' के रविवासरीय संस्करण में कुछ वर्ष पहले 'वंदे मातरम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत के प्रणेता और भारतीय साहित्य में नवयुग के सूत्रधार साहित्य-राजर्षि स्व. श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की रामायण के सम्बन्ध में एक व्यंग्य-प्रधान रम्य रचना छपी। स्वयं 'हिंदुस्तान' ने ही अपने लोकवाणी स्तंभ में उस रचना के पक्ष-विपक्ष में पत्र देने प्रारम्भ किये। धीरे-धीरे आंदोलन इतना तूल पकड़ गया कि उसने साहित्यिक स्तर से हटकर राजनीतिक रूप ग्रहण कर लिया। उस समय दिल्ली में जनसंघ का प्रशासन था। प्रशासन भी भावना की रौ में बह गया। बड़ी कठिनाई से वह मामला शांत हो सका। इसी प्रकार विश्व हिंदी सम्मेलन को लेकर 'नवभारत टाइम्स' में छपे एक संपादकीय 'हिंदी मेला : आगे क्या ?' को लेकर सम्मेलन के एक कार्यकर्ता ने उसके विरुद्ध जब एक पत्र आग्रहपूर्वक छपवा दिया तो उस पत्र के विरुद्ध सैंकड़ों पाठकों ने इतने आक्रोशपूर्ण पत्र लिखे कि उस विषय को तुरन्त विश्राम देना पड़ा। कहने का भाव इतना ही है कि 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ में किसी वाद-विवाद को प्रारम्भ करना तो समाचार-पत्र की लोकप्रियता में सहायक हो सकता है पर उस वाद-विवाद को किस स्तर तक लाकर समाप्त कर देना चाहिए, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है।

संपादकीय लेख (अग्रलेख)

अब हम आते हैं संपादकीय लेख (या अग्रलेख) पर। यह संपादकीय पृष्ठ का सबसे महत्वपूर्ण अंग है जिसके साथ संपादक का सीधा सम्बन्ध है। यों तो समाचार-पत्र में जो कुछ छपता है उस सभी के लिये संपादक जिम्मेदार होता है, पर संपादकीय लेख तो अक्षरशः संपादक और समाचार-पत्र के विचारों तथा नीति का दर्पण होता है। यह संभव है कि अमुक संपादकीय लेख स्वयं संपादक की कलम से न निकला हो। अब वह जमाना लद गया जब हिंदी पत्रों में संपादक का अर्थ होता था ऐसा लिक्खाड़ व्यक्ति जो प्रतिदिन एक या दो अग्रलेख नियमित रूप से लिखता हो। आधुनिक युग का संपादक सप्ताह में (या महीने में) एक अग्रलेख भी लिख दे तो उसके संपादकत्व में कमी नहीं आती। सभी बड़े पत्रों में अग्रलेख लिखने के लिए एकाधिक व्यक्ति सह-संपादक के रूप में नियुक्त रहते हैं। इतना अवश्य है कि वे संपादक के परामर्श के बिना कभी कुछ नहीं लिखते,क्योंकि वे जो कुछ भी लिखते हैं उसके लिए जिम्मेवार संपादक ही समझा जाता है, समाचार-पत्रों के कार्यालय में अग्रलेख-लेखन बहुत गौरवपूर्ण कार्य समझा जाता है, इसलिए कभी किसी नौसिखिये को यह काम नहीं दिया जाता—कार्यालय के वरिष्ठतम व्यक्ति ही इस काम के उपयुक्त समझे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुरस्य धारा

संपादक (या अग्रलेख-लेखक) के समक्ष बड़ी विषम परिस्थिति होती है। प्रत्येक राष्ट्र में दो वर्ग होते हैं—एक शासक और दूसरा शासित। संपादक मुख्य रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। सरकारें बदल सकती हैं, पर जनता नहीं बदलती। शासन की प्रणाली चाहे कोई भी क्यों न हो। सरकार को जनता पर शासन करने के लिये कुछ कायदे-कानून बनाने पड़ते हैं। यह ठीक है कि जनतन्त्र में जनता के प्रतिनिधि ही संविधान का निर्माण करते हैं और जनता के प्रतिनिधि ही विधान-सभाओं में या लोकसभा में जाते हैं और जनता के प्रतिनिधि ही मन्त्री आदि चुने जाते हैं, पर जो भी कायदे-कानून बने हैं वे संविधान के अनुकूल हैं या नहीं, स्वयं सरकारी अधिकारी भी उनका पालन करते हैं या नहीं, चुनावों में निष्पक्षता बरती जाती है या नहीं, कहीं प्रच्छन्न रूप से व्यक्तिगत स्वार्थों की खातिर किसी स्तर पर भ्रष्टाचार को प्रश्रय तो नहीं दिया जाता— इत्यादि बातों के निर्णय के लिए न्यायालय हैं, या उन्हें सबके सामने लाने के लिए समाचार-पत्र हैं। जनतन्त्र में अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का महत्व सबसे अधिक है और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का अर्थ है—प्रेस की स्वाधीनता। समाचार-पत्र ही जनता के न्यायालय हैं जिनके द्वार जनता-जनार्दन के लिए सदा खुले रहने चाहिए। थामस जैफर्सन ने अमेरिका के राष्ट्रपति वाशिंगटन को एकबार लिखा था—'कोई भी सरकार बिना अंकुश (सेंसर) के नहीं होनी चाहिए और जब तक प्रेस स्वाधीन है तब तक कोई सरकार बिना अंकुश के रहेगी भी नहीं।" इसका अभिप्राय यह हुआ कि सरकार जनता पर अंकुश लगाती है और समाचार-पत्र सरकार पर अंकुश का काम करते हैं।

जहां समाचार-पत्रों का इतना महत्व है वहां उनका नैतिक कर्त्तव्य भी अत्यन्त महान है। बड़े समाचार-पत्र बिना पूंजी के नहीं निकल सकते। पूंजी अर्थात् पूंजीपति। पूंजीपति अर्थात् आर्थिक नियन्त्रण और निहित स्वार्थ। भारत के प्रायः सभी बड़े अखबार पूंजीपतियों से संबद्ध हैं। जब देश से गरीबी हटाने के लिए, या पिछड़े वर्गों को उन्नति के समान अवसर प्रदान करने के लिए, या अत्यधिक आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सरकार कुछ अंकुश लगाती है, तब निहित स्वार्थों का बौखलाना भी स्वाभाविक है। ऐसे समय संपादक की बड़ी कड़ी परीक्षा होती है। वह सरकार का पक्ष ले, या अपने मालिकों का पक्ष ले, या जनता-जनार्दन का पक्ष ले? जनता तो बेचारी निरीह है, वह तो पूंजीपति और सरकार दोनों के शोषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समान रूप से शिकार होती है । जनता के मन में संपादक की तस्वीर ऐसी है कि वह समझती है कि जब और कहीं सुनवायी नहीं होगी तब यहां तो होगी ही । संपादक इस प्रकार तीन ओर के दबावों से घिरा होता है— किसी एक का पक्ष लेता है तो बाकी दोनों पक्ष उससे नाराज होते हैं । इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना आसान नहीं । संस्कृत के कवि ने कहा हैं :

नरपति हितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः ।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ।।

—अर्थात्, "जो राजा का पक्ष लेता है, प्रजा उससे द्वेष करने लगती है, जो प्रजा के हित की बात करता है वह राजाओं की नजरों से गिर जाता है । इस प्रकार जब दोनों ओर समान रूप से विरोधी परिस्थिति हो तब ऐसा व्यक्ति बहुत दुर्लभ है जो राजा और प्रजा दोनों का काम करने वाला हो और दोनों का समान भाजन हो ।" संपादक एक ऐसा ही दुर्लभ प्राणी है ।

ऐसे समय संपादक को स्वयं अपने लिए कुछ मानदंड निर्धारित करने चाहिए । वह जनता के हित को सर्वोपरि स्थान दे—यही उसके गौरवपूर्ण पद का तकाजा है । उसे सदा सत्य का पक्ष लेना है । यद्यपि पत्र के स्वामी पूंजीपति को और सर्वसत्ताधीश सरकार को अप्रसन्न करना उसकी कुर्सी के लिए संकट उपस्थित कर सकता है, पर वह ऐसी भाषा का प्रयोग तो कर ही सकता है जिससे जन-हित भी सुरक्षित रहे और सरकार और पत्र-स्वामी भी अप्रसन्न न हों । उसकी सारी कुशलता तीन घोड़ों की सवारी करने की जिमनास्टिक में ही छिपी है ।

संपादक का काम तलवार की धार पर चलना है । उपनिषद् में कहा है—"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदंति"—वही बात संपादक के साथ है । सबको प्रसन्न कोई कर नहीं सकता और संपादक के पद पर रहते हुए वह आलोचना से बच नहीं सकता—आलोचना करने से भी और आलोचना सुनने से भी । पर आलोचना करते हुए इतना ध्यान अवश्य रखा जा सकता है कि आलोचना विध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक हो । किसी व्यक्ति को चिढ़ाने की या उसका मजाक उड़ाने की कोशिश न की जाय । इस बात का सदा ध्यान रहे कि जिसकी आलोचना की जा रही है वह भी एक जीवित मानव ही है । इसके मन में भी संवेग और आवेग उसी प्रकार उठते हैं जैसे संपादक के मन में । इसलिए आलोचना करते हुए मानवीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालीनता का पूरा-पूरा ध्यान रहे। जैसे, मान लीजिए कि आप किसी नगराधिकारी की आलोचना कर रहे हैं, तब आप अपने आलेख में यों लिख सकते हैं : "हम अमुक नगराधिकारी के अमुक कार्य को उचित नहीं समझते। हो सकता है कि उसने अपना निर्णय किसी गलत सूचना के आधार पर लिया हो, इसलिए हमारा मूल आक्रोश उस गलत सूचना पर है। यह भी संभव है कि हमारे विचार उस नगराधिकारी से भिन्न हों, किन्तु जो बात हमें जैसी लगी वैसा ही लिखना हमारा कर्त्तव्य है। वैसे सामान्य रूप से हम उनके प्रशंसक हैं।" इस प्रकार की टिप्पणी से नगराधिकारी क्रोधान्वित न होकर अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने को अवश्य प्रेरित होगा।

अग्रलेख-लेखक

वैसे तो पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले प्रत्येक युवक को भारत के इतिहास और भूगोल का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, परन्तु अग्रलेख लिखने के आकांक्षी पत्रकारों के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि भारत का इतिहास और भूगोल अंग्रेजी इतिहास-भूगोल की पुस्तकों से न पढ़ा जाय, प्रत्युत भारतीय दृष्टि से पढ़ा जाय। इस काम के लिए पत्रकारिता की पाठविधि में श्री जयचन्द्र विद्यालंकार द्वारा रचित 'भारत भूमि और उसके निवासी' तथा 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' नामक दोनों पुस्तकें अनिवार्य कर दी जायं तो बहुत लाभ हो। यह कहना इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि हमने दिग्गज संपादकों की लेखनी से भी खम्भात की जगह 'कैम्बे' और बलसाड़ की जगह 'बुलसार' निकलते देखा है। हिन्दी के एक मूर्धन्य पत्र में तो हमने बारामूला के स्थान पर 'बड़ा मुल्ला' भी छपा देखा है, वह भी मुख्य समाचार के महाशीर्षक में। इसके अतिरिक्त अग्रलेख-लेखक को पाठकों के स्वभाव, उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उनके मतामत से भी सुपरिचित होना चाहिए।

संपादकीय लेख का लेखक विचारों की दुनिया में रहता है। पर उसे पता होना चाहिए कि दुनिया में कहां क्या हो रहा है। विशेषज्ञता और टैक्नोलाजी के इस युग में उसे इस बात की पहचान होनी चाहिए कि मानवीय आकांक्षाएं और दुर्बलताएं क्या हैं। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि कोई भी घटना उसी अनुपात में बड़ो होती है जिस अनुपात में वह मानवों को प्रभावित करती है। उसके लिए कोरा ज्ञान उतना जरूरी नहीं है जितना कि संवेदनशील एवं बुद्धिमान होना। अणुयुद्ध का जनता पर क्या असर होगा यह जानने के लिए भौतिकविद् होना जरूरी नहीं है, पर संवेदनशील होना जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । अन्य व्यवसायों में लोग कम से कम चीजों के बारे में अधिक से अधिक जानते हैं, पर यहां इससे उल्टा है अर्थात् उसे अधिक से अधिक चीजों के बारे में न्यूनातिन्यून जानना ही चाहिए । इसीलिए पत्रकार बनने की पहली सीढ़ी पर कदम रखते ही बताया जाता है कि किसी एक विषय के विशेषज्ञ बनो और अन्य अनेक विषयों को थोड़ा-बहुत जानो ।

कर्त्तव्य : अन्य व्यवसायों की तरह अब पत्रकारिता भी पैसा कमाने और जीविका चलाने का एक धंधा बन गयी है, पर अग्रलेख-लेखक को अपने निम्नलिखित कर्त्तव्यों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(1) वह तथ्यों को ईमानदारी से पेश करे और पाठकों को कभी पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न न करे,

(2) वर्णित तथ्यों से निष्कर्ष निकालने में सदा निष्पक्ष रहे,

(3) व्यक्तिगत स्वार्थों से दूर रहे और कभी भ्रष्टाचार में लिप्त न हो,

(4) अपनी भूल की ओर इंगित करने वाले या अपने मत से विपरीत मत रखने वाले लोगों का उचित आदर करे,

(5) नयी जानकारी के आधार पर अपने निष्कर्षों पर पुनर्विचार करने को सदा तत्पर रहे,

(6) जीवन की जनतंत्रीय विचारधारा में उसकी आस्था हो और अपने विचारों में वह सदा दृढ़ रहे ।

(7) पत्रकारिता के स्तर को उन्नत रखने में सदा अपने सहयोगियों की सहायता करे और सदा यह ध्यान रखे कि सहयोगियों की प्रतिष्ठा में ही उसकी अपनी और समाचार-पत्र की प्रतिष्ठा है ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में जिसके नाम से सर्वोच्च पुरस्कार दिया जाता है, वह पत्रकार-प्रवर पुलित्जर सदा तीन बातों पर जोर दिया करता था— 1. संक्षेप 2. सीधापन (डायरेक्टनेस) और 3. शैली । कभी-कभी अग्रलेख इतने लंबे हो जाते हैं कि पाठक का मन उन्हें पढ़ने का नहीं होता । यदि 500 शब्द लिखना चाहते हों तो थोड़ा ठहर कर सोचो कि क्या इससे आधे से काम नहीं चल सकता । फिजूलखर्ची जब सभी जगह निंदनीय है तो शब्दों के प्रयोग के बारे में भी वह अपवाद क्यों बने ? अग्रलेख की सफलता इसी बात में है कि उसका लेखक जो कुछ कहना चाहता था उसे वह सही ढंग से कह सका या नहीं ? वह पाठक की दृष्टि से सुसंगत है या नहीं ? पाठक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में जो प्रतिक्रिया और विचार-शृंखला वह पैदा करना चाहता था वह कर सका या नहीं ? और इस दृष्टि से अच्छे अग्रलेख की उसी तरह कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती जैसे किसी अच्छी कविता की ।

अग्रलेख-लेखक का काम इतना ही है कि वह किसी केन्द्रीभूत विचार पर अपना ध्यान केन्द्रित करे और उसे पाठक के मन पर उतार दे । पाठक सहज ही जो बात अनुभव करता है, अग्रलेख उसके लिए उसे युक्तियां देता है । जनता अग्रलेख को अपने मत के समर्थन में तर्क जुटाने के लिए पढ़ती है । अच्छा अग्रलेख पाठक को चिंतन के लिए प्रेरित करता है । संपादक की निष्पक्षता पर यदि पाठक को विश्वास हो तो वह संपादक के मत से सहमत भी होता है । पर केवल एक संपादकीय से पाठक का मत-परिवर्तन करना संभव नहीं । वास्तव में तो संपादकीय लेख का मुख्य कार्य पाठक को विचार करने के लिए प्रेरित करना है । किसी दल, वर्ग, या संप्रदाय का समर्थन या विरोध संपादक का काम नहीं । हमेशा समाधान देना या 'सही' होने का गर्व भी इष्ट नहीं । यह संभव है कि किसी राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे पर कभी वह ऐसा प्रबल संघर्ष करे मानो धर्मयुद्ध कर रहा हो, पर ऐसे अवसर हमेशा नहीं आते । जो संपादक चाहता है कि सार्वजनिक हितों के विषयों पर तर्कसम्मत और निष्पक्ष विचार-विनिमय हो, उसे वैसी परिस्थितियों के निर्माण के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए ।

किन बातों से बचें ?

जैसे कोई वैज्ञानिक सत्य का अन्वेषण करता है, वैसे ही संपादकीय लेखक को भी सत्य का अन्वेषण करना होता है । अपने व्यवसाय और समाज के प्रति यही उसकी ईमानदारी है । निष्कर्ष निकालते समय उसे हेत्वाभासों से बचना चाहिए । एक संपादक ने किसी लेखक से पूछा : "क्या आपने पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं में से चोरी करना छोड़ दिया है ?" अब यदि इस प्रश्न का उत्तर लेखक 'हां' में दे तो उसका अर्थ होगा कि वह अब से पहले तक पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं में से चोरी करता आ रहा है । यदि प्रश्न का उत्तर 'न' में दिया जाय तो अर्थ होगा कि वह अब भी चोरी करता है । इसी प्रकार का एक और प्रश्न है—"क्या आपने अपनी पत्नी को पीटना छोड़ दिया है ?" इस प्रश्न का भी 'हां' या 'न' में उत्तर देना खतरे से खाली नहीं है । न्याय-शास्त्र की परिभाषा में इसे "उभयतः पाशा रज्जुः" अर्थात् डबल फंदे वाली रस्सी कहा जाता है क्योंकि इसके दोनों सिरों पर फंदा है । इसी प्रकार के और अनेक हेत्वाभास हो सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रलेख में जिन अन्य बातों से बचना चाहिए, वे हैं निर्जीवता, व्यर्थता, अज्ञानता, उग्रता, कट्टरता और छल। एक और चीज है जिससे बचने की सलाह अग्रलेख के लेखकों को दी जाती है। पाश्चात्य पत्रकारों ने उसका नाम रखा है—'अफगानिस्तानिज्म'। इसका अभिप्राय है कि बहुत दूर की कौड़ी लाने की फिराक में, भारत में बैठकर होनोलूलू और टिंबकटू के बारे में अग्रलेख लिखने का प्रयास करना दुस्साहस मात्र है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपनी सिद्धांतप्रियता और कट्टरता की आड़ में कहीं विरोधी के साथ अन्याय न कर बैठें। जनता के हितों के समर्थन में प्रबल आंदोलन चलाने का सम्पादक को अधिकार ही नहीं है बल्कि यह उसका कर्त्तव्य है, पर इस आंदोलन में इतना उग्र और आक्रामक रुख नहीं अपनाना चाहिए कि समाचार-पत्र के कार्यालय पर ही ताला पड़ जाय।

कांतासम्मत : अग्रलेख संबंधी कुछ अन्य दोष भी हैं जिनसे सम्पादक को सदा बचना चाहिए। जैसे बिना गंतव्य स्थान का निश्चय किये चल पड़ने से पथिक कभी मंजिल पर नहीं पहुंच सकता, वैसे ही सम्पादक को भी लिखने से पहले लेख का उद्देश्य मन में निर्धारित कर लेना चाहिए—इस सीमा तक कि अग्रलेख का सार एक वाक्य में बताया जा सके। अपर्याप्त तथ्यों के आधार पर अपनी लेखनी से कतिपय निष्कर्षों की घोषणा किसी भी सम्पादक को शोभा नहीं देती। जो भी अग्रलेख लिखा जाय, उसमें साहित्यिक पुट रहना चाहिए, असाहित्यिक लेखन को कोई भी पाठक पसंद नहीं करता। अग्रलेख कभी लापरवाही से न लिखा जाय, लिखने में पूरी सावधानी बरती जाय। परम अतिशयता-बोधक (सुपरलेटिव डिग्री) वाक्यों के प्रयोग से सदा बचना चाहिए। अधूरे वाक्य, अपरिचित और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग, गलत वर्तनी, संज्ञा का विशेषण की तरह प्रयोग और माध्यम पुरुष का प्रयोग भी पाठक के मन में संपादक की योग्यता के प्रति शंका पैदा करते हैं। हीनोपमा, या शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का पंगु प्रयोग भी सम्पादक का मान घटाता है। लंबे-लंबे वाक्य, या सुदीर्घ पैरेग्राफ और बहुत लम्बा (या बहुत छोटा) अग्रलेख भी पाठक के लिए रुचिवर्द्धक नहीं हो सकता।

सम्पादक सर्वज्ञ नहीं होता, उसके मन में भी संदेह और शंकाएं होती हैं। इस संदेहों और शंकाओं को छिपाने के लिए, या विवाद से बचने के लिए, या अपनी निष्पक्षता प्रकट करने के लिए कुछ खास ढंग के वाक्य-खंड प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'जरूरी प्रतीत होता है', 'ऐसा हो सकता है', 'यह देखना शेष है', 'एक तरह से', 'एक रास्ता यह भी है', 'यह जानना कठिन है',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आशा के सबल आधार', 'स्थापना सही प्रतीत होती है', 'यह स्पष्ट लगता है', 'किसी कदर'—इत्यादि वाक्य-खंडों के प्रयोग से लेखक के युक्तियुक्त होने का आभास होता है, कम से कम यह तो लगता ही है कि लेखक में दुराग्रह नहीं है। पर इन वाक्य-खंडों के बारंबार प्रयोग से लेखक का अज्ञान ही सामने आता है। यों अपने अज्ञान को छिपाने के लिए भी सम्पादक लोगों ने खास ढंग की एक शब्दावली बना रखी है। जरा उसका भी मुलाहिजा लें— 'सावधानीपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता है', 'सही दिशा में एक कदम है', 'उसके बारे में कुछ न कुछ किया जाना चाहिए', 'इसकी जिम्मेदारी सीधी उन कंधों (जो कंधे सब से निकट नजर आयें) पर है', 'यह चेतावनीपूर्ण स्थिति है', 'शाश्वत जागरूकता आवश्यक है', 'कटु वास्तविकताएं', 'नग्न तथ्य', 'दोषपूर्ण चिंतन', 'हम कहने का साहस करते हैं', आदि-आदि।

अच्छा सम्पादकीय लिखने में समय लगता है। कभी-कभी ऐसे सम्पादकीय लेख पढ़ने को मिलते हैं जिन्हें देखकर लगता है कि अच्छे-भले विषय को भी चक्की के दो पाटों के बीच में रखकर पीस दिया गया हो, उसका कचूमर निकाल दिया गया हो, या जैसे किसी कसाई के छुरे के नीचे रखकर उसे जिबह कर दिया गया हो। इसे देहाती भाषा में रांध काटना या घास काटना कह सकते हैं। एक बार मध्यप्रदेश के एक प्रमुख पत्र के सम्पादक दस-पन्द्रह दिन के लिए दिल्ली आये, तो उन्होंने बड़े गर्व के साथ कहा : "मैं तो आगामी 15 दिन के लिए सब अग्रलेख पहले से ही लिखकर यहां आया हूं।" ऐसे अग्रलेखों की क्या कीमत होगी और उनके पीछे कितना चिंतन तथा पाठकों का मार्गदर्शन होगा, यह स्वतःसिद्ध है। अपने पाठकों पर उद्देश्यहीन, तर्कहीन और असंगत वाक्यों की बौछार व्यर्थ है : अच्छा गद्य वह है, जिसमें पद्य की-सी लय हो। जब तक सम्पादकीय लेख में अर्थ-गांभीर्य, वाग्-वैदग्ध्य और कुछ चमत्कार न हो, तब तक पाठक को उसमें आनन्द नहीं आता। सम्पादक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रभावोत्पादन के लिए चिल्लाना जरूरी नहीं है। मक्खियों को मारने के लिए कोई समझदार व्यक्ति हथौड़े का प्रयोग नहीं करेगा। कभी ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब सचमुच हथौड़े की जरूरत हो। अपने हथौड़े या गदा को उचित अवसर के लिए सुरक्षित रखिए। अनावश्यक विशेषणों से बात में जोर नहीं आता। इसके अलावा अपनी लेखनी से कभी किसी को बदमाश और बेईमान मत कहिए, हां सिद्ध करिए कि अमुक व्यक्ति सचमुच बदमाश और बेईमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रलेख कैसे लिखे जाते हैं ?

इतने अंतरंग और बहिरंग विश्लेषण के बाद अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अग्रलेख लिखा कैसे जाय ? विमान-चालन के लिए कोई कह सकता है—उसमें क्या रखा है, विमान में बैठो और उसे उड़ाना शुरू कर दो। उचित प्रशिक्षण पाकर विमानचालक बन जाने के पश्चात् यह काम इतना ही आसान हो सकता है, पर बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये किसी नौसिखिये के लिए विमान चलाना संभव नहीं है। यही बात अग्रलेख के लेखक के साथ है। यहां 'पंडित सोई जो गाल बजावा' या 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' वाली कहावत लागू नहीं होती। अग्रलेख-लेखन के लिए भी उचित प्रशिक्षण, पर्याप्त अनुभव और अभ्यास अपेक्षित है।

सब से पहले तो विषय तलाश करिए, जिस पर अग्रलेख लिखा जाना है। समाचार-पत्र कार्यालयों में यह काम प्रायः मुख्य सम्पादक करता है। प्रतिदिन निश्चित समय पर वह अपने सहयोगी अग्रलेख-लेखकों की बैठक बुलाता है, उनसे उस दिन के घटनाचक्र के विषय में विचार-विनिमय करता है और फिर यह निश्चय करता है कि अमुक घटना-विकास के बारे में हमारे समाचार-पत्र को क्या विचार-दिशा अपनानी चाहिए और उसके बाद अपने सहयोगियों को उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार विषय बांट देता है कि अमुक-अमुक विषय पर अमुक-अमुक व्यक्ति अग्रलेख लिखेगा।

फिर अग्रलेख-लेखक अपने-अपने विषय के अनुसार सामग्री जुटाना प्रारम्भ करता है। पुस्तकालय में रखे संदर्भ-ग्रंथों और समाचार-पत्रों की विषयवार संचित कतरनों की सहायता से वह उस विषय के संबंध में अधिकतम और नवीनतम जानकारी हासिल करता है। साथ ही ताजा समाचारों पर भी पैनी नजर डालता है क्योंकि घटना-प्रवाह इतनी तेजी से परिवर्तित होता है कि लिखते-लिखते ही अकस्मात् सारा लिखा हुआ असंगत और कालातीत बन सकता है। फिर जो कुछ लिखना होता है उसकी रूपरेखा वह अपने मस्तिष्क में तैयार करता है और उसके बाद लिखना प्रारम्भ करता है। पहले विषय-प्रवेश, फिर उसका क्रमिक विस्तार और अंत में निष्कर्ष—इस प्रकार प्रत्येक सामान्य अग्रलेख में प्रायः तीन अनुच्छेद (पैराग्राफ) होते हैं। कभी-कभी निष्कर्ष अग्रलेख के शुरू में ही बता दिया जाता है ताकि पाठक प्रारम्भ में ही निश्चय कर सके कि अग्रलेख उसके मतलब का है या नहीं।

लिखने के बाद लेखक स्वयं अपने लिखे हुए को पढ़ता है, उसे संवारता है, देखता है कि उसे और छोटा तो नहीं किया जा सकता। अग्रलेख-लेखक प्रायः आपस में एक दूसरे के लिखे हुए को पढ़ते हैं ताकि प्रमाद या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनवधानता के कारण कहीं कोई लेखनी-स्खलन (पेन-स्लिप) न रह जाय (एक बार अग्रलेख में द. वियतनाम के स्थान पर सब जगह द. कोरिया और उ. वियतनाम के स्थान पर सर्वत्र उ. कोरिया जा रहा था तथा एक अग्रलेख में पोखरन का परमाणु-विस्फोट अंतरिक्ष में करा दिया गया। दो व्यक्तियों की नजर मे गुजरने के बाद इस प्रकार की गलती की संभावना बहुत कम हो जाती है।) अंत में मुख्य सम्पादक सब अग्रलेखों को स्वयं देखता है और उनमें यथोचित संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करता है। उसके बाद वे अग्रलेख कंपोज होने के लिए प्रेस में भेज दिये जाते हैं।

कभी-कभी घटनाचक्र में आकस्मिक परिवर्तन हो जाने से अखबार के छपते-छपते मशीन रुकवा कर भी मैटर में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं। जो सम्पादक इतनी निगरानी नहीं रखते, वे कभी-कभी विद्रूप के शिकार हो जाते हैं। मान लीजिए कि कोई मान्य और लोकप्रिय नेता बीमार है, समाचार आया कि उसके स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। राष्ट्र के लिए उस नेता के जीवन की उपयोगिता समझते हुए आपने उसके स्वास्थ्य और चिर-जीवन की कामना करते हुए अग्रलेख लिख दिया। अकस्मात् आधी रात के पश्चात् उस नेता का स्वर्गवास हो गया। अगले दिन प्रातः समाचार-पत्र के प्रथम पृष्ठ पर उस नेता के स्वर्गवास का समाचार प्रमुख स्थान पर जा रहा होगा जब कि समाचार-पत्र के सम्पादकीय पृष्ठ पर अग्रलेख में आप उस नेता के स्वास्थ्य की कामना कर रहे हैं। इस प्रकार की असंगतियों से बचने के लिए ही जब किसी बड़े नेता की गंभीर दशा का समाचार मिलता है तब सम्पादकगण उसकी जीवनी और राष्ट्र के लिए किये गये उसके कार्यों का सचित्र विवरण तथा अन्य सामग्री पहले से ही तैयार रखते हैं ताकि अवसर आने पर वे पिछड़ न जायं।

शीर्षक और प्रथम वाक्य : अग्रलेख के शीर्षक और पहले वाक्य का भी बहुत महत्व होता है। शीर्षक की तुलना तो 'शो-विंडो' से की जाती है जो दूर से ही ग्राहक को आकर्षित कर अपने पास बुलाती है। प्रथम वाक्य ऐसा जायकेदार लुकमा होता है कि उसके मुंह में आते ही थाली में परोसा सारा भोजन चट कर जाने को जी चाहता है। यदि पाठक ने सहज भाव से रुचिपूर्वक सारा अग्रलेख पढ़ लिया तो लेखक का श्रम सार्थक हो गया। पाठक उस अग्रलेख से सहमत होता है या असहमत, यह बाद की बात है। उसकी प्रमुख सफलता इसी बात में है कि वह अधिक से अधिक पाठकों द्वारा पढ़ा जाय। अग्रलेखों को वैसे ही सब लोग नहीं पढ़ते। जो अपेक्षाकृत अधिक जिज्ञासु लोग उन्हें पढ़ते भी हैं, उनके पल्ले यदि बारंबार बोरियत ही पड़े,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वे भी पढ़ना छोड़ देंगे। अग्रलेख में प्रथम वाक्य का क्या महत्व है यह इस बात से भी स्पष्ट हो जायगा कि एक सुयोग्य साथी वर्षों से अग्रलेख लिखते आ रहे हैं, परन्तु 'अग्रलेख का प्रथम वाक्य क्या हो'—इस विषय पर प्रतिदिन वे अपने साथियों से अवश्य परामर्श करते हैं।

अग्रलेख-लेखकों का भी अपना मन और रुझान होता है, पर कभी-कभी उन्हें मन मारकर ऐसे विषयों पर भी अग्रलेख लिखने पड़ते हैं जिनमें स्वयं उनको भी रस नहीं आता। किसी राजनीतिक दल के समर्थन में, या नागरिक समस्याओं के संबंध में या नैतिकता संबंधी या, किसी दूरस्थ घटना के संबंध में अग्रलेख लिखना प्रायः अरुचिकर कार्य समझा जाता है। उसी अनुपात में महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मामलों पर, या ललित-कलाओं के सम्बन्ध में, या किसी को श्रद्धांजलि अर्पित करने, या सम्पादक के अपने निजी अनुभव एवं चिंतन से प्रसूत विनोदात्मक अग्रलेख में लिखने वाले का मन भी खूब रमता है।

अग्रलेखों के प्रकार

कुछ प्रमुख पत्रों ने अग्रलेखों की सामान्य दैनिक परम्परा से हटकर रविवार के दिन गैर-राजनीतिक या ग्रामीण जनता सम्बन्धी, या हल्के-फुल्के अग्रलेख देने प्रारम्भ किये हैं। उनमें एक प्रकार उद्धरण-प्रधान लेखों का भी है। साहित्यिक पुट अधिक होने के कारण शिक्षित और बुद्धिजीवी लोगों में ऐसे उद्धरण-प्रधान अग्रलेख लोकप्रिय भी हैं। आम तौर पर तो पाठक इसी बात से चकित होता है कि सम्पादक का ज्ञान कितना गहरा है, कितनी भाषाओं का वह पंडित है, और संस्कृत के कितने श्लोक, उर्दू और फारसी के कितने शेर, कुरान की कितनी आयतें, रवि बाबू के कितने गीत, तुकाराम के कितने अभंग, कबीर की कितनी साखियां और तिरुवल्लुवर के कितने पद तथा अन्य अनेक कितनी सूक्तियां उसे कंठस्थ हैं। पर पाठक को क्या पता कि आजकल सब प्रकार के उद्धरणों के संकलनों की पुस्तकें तैयार हैं। अलबत्ता उन उद्धरणों के यथास्थान प्रयोग के लिए अक्ल चाहिए। पर उद्धरणों की अधिकता से अग्रलेख उधार लिया हुआ-सा लगता है। यों ऐसे अग्रलेखों में श्रम भी बचता है, क्योंकि स्थान तुरन्त भरता जाता है। यदि उद्धरण-प्रधान अग्रलेखों में किसी एक केन्द्रीय विचार को सामने रखकर उसका विस्तार करते हुए इस प्रकार ताना-बाना बुना जाय कि लेख की समाप्ति पर वृत्त पूरा होता लगे, तो उस सुसंगत-सुगठित लेख को पढ़कर पाठक जितना आनन्द-विभोर होगा उतना ही वह बोर होगा असंगत, बेतुके, ऊटपटांग उद्धरणों की भरमार से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यतया समाज की सहायता के लिए जो अग्रलेख लिखे जाते हैं उनमें कुछ तो कर्त्तव्य-बोधक होते हैं—जैसे बाढ़, अकाल या भूकंप की विभीषिका के उपस्थित होने पर विपद्ग्रस्त लोगों की सहायता के लिए जनता को प्रेरित किया जाता है। कुछ उत्साहवर्धक अग्रलेख होते हैं—जैसे भारत-चीन या भारत-पाक संघर्ष के समय जनता का मनोबल ऊंचा रखने के लिए प्रायः लिखे जाते हैं। कुछ अग्रलेख पक्ष-समर्थक होते हैं—खास तौर से राजनीतिक दलों की ओर से प्रकाशित होने वाले दलीय पत्रों में ऐसे अग्रलेख अधिक मिलेंगे। कुछ जिहादी अग्रलेख होते हैं—जैसे हिन्दी के समर्थक पत्र हिन्दी के बारे में और अंग्रेजी समर्थक पत्र अंग्रेजी के बारे में प्रायः लिखते हैं, या सम्प्रदाय विशेष के पत्र अपने सम्प्रदाय के समर्थन में और दूसरे सम्प्रदाय के विरोध में ऐसे लेख लिखते हैं। कुछ अग्रलेख होली-दिवाली-विजयादशमी आदि पर्वों पर तथा स्वतन्त्रता-दिवस और गणराज्य-दिवस पर भी लिखे जाते हैं। कुछ अग्रलेख मौसम सम्बन्धी भी होते हैं—जैसे वसंत, ग्रीष्म, हेमंत आदि पर। हिन्दी के समाचार-पत्रों में ऐसे अग्रलेख प्रायः कम होते हैं, जबकि विदेशों के पत्रों में मौसम सम्बन्धी अग्रलेखों का भी अच्छा चलन है और वहां के लोग उन्हें चाव से पढ़ते हैं।

अग्रलेखों के विषयों के उक्त सामान्य क्षेत्र के अलावा एक विशिष्ट क्षेत्र भी है और वह क्षेत्र है, 1. राजनीतिक, 2. शिक्षा, 3. श्रमिक, और 4. अपराध का। इन चारों विषयों से संबद्ध समस्याओं पर लेखनी उठाते हुए सम्पादक के सामने मुख्य लक्ष्य केवल जन-हित होना चाहिए, वर्ग-हित नहीं।

लेखक पुरस्कार

ऊपर हम कह चुके है कि अच्छे अग्रलेख का मूल्य पैसों में नहीं आंका जा सकता। प्रश्न उठता है कि अग्रलेख-लेखक जो इतनी मगजपच्ची करता है, आखिर उसका पुरस्कार क्या है? अग्रलेख-लेखक के दो पुरस्कार हैं—प्रथम तो उसे आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलता है, और दूसरे उसे आनन्द की अनुभूति होती है। साहित्य में जिसे 'स्वांतः सुखाय' की संज्ञा दी गयी है, वही बात यहां भी है। जनता प्रायः अपना मुंह बंद किये क्षोभ-आक्रोश और अभाव-अभियोग की ज़िंदगी जीने पर विवश होती है। सम्पादक जनता को वाणी देता है। वह चाहता है कि उसके हीरे-मोतियों जड़े शब्द अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचे। उसके सुझाये गये सुझाव के अनुसार कार्य होता हुआ जानकर उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। यदि उसके सुझावों पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया, तब भी यही क्या कम है कि उसने अपना उद्गार वक्ष से बाहर निकालकर जनता के सामने रख दिया, उसका कर्त्तव्य पूरा हो गया। शायद उससे कभी कहीं, कोई लाभान्वित हो।

पांचजन्य

यदि महाभारत को एक विस्तृत समाचार-पत्र माना जाय तो श्रीमद्भगवद्गीता उसका अग्रलेख है। इस से बढ़कर मानव-जाति का हितकारक संदेश और कहां मिलेगा? इसलिए हे अग्रलेख लिखने वाले सम्पादक-प्रवर, तू भी मानव-जाति के हित के लिए प्रतिबद्ध है। अपना पांचजन्य शंख बजाये जा, जनता को जगाये जा। रवि बाबू कह गये हैं: "जदि तोर डाक शुने केउ ना आशे, तबे एकला चलो रे, एकला चलो रे।"

('पत्रकारिता : विविध आयाम' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों तो पत्रकारिता भी साहित्य का अंग ही है, पर वह ऐसा साहित्य है जो जल्दबाजी में और समय के साथ दौड़ लगाते हुए लिखा जाता है। इसीलिए वह अस्थायी होता है.। समाचार-पत्र को लोग आज पढ़ते हैं और कल वह रद्दी के हवाले हो जाता है। पर अन्य साहित्य न इतनी जल्दबाजी में लिखा जाता है, न इतना अस्थायी होता है। उसके पीछे अध्ययन-मनन-चिन्तन होता है जो उसे स्थायित्व प्रदान करता है। इसीलिए वह संग्रहणीय और स्मरणीय बन जाता है और बारम्बार पढ़ने पर भी नीरसता का आभास नहीं देता।

क्षितीश जी ने पत्रकारिता के अलावा साहित्य की अन्य अनेक विधाओं में भी लिखा है और सुधी जनों ने उसको सराहा है। उनके इस साहित्यकार रूप का परिचय देने के लिए जिन जिन विधाओं में लिखा है उनका एक एक प्रतिनिधि लेख इस खण्ड में दिया जा रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अमुक विधा का उनका अमुक लेख ही सर्वोत्तम है, परन्तु प्रतिनिधित्व करने के लिए सर्वोत्तम होना जरूरी भी नहीं। इसीलिए उनके विविध विषयों के कुछ लेख यहां दिए जा रहे हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यटन

जब मैंने वैरियर एल्विन का पीछा किया

—क्षितीश वेदालंकार

बात सन् 40 की या उसके आस-पास की है। द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो चुका था और मैं पुस्तकों की दुनिया से निकल कर शिक्षा समाप्त कर बाहर की दुनिया में प्रविष्ट ही हुआ था। देश भक्ति का जनून सिर पर सवार था। हैदराबाद की विभिन्न जेलों में लगातार छह मास तक निजामशाही के अत्याचार सहने के पश्चात उस जनून की धार और तेज हो गई थी। सी. पी. (आज का मध्यप्रदेश) की एक सार्वजनिक सभा में ब्रिटिश सरकार विरोधी भाषण देने के कारण पुलिस पीछे लगी हुई थी। जहां कहीं जाता, वहां स्टेशन पर उतरते ही पुलिस के आदमी पहले से तैनात मिलते और पूछते— "आपका अमुक नाम है और आप अमुक स्थान से आ रहे हैं?" गनीमत इतनी ही थी कि पुलिस की नजरों में तब तक उतना महत्त्वपूर्ण नहीं हुआ था कि वह मेरा कृष्णमन्दिर के बाहर रहना शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरनाक समझती।

उन्हीं दिनों मण्डला पहुंचा। दिसम्बर का महीना था। पर देश के राजनीतिक वातावरण में गर्मी थी। अंग्रेजों की हार और जर्मनी की विजय के समाचारों से लोग मन-ही-मन प्रसन्न होते थे। घर के दरवाजे बन्द कर चुपचाप रेडियो सुना करते थे, पर सरकार का आतंक भी इतना था कि जबान से कोई कुछ कहने की हिम्मत नहीं करता था। पुलिस द्वारा पीछा किए जाने की बात सुन कर कोई अपने यहां टिकाने को तैयार नहीं हुआ। यों नजरों में सहानुभूति सर्वत्र दिखती थी। अन्त में, शहर से तीन-चार मील दूर, नर्मदा के तट पर बने एक छोटे-से मन्दिर में डेरा डाला। पुजारी एक साधु था। उसने स्नेहपूर्वक ठहरने की अनुमति दे दी।

मन्दिर तो छोटा ही था, पर उसके आसपास का स्थान खूब खुला और दृश्य बड़ा रमणीक था। और उस स्थान पर मेकलकन्यका नर्मदा के रूप-वैभव के विस्तार का तो कहना ही क्या। बस एक बार देखो तो देखते ही रहो।

उसी मन्दिर के पास स्थानीय अदालत का एक मुन्शी रहता था। गरीब तो था, पर काइयां भी कम नहीं था। अदालत का संसर्ग किसे काइयां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बना देता। वह सवेरे-शाम पूजा के समय मन्दिर में आता और भक्ति-विभोर होकर देवता के सामने नाचता। मैं अपने सामान के प्रति लापरवाह। फिर मन्दिर में चोरी की क्या शंका। एक दिन रात को मुझे टार्च की जरूरत पड़ी, तो देखा—बैग में से नदारद। अगले दिन पुजारी से कहा, तो पुजारी ने उस मुन्शी की कुटिया में जा कर तलाशी लेने की सलाह दी।

मैं मुन्शी के निवास स्थान पर पहुंच गया। वह एकाकी ही रहता था। उसने टार्च चुराने की बात से इन्कार किया। तब मैंने आले-दिवाले देखने शुरू किए। कहीं भी टार्च नहीं मिला। इस बीच मैंने एक बात मार्क की। मुन्शी बाहर एक झाड़ी के पास पेशाब करने गया और वापस आ कर शान्तभाव से खड़ा हो गया। जब कहीं टार्च नहीं मिला तब उसकी आवाज में कड़क आ गई— "मैं पहले ही कहता था कि मेरा झूठा नाम लगाया जा रहा है, मैंने टार्च नहीं उठाया।"

"तुम पेशाब करने के बहाने उस झाड़ी में टार्च छिपा आए हो।" मेरा इतना कहना था कि वह लम्बा, अधेड़ उम्र का, काइयां आदमी कोने में से लाठी उठा कर मुझ पर प्रहार करने को लपका। मैं स्तब्ध। पर इससे पहले कि वह मेरे सिर पर प्रहार करता, मैंने उसकी टांग में ऐसी अड़ंगी लगाई कि कि वह लम्बा आदमी चारों खाने चित्त, और मैं उसकी छाती पर सवार। मेरे जीवन की अनोखी घटना थी वह। मजबूरी में मैं सचमुच ताव खा गया था। उसके मुंह पर तड़ातड़ दो-तीन घूंसे ही जड़े होंगे कि उसकी नाक से खून आ गया। खून देखकर मैं घबराया। तब तक आसपास के कुछ और लोग भी एकत्र हो गए थे। मैं सबके लिए अजनबी था, इसलिए मुझसे सहानुभूति का कोई प्रश्न नहीं था।

मुन्शी की कुटिया से निकल कर मैं मन्दिर में आया। मेरा दम फूल रहा था। पुजारी साधु ने कहा—"इतना तो अब स्पष्ट हो गया कि टार्च उसी ने चुराया था। पर टार्च की चिन्ता छोड़ो। अब तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं। पुलिस तुम्हारे पीछे वैसे ही पड़ी हुई है। यह मुन्शी अभी थाने जा कर रिपोर्ट करेगा कि मेरे घर में आ कर अमुक आदमी मुझे मार गया। गवाह भी इसे मिल ही जाएंगे। तुम परदेसी आदमी— बिना बात के ही फंस जाओगे।"

और मैं उसी समय अपना सामान ले कर मन्दिर से निकल आया। रिक्शा वाले को बुला कर शहर की ओर चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचने लगा— अब कहां जाऊं ? एक विचार आया —अमरकण्टक चला जाए ।

यों अमरकण्टक जाने के लिए जबलपुर से पेण्ड्रा-रोड हो कर सीधा रास्ता है । पेण्ड्रा रोड से 15 मील पैदल चलना पड़ता है। एक बार उस रास्ते अमरकण्टक हो आया था । पर इस रास्ते लगभग साठ मील पैदल चलना पड़ेगा, क्योंकि डिण्डोरी से आगे सड़क नहीं है, और मण्डला से डिण्डोरी तक भी केवल कच्ची सड़क है— बैलगाड़ी ही वहां जा सकती है ।

रानी दुर्गावती की वीरता से जुड़ा है मण्डला, वैसी ही जैसे झांसी की रानी की वीरता का साक्षी है—झांसी । इस गोण्ड रानी ने गोण्डों की वीरता की परम्परा को इतिहास की आंख से ओझल नहीं होने दिया । अमरकण्टक की उपत्यका उन्हीं वीर गोण्डों की निवासस्थली और क्रीड़ास्थली है । यों छत्तीसगढ़ के विभिन्न शहरों में सप्ताह के अलग-अलग दिनों में लगने वाली पैंठों में गोण्ड युवतियों के मादक अनावृत यौवन को देख चुका था और देख चुका था गोण्ड युवकों के साथ उनके शहरी सभ्यता के विधि-निषेधों से शून्य स्वच्छन्द व्यवहार को भी । इसलिये इस आदिवासी वन्य जाति के रहन-सहन को निकट से देखने की एक रोमाण्टिक ललक मन में थी ।

पर इस बार अमरकण्टक जाऊं—न जाऊं— इस दुविधा को संकल्प रूप में परिणत करने में एक और बात भी कारण बनी । मण्डला में ही कुछ सम्भ्रान्त लोगों से वार्तालाप के दौरान मुझे वैरियर एल्विन की सन्दिग्ध गतिविधियों का पता लगा था । इस अंग्रेज ने अमरकण्टक की तलहटी में ही करंजिया नामक स्थान पर गोल्ड सेवामण्डल के नाम से एक आश्रम बनाया था। वहां बालक-बालिकाओं के लिए एक स्कूल खोला था और कोढ़ियों की सेवा के लिए एक चिकित्सा केन्द्र । कुछ लोगों का कहना था कि यह सब बाहरी दिखावा है । असल में जंगली जातियों को ईसाइयत की दीक्षा देने का ब्रिटिश सरकार को ओर से किया गया यह एक गहरा षड्यन्त्र है । कुछ लोग कहते थे कि सुन्दर गोण्ड युवतियों को फुसला कर बम्बई आदि बड़े शहरों में बेचने का बहुत बड़ा जाल है यह । फिर कुछ बुद्धिजीवी यह भी कहते पाए गए कि उक्त सब आरोप मिथ्या हैं, वैरियर एल्विन तो नृवंशशास्त्री की हैसियत से गोण्डों के लोकगीत, लोककथाएं और लोकसाहित्य संग्रह करने की विशुद्ध साहित्यिक साधना में लगे हुए हैं ।

जितने मुंह, उतनी बातें । पर आरोप लगाने वाले या प्रशंसा करने वाले दोनों यह स्वीकार करते थे कि वैरियर एल्विन चाहे किसी भी मिशन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे हुए हों पर वे गोण्डों में इतने लोकप्रिय हैं कि उस सारे इलाके में वह 'बड़े भैया' के नाम से विख्यात हैं।

यही जानने के लिए मण्डला से अमरकण्टक जाने का निश्चय कर लिया। इस तरह जहां यायावरी की वृत्ति सन्तुष्ट होती, वहां जासूसी अभियान का आनन्द भी रहता। साथ ही कुछ दिनों तक पुलिस की नजरों से ओझल होने का भी यह अच्छा सुयोग था।

रात भर बैलगाड़ी में सफर करके जब सवेरे डिण्डोरी पहुंचा, तब फिर ठहरने की समस्या सामने आई। स्थानीय डाक बंगले में तहसीलदार और उनका अमला कब्जा जमाए हुए था। सराय,धर्मशाला या होटल की कल्पना ही वहां व्यर्थ थी। मण्डला से ही वन्य जाति के गोण्डों का इलाका शुरू हो गया था। पर डाक बंगले के चौकीदार ने समस्या हल कर दी। उसने कहा— "बाबू! चिन्ता क्या करते हो? बंगले में नहीं, तो मेरी कुटिया में जगह है।" और सचमुच उसने बड़े जतन से मेरा सामान उतार कर अपनी कुटिया के एक कोने में जमा दिया और मेरे बैठने के लिए थोड़ा-सा पुआल बिछा दिया।

यह मेरे खद्दर के कपड़ों का प्रताप था या शहरी सभ्यता से दूर इन तथाकथित 'जंगलियों' की सहज आतिथ्य भावना का प्रतीक था, नहीं कह सकता।

पर खद्दर के कपड़े संकट भी पैदा कर सकते हैं— यह भी स्पष्ट होते बहुत देर नहीं लगी। रात को सोने से पहले चौकीदार मेरे पास आ कर बोला—"बाबू! तहसीलदार की नजर अच्छी नहीं है। कहीं आपको परेशान न करे?"

"क्यों, क्या बात हो गई? मेरा तो आमना-सामना भी नहीं हुआ।"

"शायद उसने आपको यहीं कहीं आते-जाते देख लिया है। वह और लोगों से पूछताछ कर रहा था कि यह खद्दरपोश युवक कौन है? मुझसे भी पूछा था। मैंने तो कह दिया कि मैं क्या जानूं—कौन है। कोई मुसाफिर होगा! मैंने उसे यह नहीं बताया कि मुसाफिर मेरी झोंपड़ी में ही ठहरा है कल सवेरे जब उसे पता लगेगा कि मुसाफिर रात को यहीं सोया था, तब मेरी खैर नहीं।"

तो पुलिस की जिस नजर से बचने के लिए मैं इन जंगलों में भाग आया था, वह नजर यहां भी हाजिर है।

"तो फिर क्या करें?"— मैंने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"करना क्या है ! आप ऐन तड़के उठ कर यहां से चले जाइए। सवेरे तहसीलदार मुझसे पूछेगा तो मैं कह दूंगा—मुसाफिर का क्या ठिकाना ! क्या मालूम, कहां से आया, कहां चला गया। रमता जोगी, बहता पानी और राह का मुसाफिर— कहीं टिकते थोड़े ही हैं।"

"फिर मेरे सामान का क्या होगा ?" मैंने पूछा।

"आपका सामान ठीक-ठिकाने पहुंचाना मेरी जिम्मेवारी।"

और मैं सचमुच ही अगले दिन, पौ फटने से पहले, तारों की छांह में, जंगल के बीहड़ पथ पर एकाकी बढ़ चला— अमरकण्टक की दिशा में।

डिण्डोरी से आगे सड़क नहीं थी— बन रही थी। सड़क और जंगलात के काम में सब जगह पंजाबी ठेकेदार कार्यरत मिलेंगे। वहां भी पंजाबी मेट था। दस-बारह मील पैदल चलकर मैं उसका मेहमान बना।

दिन किसी तरह, गोण्ड युवक-युवतियों को सड़क का काम करते देखते-देखते बीत गया। पर जब शाम तक मेरा बिस्तर और सूटकेस नहीं आया, तब मन में चिन्ता हुई।

कहीं मुझे बेवकूफ तो नहीं बनाया गया ! पर इन जंगली लोगों को बेईमान मानने को मन तैयार नहीं होता था। पर ईमान डिगते क्या देर लगती है ?

चिन्ता का कारण एक और भी था। दिसम्बर का महीना था ही, फिर घने जंगल में, अमरकण्टक के निकट, शाम होते ही ठण्ड बढ़ने लगी। मेजबान खाना तो खिला देगा, पर इस एकान्त स्थान में उसके पास फालतू बिस्तर कहां से आएगा ?

सूरज ढलते ही गोण्ड युवक-युवतियां अपनी पेट-पूजा के प्रबन्ध में जुट गए। पेट-पूजा भी क्या ? हण्डिया में, कोदों का रांधना, दाल-शाक का सवाल ही नहीं, साथ में थोड़ा-सा नमक और ढेर-सी लाल मिर्च। हो गया भोजन।

इस जंगली 'डिनर' के पश्चात जमी महफिल। जंगल में लकड़ी की क्या कमी ! ढेर में अबेर कैसी। अलाव जल गया। कैम्प फायर का दृश्य। युवक-युवतियों के मन मचल उठे। पांवों में थिरकन। सिर्फ अधोवस्त्र पहने युवक और कटि में मिनी स्कर्ट से भी मिनी वस्त्र पहने, यथाकथंचित उरोजों को ढके युवतियां।

एक तरफ युवकों की टोली और दूसरी ओर युवतियों की टोली। कौन कहता है कि सांवले रंग में सौन्दर्य नहीं है। सौन्दर्य तो यौवन के प्रस्फु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टन में है, रंग में नहीं। फिर रसिक-शिरोमणि और सौन्दर्यावितार श्रीकृष्ण भी तो सांवले ही थे।

यों तो गोण्डों की यह रात की महफिल रोज का ही नियम-सा है, और उस दिन तो एक परदेसी मेहमान का स्वागत भी अभिप्रेत था। पर, ज्यों-ज्यों रात बीतती जा रही थी, परदेसी मेहमान को शीत के प्रकोप से बचकर आराम से सो सकने की चिन्ता सता रही थी। आश्चर्य है, मेजबान को इसकी बिल्कुल भी चिन्ता नहीं थी।

महफिल खत्म हुई। गोण्ड युवक-युवतियां अपने-अपने स्वप्नों में खोए, अलाव में दो-तीन मोटे लक्कड़ डालकर, उसके चारों ओर सोने की तैयारी करने लगे। मैं मेजबान का मुंह ताकने लगा। आखिर पूछ ही बैठा—"सोने का क्या करोगे?"

"आप चिन्ता क्यों करते हैं। मेरे मेहमान हैं, इसलिये इस बात की चिन्ता मैं करूंगा।"

मन में तरह-तरह की शंकाएं उठने लगीं। कहीं फिर बेवकूफ बनने की नौबत तो नहीं आ रही है।

पास ही एक खेत था। फसल कट चुकी थी। कुछ सूखा पुआल वहां पड़ा था। एक गोण्ड युवक से कह कर पंजाबी मेजबान ने पुआल की मोटी तह नीचे बिछवा दी। सिरहाने की ओर कुछ ऊंचा कर दिया। फिर मुझसे कहा— "इस पर लेट जाओ।"

देख रहा था कि रेल के प्रथम श्रेणी के गद्देदार बर्थ से भी ज्यादा मोटा फूस का बर्थ तैयार था।

लेट तो गया, पर मन की दुविधा नहीं लेटी। इस प्राकृतिक बिस्तर पर लेट कर ओढूंगा क्या?

मेजबान ने फिर निश्चिन्तता से कहा— "अपनी धोती का आधा हिस्सा अपने ऊपर ओढ़ लीजिए।"

"इससे सर्दी जाएगी?"

"अरे आप धोती ओढ़िए तो सही।"

मैंने गर्दन तक धोती ओढ़ ली। मेज़बान ने बचा हुआ पुआल धोती के ऊपर छितरा कर बिछा दिया— उसकी भी मोटी तह जमा दी।

मुझे उसमें मजाक— और शायद शरारत— की गन्ध आ रही थी। पर जब मेजबान ने अत्यन्त आश्वस्त होकर कहा— "अब आप निश्चिन्त हो कर सोइए। सवेरे बताना कि नींद कैसी आई।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचमुच ही सवेरे जब उठा तब इस अद्भुत मेजबानी के प्रति आभार के सिवाय और कुछ भी कहने को नहीं था। बहुत बढ़िया नींद आई। सर्दी का तो नाम ही नहीं। मैं अपने बिस्तर के अभाव को भूल गया।

सवेरे से ही फिर सामान की इन्तजार करने लगा।

सूरज निकल आया। मजदूर अपने-अपने काम पर लग गए। पर सामान नहीं आया।

क्या डाक बंगले के चौकीदार ने धोखा दिया? मेरा सामान हड़पने की उसकी चाल तो नहीं थी यह?

सूरज ऊपर चढ़ने लगा। दिन के दस बजे। फिर बारह बजे। सड़क पर काम करने वाले कर्मचारियों के 'लंच' का अवकाश हुआ। पर सामान नहीं आया।

मेजबान भी चिन्ता करने लगा। पर गोण्डों को धोखेबाज मानने को वह भी तैयार नहीं था। अन्त में निश्चय हुआ कि शाम तक सामान नहीं आया तो अगले दिन सवेरे किसी मजदूर को डिण्डोरी भेजा जाएगा।

सूर्य अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी कर ही रहा था कि सामने से एक आदमी वहंगी पर कुछ सामान लादे आता दिखाई दिया। पास आने पर पता लगा कि वह मेरा ही सामान था।

"इतनी देर कैसे लग गई?"

सामान लाने वाले ने जो घटना सुनाई, उससे मेरा रोम-रोम सिहर उठा और इस जंगली जाति के प्रति मन कृतज्ञता से भर गया।

शरीर पर कौपीन मात्र धारण किए उस गोण्ड युवक ने कहा—"साहब! आज सवेरे हम लोगों ने देखा कि रास्ते के किनारे यह सामान पड़ा था। साथ में खून के कुछ छींटे, और यह वहंगी। गांव में एक खबर कानोंकान फैली थी कि इधर कोई क्रान्तिकारी खद्दरपोश युवक आया है और मण्डला का तहसीलदार उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा कर रहा है। गांव वालों ने समझ लिया कि यह सामान उसी युवक का हो सकता है।"

"पर सामान रास्ते के किनारे कैसे पहुंचा?"

"ऐसा लगता है कि चौकीदार ने कल शाम के झुटपुटे में किसी आदमी के हाथ आपका सामान भिजवाया होगा। सुनसान जगह में उस आदमी को झपट्टा मार कर चीता उठा ले गया और सामान वहीं पड़ा रह गया। घटना के साक्षी खून के कुछ कतरों के सिवाय और कोई नहीं।"

मन-ही-मन मैं शर्म से गड़ गया— कि इन लोगों के बारे में मैं धोखे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज और बेईमान होने की कल्पना कर रहा था, जो मेरे मात्र खद्दरपोश होने की बात जान कर ही मेरे लिए क्या कुछ करने को तैयार हैं ! एक तो बेचारा अपनी जान से ही हाथ धो बैठा ।

उस रात भी महफिल जमी । आज पुआल के बिस्तर की जरूरत नहीं पड़ी । पर चीतों के प्रदेश में सब से अलग मेहमान को सुलाना किसी को भी सुरक्षा की दृष्टि से उचित नहीं लगा । पेड़ के ऊपर मचान बनाया गया । वहीं बिस्तर पहुंचा दिया गया । नीचे अलाव के चारों ओर गोण्ड युवक-युवतियां सोए, ऊपर मचान पर मैं ।

अगले दिन मैं करंजिया पहुंच गया । पहाड़ी पर वैरियर एल्विन का आश्रम बना हुआ था । कहीं भी ऐसा आभास नहीं हुआ कि शहरी सभ्यता को वन्य सभ्यता पर लादने का प्रयत्न किया गया हो । आश्रम साफ-सुथरा था । इमारतों पर गोण्ड शैली की पूरी छाप । कोई पक्का मकान नहीं, मिट्टी की दीवारें, फूस के छप्पर । दीवारों और फर्श पर गोबर की लिपाई । सजावट के लिए आदिवासियों द्वारा ही बनाए गए पशु-पक्षियों के काल्पनिक कलापूर्ण चित्रों का दीवारों पर आलेखन । पांचवीं श्रेणी तक सहशिक्षा की व्यवस्था । छात्र-छात्राएं साफ-सुथरे और प्रसन्न । साथ ही एक शफाखाना । एक और चबूतरे पर बना चैत्यनुमा छोटा-सा गिरजाघर । अन्दर क्रास पर लटके यीशु मसीह की तस्वीर । एक अखण्ड घृतदीप । अध्यापक और कर्मचारी सब उसी प्रदेश के गोण्ड ।

पर वैरियर एल्विन और उनके निजी सचिव शामराव हिवाले नदारद ! पता लगा कि वह तो इस समय बस्तर रियासत में हैं ।

कुछ अध्यापकों ने मेरे सामने पूरी तरह खुलना उचित नहीं समझा, पर कुछ ने तो एकान्त में मुझे वहां की सभी गतिविधियों की सही जानकारी देने में आनाकानी नहीं की । मण्डला में मैंने, भारत के नागरिक बने और गौरवर्णाभिमानी जाति का सदस्य होने पर भी कृष्णवर्णा गोण्ड किशोरी से विवाह-सूत्र में आबद्ध इस अंग्रेज के बारे में जो अफवाहें सुनी थीं, उनमें अधिकांश निराधार थीं, पर कुछ अफवाहों के सच होने के आधार भी वहां मौजूद थे ।

एल्विन का साक्षात्कार न होने से निराशा हुई, पर अपना अभियान इतनी जल्दी खत्म करने की इच्छा नहीं थी । अभी तो विश्वयुद्ध जारी था और पुलिस की नजरों से बचे रहने की जरूरत कम नहीं हुई थी ।

करंजिया से 11 मील दूर था— अमरकण्टक । अमरकण्टक के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलबकावली के फूलों की परी-कथाओं और नर्मदा के उद्गम तथा कपिल-धारा का आकर्षण जुड़ा हुआ है। इस बार तो एल्विन का पीछा करने निकला था। इसलिए अमरकण्टक गया तो सही, पर फुरसत होने पर भी वहां अधिक ठहरने का मन नहीं हुआ।

रायपुर से जगदलपुर का सफर बहुत लम्बा था। शाम को चार बजे बस में बैठा तो अगले दिन प्रातः 6 बजे मंजिल पर पहुंचा।

दिन में कई स्थानों पर पता लगाया। सब जगह से एक ही जवाब मिला—"एल्विन इधर आए अवश्य थे, अब कहां हैं—यह पता नहीं।" एक सरकारी अफसर ने बड़े इत्मीनान से कहा— "वह रेस्ट-हाउस में ठहरे हुए हैं।"

रेस्ट-हाउस पहुंचा। वहां कोई नहीं मिला। सब खिड़कियां और दरवाजे बन्द। संधियों में से झांकने पर देखा कि अन्दर अजायबघर की-सी चीजों की भरमार है। तरह-तरह के मुखौटे, जानवरों के सींग और पंछियों के पंख, कुछ लकड़ी की कलाकृतियां— सब आदिवासियों से सम्बद्ध। निश्चय ही यह सब सामान एल्विन की ही रुचि का हो सकता है। इसलिए यह बात पक्की है कि एल्विन इधर आए हैं और अभी इसी प्रदेश में हैं। नहीं तो यह सब सामान यहां न होता।

पूछताछ जारी रखी। चौकीदार को भी कुछ पता नहीं। अन्त में एक दूरस्थ व्यक्ति ने बताया कि कुछ दिन पहले इन्द्रावती नदी के तटवर्ती जंगल में एल्विन का कैम्प लगा था।

वहां भी बैलगाड़ी से या पैदल, जाने के सिवाय कोई चारा नहीं।

इन्द्रावती का तट आ गया। कैसा सुन्दर दृश्य है। यहीं चित्रकूट का प्रपात है। प्रयाग के निकट का वह चित्रकूट नहीं, जहां गोस्वामी तुलसीदास चन्दन घिसा करते थे। 'चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेश' वाला चित्रकूट भी यह नहीं है। यहां तो पूरी-की-पूरी इन्द्रावती नदी चट्टानों के बीच से होती हुई एक प्रपात के रूप में ऊंचाई से गिरती है। इस देश के नदी, पर्वत और जंगल अपने आप में न जाने ऐसे कितने आश्चर्य समोए हैं। किसी दिन किसी जानकार व्यक्ति की नजर पड़ेगी तो यह स्थान भी देश-विदेश के पर्यटकों के लिए तीर्थस्थान बने बिना नहीं रहेगा। एल्विन ने अपने कैम्प के लिए स्थान का चुनाव तो ऐसा किया है कि उसे देख कर उसके प्रकृति-प्रेम और कला-प्रियता की तारीफ किए बिना नहीं रहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास कोई बस्ती भी नहीं। इस जंगल में किससे पूछूं कि जो कैम्प कभी यहां सचमुच था, उसके निवासी अब कहां हैं ?

निराशा पर निराशा।

रात का अन्धकार घिर आने से पहले हिंसक पशुओं से घिरे इस वन्य प्रदेश से निकलकर मुझे जगदलपुर अवश्य पहुंच जाना चाहिए,नहीं तो एल्विन के कैम्प की तरह मैं भी कथावशेष मात्र रह जाऊंगा।

रात को दस बजे जगदलपुर जा कर लगा—तो तन-मन दोनों से थक कर चूर था।

अगले दिन फिर एल्विन खोज-अभियान शुरू।

जहां भी कुछ सम्भावना हो सकती है— जा कर पूछता हूं। पर कहीं से कोई सुराग नहीं मिलता। इतना ही पता लगता है कि बस्तर रियासत में एल्विन आए अवश्य थे, पर अब कहां हैं— यह कोई नहीं जानता। जगदलपुर के आसपास भी चक्कर लगाता हूं, पर सब व्यर्थ।

बोझिल मन लिए मैं जगदलपुर से वापस रायपुर जाने के लिए बस में बैठ गया।

जब आया था, तब रात का आलम था। इसलिए जंगल की सघनता का अनुमान नहीं हो सका। अब दिन में वापस जा रहा हूं, तो आदिकवि वाल्मीकि द्वारा वर्णित दण्डकारण्य की विशेषताएं सामने आ रही हैं। इसी भयंकर अरण्य में खर-दूषण के स्कन्धावार (छावनी) थे और यह सारा प्रदेश राक्षसों से भरा हुआ था। कौन थे ये राक्षस ? आज भी कुछ गोण्ड अपने को रावणवंशीय बताते हैं। कहीं इन्हीं वन्य-जातियों का तो वर्णन नहीं है वह !

रास्ते में एक आदमी बस में चढ़ा। उसके साथ एक बड़ा-सा टोकरा, टोकरे में खाद्य-सामग्री। इस खाद्य-सामग्री ने ध्यान खींचा। कुछ अण्डे, कुछ केक, कुछ फल, कुछ डबल रोटियाँ, कुछ मिठाइयां !

"यह सामान कहां ले जा रहे हो ?"

"बड़े भैया के यहां।"

'बड़े भैया' का नाम सुनते ही मेरे कान खड़े हो गए। जानता था कि मण्डला के इलाके में एल्विन ही इस नाम से मशहूर है। फिर यहां 'बड़े भैया' कौन बन गए ? तसल्ली के लिए पूछा— "उनका असली नाम क्या है ?"

"बाबू, सो तो हम नहीं जानते। सब लोग 'बड़े भैया' ही कहते हैं।"

"इस समय 'बड़े भैया' कहां हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"घने जंगल में हैं। उनके बड़े त्यौहार (क्रिसमस) की दावत के लिए मैं यह सामान ले कर जा रहा हूं।"

फिर बातचीत में उसने यह भी कहा— "बाबू ! सोने में खोट हो सकता है, पर बड़े भैया में खोट नहीं है।"

जब बातचीत से मैं आश्वस्त हो गया कि हो न हो, यह बड़े भैया एल्विन ही हैं, तब मैंने उससे कहा— "हम तो तुम्हारे बड़े भैया से मिलने के लिए भटके हैं।"

उस सीधे-सादे ग्रादमी ने कहा— "ग्रापको बड़े भैया से मिलना हो, तो मेरे साथ चलो।"

मैं पशोपेश में। इतना भटका हूं इस ग्रादमी के पीछे। पर ग्रहयोग नहीं था। ग्रब एक नई भटकन तो गले नहीं पड़ेगी। फिर टिकट तो मैंने रायपुर का कटा रखा है।

कुछ पड़ावों के बाद, रास्ते में ही, किसी बस्ती के पास बस रुकवा कर वह ग्रादमी उतरा, ग्रपने टोकरे के साथ। किसी बिजली के-से झटके से मैंने भी ग्रपना बिस्तर और सूटकेस सड़क पर पटक दिया।

मैंने समझा था कि इसी बस्ती में एल्विन होंगे। पर उस चपरासीनुमा ग्रादमी ने जब कहा कि ग्रब तो शाम हो रही है, इसलिए ग्राज रात को इसी बस्ती में ठहरेंगे ग्रौर सवेरे बड़े भैया के पास चलेंगे, तब एक ग्रौर निराशा हाथ लगी।

अंग्रेजों ने एक काम बढ़िया कर रखा था। बस्तर के जंगलों में छोटी-मोटी बस्तियों में भी जगह-जगह उन्होंने फोरेस्ट रेस्ट-हाउस बना रखे थे। मुझे उस रेस्ट-हाउस के चौकीदार के हवाले करके चपरासी बस्ती में चला गया ग्रौर कह गया— "सवेरे यहीं ग्रा जाऊंगा।"

रेस्ट-हाउस में 'रेस्ट' का तो इन्तजाम था, पर 'फोरेस्ट' शब्द भी पूरी तरह सार्थक हो रहा था, क्योंकि वहां खाने का कुछ प्रबन्ध नहीं था। पानी दुर्लभ नहीं था। कहने से चौकीदार ने पानी गर्म कर दिया। मेरे पास एक सूखी डबल रोटी पड़ी थी। उसी को गर्म पानी में भिगो कर उदरपारणा हो गई।

चौकीदार जाते-जाते ग्रागाह कर गया— "बाबू ! सब खिड़कियां ग्रौर दरवाजे रात को बन्द रखना।"

"क्यों ?"

"कभी-कभी रात को यहां शेर ग्रा जाता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तर के आदिवासी अपनी लोककथाओं में शेर को छोटा भाई क्यों कहते हैं और रात को सोने से पहले अपनी झोपड़ी के बाहर एक लकड़ी के कठौते में शेर के पीने के लिए पानी क्यों भरते हैं, उसका रहस्य कुछ-कुछ समझ में आ रहा था।

सवेरे जब हमारा काफिला एल्विन-अभियान पर चला तब उसकी धज निराली थी। एक बहंगी पर मेरा सामान, दूसरी पर बड़े भैया का, बीच में मैं और चौकीदार, और सब से आगे और सब से पीछे एक-एक आदमी कुल्हाड़ी लिए हुए।

आठेक मील चलने के बाद फिर निराशा।

मुझे अपने साथ बड़े भैया के पास ले जाने वाले आदमी ने कहा—"मैं तो साहब को यहीं छोड़ कर गया था।"

और साहब यहां थे अवश्य। उसका सबूत यह है कि उनकी जीप एक तरफ पड़ी है, लावारिस। आगे जीप जाने का रास्ता भी नहीं है, इसलिए जीप को यहीं छोड़ कर साहब आगे बढ़ गए हैं। सचमुच ग्रह-योग अनुकूल नहीं है।

काफिला फिर चल पड़ा।

सघन वनाच्छादित पथ और कदम-कदम पर जंगली जानवरों का भय। कोई 5 मील और चले होंगे कि एक समतल साफ-सुथरी जगह पर कुछ तम्बू गड़े हुए नजर आए। साथ में लोगों की गहमागहमी और हलचल।

यही था वैरियर एल्विन का कैम्प!

दूध से जले की तरह मैं शंकाकुल कि कहीं एल्विन यहां भी न हुए, तो?

पर एल्विन वहीं मौजूद थे। 24 दिसम्बर का दिन था वह। अगले दिन 'बड़ा-दिन' था। सारे कैम्प में खुशी का वातावरण था। फिर अब तो दावत का सामान भी पहुंच गया था। फिर जंगल में मंगल होने में क्या कसर!

पर एक खद्दरपोश अजनबी को देख कर सब लोग चौंके। एल्विन को पता लगा तो वह भी चौंके कि उनकी इस एकान्त कबायली दुनिया में यह घुसपैठिया कौन?

आगत का स्वागत, दुआ-सलाम और ठहरने की व्यवस्था। पर यह प्रश्न मन में कि कौन है, क्यों आया है, इस घने जंगल में मेरी उपस्थिति का पता इसे कैसे लगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने अपने आपको नृवंशशास्त्र का अध्येता और एल्विन की पुस्तकों का प्रेमी बताया। जैसे कविता के प्रेमी श्रोता को देख कर कवि की बांछे खिल जाती हैं, वैसे मुझे देख कर एल्विन की बांछें तो नहीं खिली होंगी, पर मुझे बरदाश्त किया गया।

मैंने हिटलर के साथ अंग्रेजों की लड़ाई के समाचार सुनाते हुए जब एल्विन को यह बताया कि 'प्रिन्स आफ वेल्स' और 'रिपल्स' नामक जहाज डूब चुके हैं और कलकत्ता से भगदड़ प्रारम्भ हो गई है, तब एल्विन सहसा चिन्तातुर हो गए। उन विख्यात जहाजों के डूबने का उन्हें भी जबर्दस्त धक्का लगा। बोले—"मैं तो अर्से से खबरों और अखबारों की दुनिया से दूर हूं। पिछले पन्द्रह दिन से तो बिल्कुल ही बाहर की दुनिया से कट गया हूं। आगे क्या होगा?"

मैंने एक बार पूछा—"आप इतने खतरनाक जंगल में रहते हैं, आपको डर नहीं लगता।"

"मैं तो गांधी का चेला हूं—अहिंसावादी। गांधी जी आश्रम में मीरा बेन को अपनी पुत्री और मुझे अपना पुत्र कहा करते थे। जब मैं जंगली जानवरों का अहित नहीं सोचता, तब वे मुझे कुछ क्यों कहेंगे? रही खतरनाक की बात— अभी पिछले हफ्ते रियासत के रैवेन्यू मिनिस्टर यहां शेर का शिकार करने आए थे और यहां से बुरी तरह घायल हो कर गए हैं।"

"आप शिकार नहीं करते?"

"करता हूं, पर मेरा शिकार अहिंसक होता है।"

"अहिंसक शिकार कैसा?"

"और लोग बन्दूक से शूट करते हैं, मैं कैमरे से शूट करता हूं।"

* * *

अगले दिन 25 दिसम्बर। एल्विन सवेरे से गायब!

मैं तलाश करता-करता कैम्प से कुछ दूर, एक झुरमुट में, वहीं पहुंच गया जहां एल्विन अपने 'शूटिंग' में व्यस्त थे।

बैगा किशोर और किशोरियां, गले में कौड़ियों की माला पहने, सिर पर जंगली जानवरों के सींग और रंग-बिरंगे पंख लगाए, वस्त्र के नाम पर लज्जा का आवरण-मात्र, पर अपने हिसाब से पूर्ण रूप से सजे-धजे।

एल्विन की गोण्ड पत्नी—लीला बड़ी मुश्किल से इन किशोर-किशोरियों को फोटो खिंचवाने के लिये बटोर कर लाई थी। जंगली आदमी शहरी आदमियों से वैसे ही बिदकते हैं। फिर यों फोटो खिंचवाना तो उनके लिए अनहोनी बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय एल्विन 'घोटुल' पर पुस्तक लिखने की तैयारी कर रहे थे और इस काम में उनकी पत्नी सब से अधिक सहायक थीं। शायद उससे इस अंग्रेज ने शादी भी इसलिये की थी। कुछ गोण्ड दुभाषिए भी उनके साथ थे, जो घोटुल के अन्दर गाए जाने वाले गीतों का भावार्थ एल्विन को समझाते थे। एल्विन और उनके निजी सचिव शामराव हिवाले उन गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद करते थे और फिर एल्विन वहीं अपने टाइपराइटर पर, जिसे वह हमेशा साथ रखते थे, टाइप करते जाते थे। जैसे शामराव एल्विन के सहायक थे वैसे ही शामराव की पत्नी कुसुम हिवाले लीला एल्विन की सहायक थी।

स्पष्ट ही एल्विन को मेरा वहां जाना अच्छा नहीं लगा। वह ऐसे कामों को गोपनीय रखना चाहते थे। शायद कुछ जासूसी की गन्ध भी आई हो। बोले— "आप यहां कैसे ?"

मैंने बड़े भोलेपन से कहा— "आज आपका क्रिसमस का त्योहार है न! मैंने सोचा, सवेरे उठते ही आपको 'बड़े दिन' की बधाई देनी चाहिए।"

"ओह !"— पर इस 'ओह' में कैसी विवशता थी !

फिर मैंने अपने आप पीछा छोड़ने की इच्छा दिखाते हुए कहा— "बहुत दिनों से आपके दर्शन की उत्कण्ठा थी। आपका चपरासी अगर अकस्मात रास्ते में न मिलता तो वह इच्छा पूरी न हो पाती। सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिल कर। .... अब मुझे विदा दीजिए।"

"नहीं, नहीं, 'बड़े दिन' की दावत खाए बिना आप नहीं जा सकते। और देखिए, अभी तो किचन में चाय आपकी प्रतीक्षा कर रही होगी ! आप चलिए, मैं अभी आता हूं।"

दोपहर को दावत के बाद एल्विन ने मेरे साथ जाने के लिये तीन आदमी कर दिए— वैसे ही एक सामान उठाने के लिये और दो अंगरक्षक, और स्वयं नंगे पांव कैम्प से कुछ दूर तक मुझे छोड़ने आए।

('साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के 29 फरवरी, 1976 के 'पर्यटन विशेषांक' में प्रकाशित)

इतिहास

मिटी धुंद, जग चानन होया

पंजाब भारत का मुकुटमणि है।

वह प्राचीन आर्यों की संस्कृति की जन्मस्थली रहा, वहीं वैदिक संस्कृति पुष्पित पल्लवित हुई। वहीं आर्यों के प्राचीन शक्तिशाली जनपदों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वप्रथम स्थापना हुई। ईसा से पूर्व लगभग 3 हजार वर्ष तक उसका यह गौरव अक्षुण्ण रहा।

पंजाब भारत का प्रदेश द्वार भी रहा।

जिस किसी विदेशी ने भारत पर आक्रमण किया, वह पंजाब के रास्ते से भारत में प्रविष्ट हुआ। सिकन्दर से लेकर शक-हूण-मंगोल-तातार-मुगल सब इसी मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुए।

जब तक पंजाब शक्तिशाली रहा, तब तक भारत की स्वतन्त्रता भी अक्षुण्ण रही। जब पंजाब कमजोर पड़ गया, तब भारत की स्वतन्त्रता भी खटाई में पड़ गई।

अब से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व कुछ समय के लिए ईरान सम्राट दारा का पंजाब के कुछ हिस्सों पर आधिपत्य हो गया था। उसके बाद विश्वविजय का स्वप्न लेकर यूनान से निकले सिकन्दर महान ने ईरान-अफगानिस्तान को रौंदते हुए तक्षशिला के राजा आम्भी के निमन्त्रण पर पंजाब पर आक्रमण किया। तभी सें इस देश का दुर्भाग्य प्रारम्भ हुआ।

यद्यपि पंजाब के ही एक सपूत, चन्द्रगुप्त मौर्य ने आचार्य चाणक्य के सहयोग से यूनानियों को इस देश से बाहर खदेड़ दिया, किन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद, ईसा से 195 वर्ष पूर्व मीनान्दर ने पंजाब में प्रवेश किया और नर्मदा तक के क्षेत्र पर उसका अधिकार हो गया। उसके बाद शकों, हूणों और कुषाणों का भी इस प्रदेश पर कुछ समय तक अधिकार रहा।

बाद में जब सिन्ध के राजा दाहिर का पंजाब के कुछ हिस्सों पर आधिपत्य था, तब भारतीयों की आपसी फूट का लाभ उठा कर भारत पर विदेशियों ने आक्रमण शुरू किए। उनसे महमूद गजनवी के लिए लूटमार का रास्ता खुल गया। धीरे-धीरे राजपूत राजाओं के आपसी वैमनस्य और ईर्ष्याद्वेष का लाभ उठाकर मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज को परास्त कर दिया और इस देश में मुसलमानी राज्य की नींव डाली।

फिर तो धीरे-धीरे सारा भारतवर्ष ही उनके कब्जे में चला गया। जब भी पंजाब कमजोर पड़ा, तब कभी तो तुर्कों से मुगलों ने सत्ता छीनी, कभी ईरानियों ने, कभी मंगोलों ने, कभी अफगानों ने और वे हमलों पर हमले करके दिल्ली तक लूटमार करते रहे।

नानक का उदय

उसी युग में सन् 1469 में कार्तिक पूर्णिमा को गुरु नानक का जन्म हुआ।

गुरु नानक के जन्म से पूर्व के 500 सालों में भारत पर ऐसे करीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

70 हमले हो चुके थे और उनमें पंजाब के लोगों की ही सबसे अधिक क्षति हुई थी। जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन, लूटमार, हत्याएं, बेइज्जती, रोजमर्रा की बात बन गई थी। सिकन्दर लोधी ने बोधन को केवल इसलिए मरवा दिया था क्योंकि उसने यह कहा था कि उसका धर्म भी इस्लाम जितना ही अच्छा है।

नानक जिस समय 20 वर्ष के थे, उन्होंने पीड़ा भरे हृदय से कहा था—"पृथ्वी से त्याग उठ गया है। वह परिन्दों की तरह उड़ गया है। राजा कसाई बन गए हैं। चारों ओर रिश्वत का बोलबाला है। बिना रिश्वत के राजा के दरबार में भी सुनवाई नहीं होती।"

सन् 1521 में बाबर ने ताशकंद से आकर भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे मौत के घाट उतार दिये। तब गुरु नानक के व्यथित हृदय से ये आक्रोशमय उद्‌गार फूट पड़े—

"ऐ सारे जहान के बनाने वाले। तू अपने को निर्दोष कैसे मान सकता है? तूने ही बाबर के भेष में यमराज को भेजा है। यह भंयकर कत्ले-आम, औरतों और बच्चों की करुण चीखें, तेरी दया क्यों नहीं जगातीं? ऐ दुनियां के रक्षक कहलाने वाले! तू ही बता कि एक खूंखार शेर गरीब और असहाय हिरणों पर हमला करके उन्हें क्यों मार डालता है और तू चुपचाप बैठा यह सब देखता रहता है?"

भारतीय इतिहास में 15वीं और 16वीं सदी को भक्ति-काल की संज्ञा दी गई है। भक्ति आन्दोलन का इतिहास यद्यपि लम्बा और व्यापक है, परन्तु एक बात देखकर आश्चर्य होता है कि इस आन्दोलन के विकास में भारत के उत्तर, दक्षिण और पूर्व, पश्चिम के विभिन्न भक्त कवियों का महत्व-पूर्ण योगदान रहा है। इन भक्तकवियों का आविर्भाव 15वीं और 16वीं सदियों में क्यों हुआ और भारत के सभी भागों में लगभग एक साथ ही भक्ति की लहर क्यों चली, यह बात आश्चर्यजनक चाहे जितनी हो, पर इस बात की द्योतक सबसे अधिक है कि भारत के सभी भाग सांस्कृतिक दृष्टि से किसी एक ही सूत्र में बंधे हैं और आध्यात्मिक एकता का वह सूत्र इतना प्रबल है कि आक्रमणकारी विदेशी शक्तियों की सत्ता और प्रबल प्रहार भी उस सूत्र को छिन्न-विछिन्न नहीं कर सके।

भक्तिकाल की विशेषता

दक्षिण भारत में आलवार संत; मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य आदि आचार्य; महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम, ज्ञानेश्वर, नामदेव और समर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु रामदास; बंगाल में चैतन्यदेव, जयदेव, हरिदास; असम में शंकर देव; सुदूर केरल में स्वाति तिरुमाल; गुजरात में नरसी मेहता; राजस्थान में मीरा और राजुल; उत्तर भारत में सूर, तुलसी और कबीर तथा पंजाब में गुरु नानक इन सबका लगभग एक साथ एक ही काल में उदय भारत की जिस आन्तरिक अन्तःसलिला के समान उद्गम का परिचायक है—वह किसी भी इतिहास-वेत्ता को चकित और मुग्ध किए बिना नहीं रह सकता।

इस भक्ति आन्दोलन की एक और विशेषता है। प्रायः ये भक्त लोग, कवि, सन्त और प्रचारक का सम्मिश्रण रहे हैं। पर जिस आश्चर्यजनक तथ्य की ओर हम ध्यान खींचना चाहते हैं, वह इससे बिल्कुल भिन्न है।

उस समय मुगल सत्ता का सूर्य अपने चरमोत्कर्ष पर था—उसकी चमक और तपिश सारे देश पर छाई थी। मुगल बादशाह अपने अत्याचारों के लिए कुख्यात रहे ही हैं। पर इस भक्ति आन्दोलन ने जहाँ गरीब-अमीर की, सवर्ण-असवर्ण की दीवार तोड़ी, वहाँ मजहब की दीवार भी तोड़ कर रख दी। नहीं तो यह कैसे सम्भव था कि अकबर के संरक्षक बैरमखां का पुत्र, बहादुर सिपहसालार, अब्दुर्रहीम खानखाना न केवल राम और कृष्ण की भक्ति में कविता लिखता, बल्कि रहीम के नाम से दोहों के लिए आधुनिक हिन्दी साहित्य में अमर हो जाता। रहीम ही क्यों, रस की खान उस रसखान को जो रुस्तम खां पठान से बदल कर 'रसखान' बना था, क्या कहोगे जिसने 'मानुष हौं तो वही रसखान' 'और या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं' जैसी कविता लिख कर अद्भुत कृष्णभक्ति का परिचय दिया था। उस ताज (ताज खां बेगम, आगरा) नामक मुस्लिम कवयित्री को क्या किसी भी हिन्दू भक्त-कवि से कम समझा जा सकता है, जिसने कृष्ण की भक्ति से विह्वल होकर खुले आम यह घोषणा की थी—

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी,
तेरे दस्त हू बिकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी, तज कलमा कुरानी,
मैं नमाज हू भुलानी तेरे गुननि गहूंगी मैं॥
सांवला सलौना सिरताज सिर कुल्लेदार,
तेरे नेह दाघ में निदाघ ह्वै दहूंगी मैं।
नन्द के कुमार कुर्बान तेरी सूरत पै,
हूं तो मुगलानी, हिन्दुवानी ह्वै रहूंगी मैं॥

मलिक मुहम्मद जायसी ने तो महारानी पद्मिनी की कथा को उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव्य बना कर 'पद्मावत' नामक पूरा काव्य ही लिख डाला जो साहित्य की दृष्टि से बेजोड़ है। इसी भक्तिकाल में एक-दो नहीं, बल्कि 50 के लगभग कवि हुए हैं जिन्होंने मुसलमान होकर भी भक्ति-रस और नीति-रस से सराबोर कविता लिखकर हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि की है। इन्हीं भक्त मुसलमान कवियों को लक्ष्य करके आधुनिक हिन्दी के प्रथम पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यहां तक लिख दिया था—

इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिन्दू वारिये ॥

इतिहास की अनिवार्यता

भक्तिकाल का उदय भी इतिहास की एक अनिवार्यता थी।

वैदिक काल में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की साधना के लिए तीन साधन बताए गए थे—ज्ञान, कर्म और उपासना। चारों पुरुषार्थों में से किसी एक के वरण का विकल्प नहीं था, और न ही तीनों साधनों में से किसी एक के अनुसरण का अधिकार। स्वभावत: मनुष्य विशेषोन्मुख होता है, पर सन्तुलित जीवन के लिए आवश्यक है कि सामान्य की उपेक्षा न की जाए। ऐसा न होने पर जीवन में अतिवाद आ आता है जो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न कर देता है।

वैदिक जीवन का आदर्श सन्तुलन ही तो था। यह सन्तुलन केवल चारों पुरुषार्थों में ही नहीं, उनकी प्राप्ति के तीनों साधनों में भी था। जब याज्ञिक कर्मकाण्ड की अति हो गई तो उस अति का खंडन करने के लिए बौद्ध और जैनमत सामने आए। पर जब राजसत्ता के सहयोग में उनके विहार त्याग और तपस्या के केन्द्र न रह कर विलासिता के केन्द्र बन गए और धीरे-धीरे वज्रयान, तंत्रयान और सहजयान के माध्यम से वे वामाचार को सदाचार बताने लगे, तब उनकी इस अति के निराकरण के लिए आचार्य शंकर आए और उन्होंने पुन: ज्ञानकाण्ड की दुन्दुभि बजाई।

ज्ञानमार्ग कभी सामान्य जन-सुलभ नहीं रहा। क्योंकि उसके लिए विद्या चाहिए। जिस युग में विद्या पर ब्राह्मणों का एकाधिकार हो, स्त्री और शूद्र को विद्याध्ययन से वंचित रखना धर्म का अंग बन गया हो, क्षत्रियों को आपस की लड़ाई से और वैश्यों को व्यापार-वाणिज्य से फुरसत न हो, तब ज्ञान का फल खजूर के फल से कम दुर्लभ नहीं रहा होगा—'चढ़े तो मेवा चाख ले, गिरे तो चकनाचूर।'

ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग दोनों ने इस लोक की उपेक्षा करके परलोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अधिक बल दिया था। ज्ञानमार्ग ने संसार को मिथ्या बताकर और कर्ममार्ग ने स्वर्ग प्राप्ति का साधन केवल यज्ञ को बताकर। अहर्निश परलोक, स्वर्ग और मोक्ष की चिन्ता में लीन रहने वाला समाज यदि विदेशियों का पादाक्रान्त हो जाए और जनता में 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी' की भावना पनप जाए, तो क्या आश्चर्य !

उस सामाजिक अव्यवस्था के घटाटोप में भक्ति की लहर एक सुखद वातावरण लेकर आई। यह ठीक है कि विदेशी आक्रमणकारी का सशस्त्र प्रतिकार करने की प्रवृत्ति भक्तिमार्ग ने पैदा नहीं की, और इस नाते से उसे पलायनवाद का प्रतीक माना जा सकता है। पर उसकी सफलता और आकर्षण उसके सर्वजन-सुलभ होने में और विभिन्न प्रदेशों के जन-मानस को एक करने में है। न सही विद्या पाने का अधिकार, पर भगवान् की आराधना करने का अधिकार तो हरेक को है। ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड तो ठीक वैसे ही हैं जैसे राजनीति में राजतंत्र या सामन्ततंत्र, और भक्तिकाण्ड ऐसा है जैसे लोकतंत्र। लोकतंत्र में हरेक को वोट देने का अधिकार है, उसी तरह भक्तिमार्ग आध्यात्मिकता का जनतंत्र है। ज्ञानमार्ग में 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ', पर भक्ति-मार्ग में तो 'ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।'

भक्ति आन्दोलन की लोकप्रियता का एक विशेष कारण और भी है। जैसे पंडितों की भाषा संस्कृत को तिलांजलि देकर बौद्ध और जैन धर्म ने पालि और प्राकृत के माध्यम से जनता तक पहुंचने में सफलता पाई थी, वैसे ही भक्तिकाल में सन्तों ने उस समय प्रचलित लोकभाषाओं को अपना कर आम जनता तक पहुंचने का मार्ग खोज लिया।

जलवायु,वेषभूषा, खान-पान, रीति-रिवाज आदि स्थूल भिन्नताओं के बावजूद भारत में चिन्तन और अनुभूति की एकरूपता युग-युग से चली आ रही है। इसीलिए बाह्य रूप से भेद होते हुए भी इस देश की आत्मा एक है। भक्ति-आन्दोलन ने समग्र देश में ऐसा अद्भुत सन्तुलन और समन्वय स्थापित किया कि गत एक हजार वर्षों से हमारी संस्कृति, साहित्य और कला के सभी क्षेत्रों में वैष्णवता की अमिट छाप लग गई और आज तक वह छाप ज्यों की त्यों विद्यमान है।

ज्ञान-मार्ग बुद्धि-पक्ष का आग्रही है और भक्तिमार्ग हृदय-पक्ष का। यद्यपि उपासना और भक्ति पर्यायवाची नहीं हैं, फिर भी विद्वानों ने वैदिक कालीन उपासना को और उत्तरकालीन भक्ति को अभिन्न माना है। वैष्णव आचार्यों ने तो भक्ति को इतना महत्व दिया कि उन्होंने केवल उपासना को ही नहीं, ज्ञान और कर्म को भी सर्वथा अपदस्थ कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भक्ति' का उद्भव वेदोत्तर पौराणिक काल में हुआ और इसके लिए अवतार की कल्पना आवश्यक है। जिन जातियों में भगवान् स्वयं आकर अवतार नहीं लेना चाहता, उनके बीच वह अपने प्रतिनिधि (पुत्र या दूत आदि) को भेज देता है। परमात्मा के प्रतिनिधि के अवतार में विश्वास रखने का नाम ही पैगम्बरवाद है। वस्तुतः अवतारवाद और पैगम्बरवाद दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

नानक की विशेषता

भक्ति आन्दोलन के सन्तों में तथा गुरु नानक में स्पष्ट अन्तर है। भारत भर के सब प्रान्तों में जो सन्त या कवि हुए वे सब के सब अवतारवाद के पोषक हैं। यदि अवतारवाद के पोषक भक्तिकालीन कोई सन्त नहीं हैं तो केवल दो—कबीर और गुरु नानक। कबीर को वास्तव में भक्तों की बजाय रहस्यवादी कवियों की श्रेणी में गिना जाना चाहिए। पर गुरु नानक मूलतः भक्त हैं, कवि भी हैं, पर न वे अवतारवाद के पोषक हैं और न ही पैगम्बरवाद के। शायद इसका कारण तत्कालीन पंजाब का मुस्लिम-प्रधान वातावरण है। नानक को अवतारवादियों के पाखण्ड से और पैगम्बरवादियों के अत्याचारों से चिढ़ थी, इसलिए भक्त होते हुए भी उन्होंने राम या कृष्ण के अवतारों की स्तुति के बजाय उसी निर्गुण, निराकार देश और काल से अनवच्छिन्न परमात्मा का गुणगान किया है जिसका वेदों में वर्णन है। जपुजी का प्रारम्भ ही इस श्लोक से होता है—

1 ओं सति नाम कर्ता पुरुष निरभउ निरवैर
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि जपु।
आदि सच जुगादि सच। है भी सच नानक होसी भी सच।

अकाल इस्तुति में वे कहते हैं—

अलख रूप अछै अनभेखा।
राग रंग जिहि रूप न रेखा॥
वरन चिहन सबहूं ते नियारा।
आदि पुरुष अद्वय अविकारा॥
न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।
न मित्रं न शत्रुं न पितरं न मातरं॥
न जातं न पातं न रूपं न रंगम्।
न जन्मं न मरनं न वरनं न व्याधे॥

उन्होंने अवतारवाद का इन शब्दों में खण्डन भी किया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकौ सिमरौ नानका जो जलथल रहा समाय ।
दूजा काहे सिमरिये, जो जम्मे ते मर जाय ।।
जोनि जगत् में कबहूं न आया ।
या ते सभों अजोनि बताया ।।

जब गुरु जी जगन्नाथ पुरी गए और पुजारियों को ठाकुर जी की ग्रारती उतारते देखा, तब उनको समझाया कि हे पुजारियो ! इस सीमित आकार वाले मन्दिर में सीमित ठाकुर की आरती क्या उतारते हो, उस निराकार भगवान् की ग्रारती को देखो जो जगत् के ग्रन्दर हो रही है ग्रौर उसका गान करो—

गगनमय थाल रवि चन्द दीपक,
बने तारकामण्डल जनक मोती ।
धूप मलयानिलो पवन चंवरो करे,
सगल वनराय फूलंत ज्योति ।
कैसी आरती होय भव खण्डना तेरी,
ग्रारती ग्रनहत शब्द बाजन्त भेरी ।
सहस तो नैन, ननह नैन है तोहे को
सहस मूरत ननह एक तू ही ।
सहस पदुमिता ननह एक पद,
गन्ध बिन सहस तो गन्ध ग्रविचल मोही ।

—हे प्रभो ! यह ग्राकाश रूपी थाल जिसमें चांद और सूर्य दो दीपक प्रकाशित हैं और जिसमें ग्रह-नक्षत्र मोतियों की तरह सजे हैं, मलयानिल जिसमें धूप का काम कर रही है ग्रौर पवन देवता चंवर डुला रहे हैं, हरे-भरे फल-फूलों से लदे वनों की पंक्तियाँ जिसमें ज्योति के समान हैं, हे भयखण्डन प्रभो! तेरी कैसी ग्रद्भुत ग्रारती हो रही है । तेरी इस ग्रारती में ग्रनाहत शब्दों की भेरी बज रही है ।

तेरी ग्रपनी कोई ग्रांख नहीं, पर संसार की सारी आंखें तेरी हैं । ये सब देहधारी और चराचर जगत्—सब तेरी बनाई हुई मूर्तियां हैं, तेरी ग्रपनी कोई मूर्ति नहीं है । तेरा ग्रपना कोई पांव नहीं, संसार के सारे पांव तेरे बनाए हुए हैं । तेरी ग्रपनी कोई नासिका नहीं, पर संसार की सारी सुगन्धियां और उसके ग्रहण करने वाली इन्द्रियां तेरी बनाई हुई हैं । तेरी इस ग्रद्भुत महिमा ने सारे संसार को चकित कर रखा है ।

इस कविता की तुलना जरा उपनिषद् के इस श्लोक से करके देखिये ग्रौर फिर उसके स्वारस्य का आनन्द लीजिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमाग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

—वहाँ न सूर्य चमकता है, न चांद-तारे, वहाँ यह बिजली भी नहीं चमकती, फिर इस भौतिक अग्नि की तो औकात ही क्या। जब वह चमकता है तो उसी की चमक सबमें प्रतिबिम्बित होती है। उसी की दीप्ति से यह सब जगत् दीप्तिमान हो रहा है।

और इस वेदमंत्र के साथ भी तुलना करिये—

सहस्रसुशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।। यजुर्वेद 31।1

—उस परमात्मा के हजारों सिर हैं, हजारों आंखें हैं और हजारों पैर हैं। वह भूमि को सब ओर से ढक कर उसमें व्याप्त है। भूमि के अतिरिक्त अन्तरिक्ष और द्युलोक में भी वही व्याप्त है।

इस्लाम को चुनौती

भक्तिमार्ग का अनुयायी होते हुए गुरु नानक ने भक्ति-परम्परा के विरुद्ध अवतारवाद और मूर्तिपूजा का समर्थन न कर ज्ञान-मार्ग के अद्वैत निराकार ब्रह्म का समर्थन करके एक और दृष्टि से भी अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। अवतारवाद का समर्थन करते तो पैगम्बरवाद का भी समर्थन करना पड़ता। वैसा करना गुरु नानक को अभीष्ट नहीं था। जिस परमात्मा का कोई आकार या अवतार नहीं हो सकता, उसका कोई दूत या पैगम्बर भी नहीं हो सकता।

इसके साथ ही 'एको सिमरो नानका' का उपदेश देकर जहाँ पौराणिकों के नाना देवी-देवताओं को अमान्य करना अभीष्ट था, वहाँ पंजाब के हिन्दुओं को एकेश्वरवाद की महिमा से परिचित कराके वैचारिक स्तर पर इस्लाम के विरुद्ध सन्नद्ध करना भी था। इस्लाम के अनुयायी सदा हिन्दुओं को यह कह कर नीचा दिखाते रहे हैं—"जिनका इष्टदेव एक नहीं वे एक अल्लाह के उपासकों का मुकाबला कैसे कर सकते हैं!" इस्लाम के अनुयायी अपनी तौहीद की अमानत पर सदा गर्व करते रहे हैं ('तौहीद की अमानत सीने में है हमारे'—इकबाल)। हालांकि स्वयं सर मुहम्मद इकबाल ने अपनी एक कविता में यह संकेत भी दिया है कि एकेश्वरवाद की यह लहर सारे संसार में भारत से ही फैली थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहदत की लय सुनी थी
दुनिया ने जिस मकाँ से,
मीरे-अरब को आई
ठण्डी हवा जहां से,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है ।

—मीरे अरब अर्थात् मुहम्मद साहब को भी ठण्डी हवा भारत से ही मिली थी और भारत से ही सारे संसार ने वहदत (एकेश्वरवाद) का संगीत सुना था, फिर भी इस्लाम अपने अस्तित्व का औचित्य इसी आधार पर सिद्ध करता रहा है कि सारे संसार को एकवेश्वरवाद का उपदेश उसी ने दिया है, वही एक परवरदिगार अल्लाह की उपासना सिखाता है । मूल रूप से एक ईश्वर की उपासना का विचार वेदों और उपनिषदों का था, पर कालान्तर में पौराणिकों ने उसे नाना देवी-देवताओं में उलझा दिया और उसी के अनुसार पाश्चात्य विद्वानों ने भी हिन्दुओं को बहुदेवतावादी क़रार दे दिया ।

जब गुरु नानक ने भक्त होकर भी वेदोक्त निराकार एक ईश्वर का प्रचार किया, तो जैसे समस्त इस्लाम को वैचारिक स्तर पर चुनौती दे दी कि जिस विशेषता पर तुम गर्व करते हो, वह विशेषता तुम्हारी नहीं, हमारी है, इसलिए केवल इसी विशेषता के कारण किसी को इस्लाम का अनुयायी बनने की आवश्यकता नहीं ।

इस्लाम की एक दूसरी घोषित विशेषता है—समानता, जाति-पांति विहीन समाज की संरचना । छुआछूत और जातिभेद के महारोग से ग्रस्त हिन्दू समाज के आचरण को देखते हुए इस्लाम का इस समानता पर गर्व करना उचित ही था । हिन्दू समाज से दुत्कारे जाने वाले, अस्पृश्य समझे जाने वाले और समान बर्ताव के लिए तरसने वाले कुछ लोग यदि इस्लाम के इस नारे से प्रभावित होकर उसकी शरण में जाते रहे, तो इसमें दोष हिन्दू समाज का ही है । एक तरफ अछूतों को देव-दर्शन के लिए मन्दिरों में जाने से वंचित रखा गया, दूसरी तरफ मस्जिदों में राजा-रंक सब एक ही पंक्ति में खड़े होकर नमाज पढ़ते रहे—

एक ही सफ में खड़े थे महमूदो अयाज़,
न कोई बन्दा रहा, न कोई बन्दानवाज ।

तो इस दृश्य से किसका हृदय गद्गद् न हो जाएगा । अपनी कमजोरियों के लिए दूसरों को दोष देना गलत है ।

हिन्दुत्व से विरोध नहीं

हिन्दू समाज की इस दुर्बलता को दूर करने के लिए ही गुरु नानक ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुआछूत और जाति-पांति का खण्डन किया। गुरु नानक ने स्वयं अपने मुख से अपने आपको हिन्दू कहा है (जन्मसाखी, पृष्ठ 102)। जन्मसाखी के अनुसार वे यज्ञोपवीत धारण करते थे और सिर पर शिखा भी रखते थे। उनके बाद के पांचवें गुरु तक सब के यज्ञोपवीत संस्कार हुए, वैदिक विधि से विवाह हुए, वे तिलक लगाते थे और वेद-शास्त्र-पुराणों की कथा सुनते थे। गुरु अर्जुनदेव द्वारा तो शालिग्राम की पूजा का भी वर्णन है। दशम गुरु गोविन्द सिंह तो नियमित रूप से भागवत पुराण की कथा सुनते थे। स्वयं गुरु गोविन्द सिंह ने 'विचित्र नाटक' में सूर्यवंशी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र और लव और कुश से अपना सम्बन्ध जोड़ा है और अपने आपको सोढवंशी क्षत्रिय माना है। गुरु नानक के विषय में उन्होंने लिखा है–

जिन वेद पठियो सो वेदी कहाये,
तिन्हे धर्म के कर्म नीके कमाये।
इन वेदियों की कुल विखे
प्रकटे नानक राये।

इस प्रकार वेदपाठी परिवार से सम्बद्ध हिन्दू होते हुए भी गुरु नानक ने हिन्दू समाज के लिए कलंकस्वरूप जन्म-जाति का और छुआछूत का कभी समर्थन नहीं किया। इतना ही नहीं, हिन्दू समाज में नीचे समझे जाने वाले वर्गों को उन्होंने अधिक आत्मीयता और स्नेह से अपनाया। इस नाते से भक्ति-काल की इस परम्परा को उन्होंने अक्षुण्ण रखा–

जाति-पांति पूछे नहिं कोय।
हरि को भजे सो हरि का होय॥

जाति-पांति का विरोध और एकेश्वरवाद का समर्थन–इन दोनों बातों को पौराणिक और पुरातन-पंथी हिन्दू भले ही हिन्दुत्व-विरोधी मानते रहें, पर ये दोनों विशेषताएं ऐसी थीं जो इस्लाम के मुकाबले में हिन्दू जाति की रक्षा के लिए आवश्यक थीं। इसी कारण गुरु नानक का संदेश दिन-दिन अधिकाधिक लोकप्रिय होता गया। उनके शिष्यों की संख्या बढ़ती चली गई। उनके शिष्यों में हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी शामिल होते गए। गुरु नानक के सदा साथ रहने वाले जिन दो व्यक्तियों का बार-बार उल्लेख आता है–वे हैं लहना और मरदाना। लहना जात का नाई था और मरदाना मुसलमान। मानव-मात्र की समानता के इस संदेश से आकर्षित होकर जिन्होंने गुरु नानक का शिष्यत्व ग्रहण किया, वे ही शिष्य होने के कारण सिख कहलाए। शिष्य और सिख केवल पर्यायवाची नहीं, बल्कि एक ही शब्द हैं। जो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में शिष्य हैं, वही पंजाबी में सिख हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई शक्तियों का उन्मेष

15वीं सदी के जिस युग की चर्चा की जा रही है, उसको यदि व्यापक सन्दर्भ में देखना हो, तो यह कहा जा सकता है, कि उसी युग में पहली बार यूरोपीय ईसाई शक्ति का भारत से सम्पर्क हुआ था। सन् 1469 में गुरु नानक का जन्म हुआ, उधर सन् 1498 में प्रथम यूरोपीय व्यक्ति का भारत में आगमन हुआ। अमरीका की खोज का श्रेय कोलम्बस को दिया जाता है। वह असल में खोजने निकला था भारतवर्ष को। क्योंकि भारत के अतुल ऐश्वर्य की किंवदन्तियों को सुन कर यूरोप के देशों में भारत पहुंचने के समुद्री मार्ग को ढूंढने की होड़ मच गई थी। कोलम्बस भारत का ही समुद्री मार्ग खोजने निकला, पर वह पहुंच गया अमरीका। भारत का समुद्री मार्ग वह नहीं खोज सका। उस खोज का श्रेय मिला पुर्तगाल-निवासी वास्कोडि-गामा को। वही पहला यूरोपीय था जो 22 मई 1498 को भारत के पश्चिमी तट के कालीकट बन्दरगाह पर उतरा था।

पुर्तगाली अपने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ईसामसीह की मूर्ति से अंकित सलीब लेकर आए थे। जब उन्हें 'सोने की चिड़िया' के नाम से विख्यात इस देश में प्रचुर मात्रा में सोना मिलने लगा, तो वे दोनों हाथों से सोना बटोरने लगे। सोना बटोरते-बटोरते उनके हाथ में तलवार पकड़ने की ताकत नहीं रही। तब डचों ने उनको परास्त कर दिया। जब डचों की यही हालत हो गई तो उन्हें फ्रांसीसियों ने परास्त कर दिया। जब यूरोप में नेपोलियन का पराभव हो गया, तो सर्वत्र फैले फ्रांसीसी वर्चस्व को भी बुरे दिन देखने पड़े।

भारत में जो पहला अंग्रेज आया उसका नाम था कैप्टेन हाकिन्स। वह सन् 1608 में जेम्स प्रथम से मुगल सम्राट के नाम पत्र लेकर सूरत बन्दरगाह पर पहुंचा था। उसके बाद सत्रहवीं और अठारहवीं सदी इस भरत-खण्ड में धीरे-धीरे यूरोपीय ईसाई शक्तियों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता और अन्त में अंग्रेजों की विजय की कहानी है। पर इन ईसाई शक्तियों की यह सारी होड़ भारत के पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी समुद्री तटों तथा उनके निकटवर्ती प्रदेशों में चलती रही। समस्त उत्तरी भारत और देश का विस्तृत मध्य भाग उससे अछूता रहा। इस सारे भूखण्ड पर तो उस समय इस्लामी सूर्य अपने प्रखर तेज से दमक रहा था।

इस्लामीकरण पर रोक

इस इस्लामी तेज को और मुगल सल्तनत को भारतवासियों ने सहज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत से स्वीकार नहीं किया। स्थान-स्थान पर हिन्दुत्ववादी शक्तियां उभरने लगीं और मुगल सत्ता को चुनौती देने लगीं। पर वह तो बाद की कथा है।

गुरु नानक के समय मुगल सत्ता ने कैसा अन्धेर मचा रखा था, उसका वर्णन 'नानक प्रकाश' में इस प्रकार किया है—

सय्यद शेख मुगल पठान,
जालिम भये सभी बलवान्।
हिन्दुअन को दुख देत महाय,
देवन के मन्दिर गिरवाय।
घोर नाथ से औघड़ साधु,
पंडित दत्त से सुमति अगाधु।
मरवा चीलों को खिलवाय,
के चित मेखें ठोक मुकाय।
के चित कच्चे चम्म चढ़ाये,
के चित कुत्तियों से तड़वाये।
तुर्क होना जिन्हें न मानियो,
तिन-तिन को अति दुख वहानियो।
यज्ञ-हवन कोई करन न पाये,
करे जो तिह दुख देत महाये।
सुन्दर पेखे जाकी तरुणी,
पकड़ करे बल से निज घरनी।
काज़ी रिश्वत लेकर सारे,
सांचे को झूठा कर डारे।

ऐसे वातावरण में, जब भारत के अन्य प्रदेशों में भक्त कवि अलख जगा रहे थे और जनता को जीवन का आधार प्रदान कर रहे थे, तब शूरवीरों की और प्राचीन आर्यों की पंजाब की प्रिय भूमि उससे अछूती रहे, यह कैसे सम्भव था। वहाँ सदियों से किसी सन्त के पांव नहीं पड़े थे। भारत का प्राचीन अक्षय ज्ञानकोष अज्ञान, अन्धविश्वास और मुगल अत्याचारों के कारण धूमिल पड़ गया था। पंजाब की धरती ज्ञान के जिस आलोक के लिए तरस रही थी, उसका व्यावहारिक दर्शन उसे गुरु नानक की वाणी में मिला।

गुरु नानक की वाणी में बेशक नवीनता न हो, पर उसकी विशेषता यह है कि वह रहस्यात्मक नहीं थी, उसमें शास्त्रीय जटिलता नहीं थी, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी सरल-स्निग्ध और प्रेम-पगी थी, कि उसने पंजाब के पौरुष-प्रधान परुष हृदय को पिघलाकर मोम बना दिया, रूढ़ियां पानी बनकर बह गईं, बाह्याडम्बरों और जाति-पांति के सामाजिक दुर्गों पर बिजली-सी गिर पड़ी। उनका अपना जीवन इतना सादा, विचार इतने निर्मल, चरित्र इतना स्वच्छ और व्यवहार इतना शिष्ट था कि जन-मानस बरबस उनकी ओर खिंचता चला गया। किसी पंथ, ग्रंथ या महन्त से वे जुड़े नहीं थे, इसीलिए निर्द्वन्द्व और उन्मुक्त थे। इसीलिए वे इतमें व्यापक हो सके। वे किसी से दबे नहीं, किसी के आगे झुके नहीं, जो ठीक लगा सो कह दिया।

इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि पंजाब और सिन्ध में इस्लाम के प्रचार पर रोक लग गई। लोगों ने भय और प्रलोभन से मुसलमान बनना छोड़ दिया। वैचारिक स्तर पर और व्यावहारिक स्तर पर अब उन्हें इस्लाम से दबने की आवश्यकता नहीं रही। गुरु नानक की वाणी की शीतलता ने हिन्दुओं की तरह मुसलमानों के हृदयों को भी शीतलता पहुंचाई और हिन्दुओं के समान अनेक मुसलमानों ने भी उनका शिष्य होने में गर्व अनुभव किया। गुरु नानक क्या प्रकट हुए, जैसे अन्धकार में प्रकाश की लकीर खिंच गई।

इसी बात को भाई गुरुदास ने इस प्रकार लिखा है—

सत गुरु नानक प्रकटिया,
मिटी धुंद जग चानन होया।
ज्यों कर सूरज निकलिया,
तारे छिपे अंधेरा पलिया।

('पंजाब तूफान के दौर से' नामक पुस्तक का दूसरा अध्याय)

उपन्यास

तू मेरी राधा, मैं तेरा कृष्ण

जब से व्रजेशसिंह मेरे यहां आकर रहने लगे, मुझे अपने घर की हर चीज में नवीनता दिखाई देने लगी। शरीर में भी जैसे यौवन का ज्वार पुनः लहरें मारने लगा। न जाने सारा समय कैसे खोई-खोई रहती। तन-मन दोनों मगन।

उन दिनों मैं मास्को के फारेन पब्लिशिंग हाउस में अनुवाद का काम करती थी। मेरे कहने से व्रजेश को भी वहीं काम मिल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों साथ ही काम पर जाते और साथ ही घर आ जाते ।

अब मुझे घर के कामों में भी रस आने लगा। अपने हाथ से चाय बनाकर पिलाने में और अपने हाथ से खाना बनाकर व्रजेश को खिलाने में मुझे कैसा आनन्द आता था !

धीरे-धीरे व्रजेश और मेरी, दोनों की, दुनिया एक दूसरे में केन्द्रित होती गई ।

मेरे पास पांच कमरों का फ्लैट था। मेरा मासिक वेतन भी एक हजार रूबल से ऊपर था। मुझे किसी प्रकार की कोई दिक्कत नहीं थी। मेरे बच्चे व्रजेश को 'अंकल' कहने के आदी हो गए और व्रजेश भी उन्हें खूब प्यार करते। वो अक्सर उन्हीं के साथ खेलते, उन्हें उनकी रुचि की कहानियां तथा देश-विदेश की बातें सुनाया करते ।

घर क्या होता है ?—क्या चारदीवारी का नाम घर है ? क्या प्रकृति के प्रकोपों से बचाने वाली जगह का नाम घर है ? कोई होटल घर क्यों नहीं बन सकता ? एक खास घर में यह 'अपने' की भावना कहां से आती है ? सम्भव है कि कोई-कोई आलीशान घर में रह कर भी दिनरात सुनसान जंगल में भटकते हों, और कोई-कोई सुनसान जंगल में रहकर भी घर का आनन्द उठाते हों ?

ऐसा घर ईंट-पत्थरों से नहीं बनता। वह तो मन के तारों का बनता है। मन के तारों का भी और अन्तःकरण-रूपी अन्तरिक्ष के सितारों का भी। भौतिक सुविधाओं की दृष्टि से मेरे घर में कोई अभाव नहीं था। मेरे बच्चे भी आज्ञाकारी और मुझसे प्रेम करने वाले थे। परन्तु व्रजेश के इधर आने के बाद जैसे 'मेरा' घर नये सिरे से मुझे 'अपना' लगने लगा। घर में ज़ब तक एक दूसरे के मन को समझने वाले दो प्राणी न हों, तब तक वह घर कैसा ?

व्रजेश के स्वभाव में एक राजसी पत थी। सुरुचि-सम्पन्न लोगों की तरह तुनुकमिजाजी भी उसमें कम नहीं थी। परन्तु मेरे यहां आकर उसकी तुनुकमिजाजी और शाही तबियत कहां चली गई ? जितना खयाल मैं उसका रखती, उससे कम वह मेरा खयाल नहीं रखता। कभी-कभी वो घर के काम-काज में भी मेरा हाथ बंटाने लगता। मैं मना भी करती तो वह कहता—'नहीं, मुझे इसमें आनन्द आता है।'

....कभी-कभी वो कुर्सी पर बैठे-बैठे मुझे काम करता देखते रहते तो मुग्ध भाव से देखते ही रहते। मैं जब पूछती कि 'इस तरह क्यों मुझे घूर रहे हो ?' तो कहते—'मैं तुम्हारा अतीत—तुम्हारे अन्दर से—पढ़ रहा हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कहती—'मेरा अतीत ?'—

'हाँ, तुम्हारा अतीत !'

'पर वह अतीत अब कहाँ है ? अब तो केवल वर्तमान है। इस वर्तमान के पीछे अतीत को याद करने से फायदा ?'

'पर श्वेता, मेरा अतीत तो तुम्हें मालूम ही है। मैं तो एक-एक कर के सब कुछ तुम्हें बता चुका हूं। परन्तु तुम्हारा अतीत ? तुमने अपने अतीत के बारे में मुझे कभी कुछ नहीं बताया ?

मैं व्रजेश की ओर देखने लगी। बोली—'मेरे अतीत के प्रति तुम्हारी इतनी जिज्ञासा क्यों है ?'

'क्योंकि-ऐसी जिज्ञासा मानव के लिए अत्यन्त स्वाभाविक है।'

'तो सुनो— मेरा अतीत मर चुका है। समझ लो कि जो तुम्हारा अतीत है, उससे भिन्न मेरा अतीत नहीं है, कुछ भी हो, मैं उसे याद नहीं करना चाहती।

'श्वेता, हम हिन्दू लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि हम में हरेक के अनेक जन्म होते हैं। पता नहीं, कितने जन्म-जन्मान्तरों के चक्करों से गुजर कर हमने इस जन्म में यह रूप पाया है और इस जीवन की समाप्ति के बाद भी हमारे न जाने और कितने जन्म होंगे। पता नहीं— किस योनि में जन्म लेंगे ?'

'फिलासफी तो बड़ी अच्छी है। कभी-कभी मेरा भी मन यही मानने को होता है। यद्यपि हमारा भौतिकता-प्रधान समाज और हमारा मार्क्सवाद तथा साम्यवाद इस प्रकार की बातों में विश्वास नहीं करता और वह धर्म, ईश्वर तथा अध्यात्मवाद को निरा एक ढोंग समझता है; किन्तु मुझे लगता है कि सत्य यहीं तक सीमित नहीं है।........मेरी और तुम्हारी यह भेंट ही ले लो। कब, किसने, इसकी कल्पना की थी ? परन्तु अब लगता है, जैसे यह पूर्वजन्म की ही घटनाओं का कोई षड्यन्त्र है। कहां तुम, कहाँ मैं ? सर्वथा दूर देश के अजनबी और अपरिचित। परन्तु अब लगता है कि इतनी घनिष्ठता तो मेरी अब तक किसी भी व्यक्ति से नहीं रही।'

'श्वेता, यह तुम कहती हो ?'

'जो कहती हूं, ठीक कहती हूं। मैं यही अनुभव करती हूं।'

'श्वेता, अन्तराल में कहीं यही ध्वनि-मुझे भी सुनाई देती है।'

'सच ?'

'एकदम सच।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तब मन में आया कि हाथ का काम छोड़ कर व्रजेश से लिपट जाऊं और उसकी छाती में अपना मुँह छिपा लूँ। परन्तु, पता नहीं क्या सोच कर, मैं ठगी-सी वहीं गड़ी की गड़ी रह गई।

कुछ देर मुझे प्रकृतिस्थ होने में लग गई। मैंने पूछा—'अगर यह पूर्व-जन्म वाली बात सही हो तो यह बताओ कि उस समय की बात इस जन्म में याद क्यों नहीं रहती?'

व्रजेश बोले—'यों तो हमें कल की बात भी आज कहां याद रहती है? पर इसके लिए तो उस जगन्नियन्ता का धन्यवाद देना चाहिए : मान लो कि पूर्वजन्म की सब बातें हमें ज्यों-की-त्यों याद रहतीं, तो क्या—इस जन्म में जीना सुखकर होता? कितना कष्ट, कितनी वेदना, कितनी हताशा, कितनी प्रताड़ना और कितनी विडम्बना झेलनी पड़ती है मनुष्य को जीवन में; और फिर कितना संघर्ष करना पड़ता है मनुष्य को अपने अन्दर ही अन्दर! हमारे भौतिक संसार में जो युद्ध चलते हैं उन्हीं के भीषण रक्तपात को देख-सुन कर मन में ग्लानि होती रहती है। परन्तु मनुष्य के मन के अन्दर जो तुमुल संघर्ष चलता है उसकी तुलना में संसार के ये रक्त-प्लावित विश्वयुद्ध कुछ-भी नहीं हैं। मन के अन्दर तो प्रति क्षण भयंकर देवासुर संग्राम चलता ही रहता है। जरा कल्पना तो करो कि पूर्वजन्म की वे कटु स्मृतियां यदि आज भी हमारा पीछा नहीं छोड़ती, तो?—हर मनुष्य होश सम्भालते ही आत्महत्या न कर चुका होता? यह तो हमारे ही लाभ के लिए है कि हम प्रत्येक जन्म में अपना जीवन कोरे कागज की तरह एक नए सिरे से शुरू करते हैं और हम में नया उत्साह बना रहता है। इसी जीवन के कष्टों की परम्परा स्मृतिपट पर चढ़ कर हमें परेशान कर देती है। यदि पिछले जन्मों की विपत्कथाएँ भी इसमें जुड़ जातीं तो हम जैसे सदा ही प्रेत-बाधाओं से घिरे रहते। जिसने हमें जन्म दिया है, उसका इससे बढ़ कर हम पर और कुछ उपकार नहीं हो सकता कि वह समस्त कटु-स्मृतियों का लेखा-जोखा अपने ही पास रख ले और हम नए सिरे से संसार के क्रीड़ाक्षेत्र में खेलने के लिए उतर आयें। तभी हमारे कर्तृत्व की और हमारे जीवन की सार्थकता सम्भव है।'

मैं जैसे मन्त्रमुग्ध होकर सुनती रही। मुझे लगा कि भारत का ही कोई दार्शनिक ऐसी वाणी बोल सकता था। क्या व्रजेश की आत्मा में भी भारत का कोई प्राचीन ऋषि छिपा बैठा है? कहीं यह इसके जीवन के अनुभवों का निचोड़ तो नहीं! कम-से-कम—यह कोई किताबी उद्धरण तो प्रतीत नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—'मैंने महात्मा बुद्ध की कथाओं में पढ़ा है कि उनके भी अनेक जन्म हुए थे और यह भी कि कई जातकों में उनके विभिन्न जन्मों की कथाओं का ही वर्णन है। पर व्रजेश, मुझे यह बताओ कि क्या एक ही जन्म में अनेक जातक घटित नहीं हो सकते ?'

वो बोले—'कैसे कहूं कि नहीं हो सकते ? विज्ञान वाले ही मानते हैं कि सात साल के बाद मनुष्य के शरीर के सब अवयव नवीन हो जाते हैं, बिलकुल बदल जाते हैं, तो क्या—मन के तन्तु नहीं बदलते होंगे ? यों जब सोचने बैठता हूं तब मुझे लगता है कि हर क्षण का अपना पृथक् अस्तित्व है, परन्तु सत्य केवल वर्तमान है—न भूत, न भविष्य। यह अलग बात है कि वर्तमान के भी प्रत्येक क्षण की आधी टांग भूत में फंसी होती है और आधी भविष्य में, परन्तु जो भूत है वह गुजरा चुका है और जो भविष्य है वह अभी अनागत है; इसलिए उनकी, दोनों की ही, चिन्ता व्यर्थ है। वर्तमान का क्षण ही परम सत्य है। परन्तु वह वर्तमान है कहां ? वह पकड़ में कहाँ आता है ? आ भी नहीं सकता। क्योंकि वर्तमान तो भूत और भविष्य को जोड़ने की शृंखला-भर है, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व कहाँ है ? जैसे पहाड़ के ऊपर चढ़कर देखने वाले को शिखर के दोनों ओर की घाटियाँ दिखाई देती हैं, वैसे ही वर्तमान के काल-रूपी अश्व की सवारी करने वाले को दूर तक भूत और भविष्य की घाटियाँ दिखती रहती हैं।'

'व्रजेश, मैं नहीं चाहती ये घाटियाँ। इन घाटियों में अन्धकार है। मैंने इसी जन्म में अनेक जन्मों का अनुभव किया है। एक अन्धकार से दूसरे अन्धकार में मैं बहुत भटकी हूं। मुझे अन्धकार से नफरत है। मैं चाहती हूं—अपने अतीत को भूल जाऊँ। भविष्य की भी मुझे परवाह नहीं है। बोलो, व्रजेश, क्या भूत और भविष्य से मुक्त कराके तुम सदा मुझे वर्तमान में शरण दे सकते हो ? मेरा अतीत मुझ से छीन लो, भविष्य भी मेरे पास मत आने दो। कुछ ऐसा करो कि जो वर्तमान है मैं उसी को सर्वात्मना ग्रहण कर सकूँ और उसी में लीन हो सकूं।'

'श्वेता, भूत और भविष्य दोनों अन्धी गलियाँ हैं। मैं भी इनकी मरीचिका में बहुत भटका हूं। मैं भी इनसे अपना पीछा छुड़ाना चाहता हूं। मैं भी चाहता हूं—वर्तमान, केवल वर्तमान।'

और तभी, न जाने कैसे, हम दोनों एक पाश हो गये।

* * * *

शाम को मैं और व्रजेश जब दफ्तर से घर आ रहे थे तो सूर्य अस्ता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल को जा रहा था। मैंने पूछा—'व्रजेश, यह अस्त होता हुआ सूर्य कैसा लगता है?'

व्रजेश बोला—'जैसे कोई स्वर्णहंस स्वप्न देखता हुआ तालाब में उतर रहा हो।'

रास्ते के एक ओर कुछ झड़बेरी के पौधे उगे थे और उन पर लाल-लाल बेर लगे थे। मैंने पूछा—'ये बेर कैसे लगते हैं?'

व्रजेश बोला—'जैसे कोमलांगी डालियों ने कानों में लाल-लाल टॉप्स पहने हों।'

घर जल्दी पहुंचने के लिये हमने एक छोटा रास्ता पकड़ा जो एक गरीब बस्ती में से होकर गुजरता था। लकड़ी की बनी उन अनघड़ झोंपड़ियों को देखकर मैंने पूछा—'व्रजेश, ये झोपड़ियां कैसी लगती हैं?'

व्रजेश बोला—'जैसे जीर्ण-शीर्ण शरीर वाली, पोपले मुँह वाली, अपनी सुध बुध खोए, कोई बुढ़िया खड़ी हो।'

मैंने कहा—'व्रजेश, क्या बात है? आज तो तुम एकदम कवि बन गये हो!'

व्रजेश बोला—'श्वेता, यह सब तेरा कसूर है। तूने ही मुझे कवि बना दिया है।'

'मैंने? मैं तो स्वयं कविता करना नहीं जानती। मैं तुम्हें कवि कहाँ से बना देती?'

व्रजेश बोला—'कविता कोई किसी को सिखाता नहीं है। जब मनुष्य के मन में भावावेग उठता है तो वह स्वयं कवि बन जाता है। तुम्हारे प्रेम ने मेरे हृदय-समुद्र में ज्वार की तरंगें उठा दी है। सचमुच तूने मुझे कवि बना दिया है।'

शाम को घर पहुंच कर मैंने चाय बनाई। जब चाय में चीनी डालने लगी तो सहसा व्रजेश बोला—'हमारे महात्मा गांधी कहा करते थे कि चीनी तो सफेद जहर है।'

मैं बोली—'तो तुम्हारी चाय में कितना जहर डालूं?'

'यह तो नागिन के विष की क्वालिटी पर निर्भर है'—वह बोला।

'क्या कहा? जरा फिर तो कहना', और यह कह कर मैं खुद ही जोर से हँस पड़ी।

* * * *

एक दिन मैंने व्रजेश से पूछा—'क्यों, व्रजेश, क्या प्रेम करना पाप है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजेश ने कहा—'किसने कहा (कि प्रेम करना) पाप है ? तुम्हें रवि बाबू द्वारा लिखी एक लघुकथा का भाव सुनाता हूं । स्वर्गलोक में एक बार एक ऐसा व्यक्ति पहुंचा जो प्रौढ़ावस्था में पहुंचने पर यह समझने लगा था कि प्रेम करना एक गलती है, और जवानी में मैंने जो कुछ किया है अब मुझे उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए । वह रूप-रस-गन्ध-स्पर्श से परहेज करने लगा । जितना भी आत्मदमन वह कर सकता था, उतना करता रहा । सोचता रहा कि इससे मेरा परलोक सुधर रहा है और कम-से-कम जीवन के उत्तरार्ध में किये गये इस पश्चात्ताप की बदौलत ही स्वर्ग में मेरी सीट सुरक्षित हो जायगी । द्वार पर चित्रगुप्त ने उसे रोक लिया और अपना रजिस्टर निकाल कर उसके अच्छे और बुरे कर्मों का लेखा तैयार करने लगा । आगन्तुक यह देखकर हैरान रह गया कि जब से प्रेम को पाप समझकर उसने प्रायश्चित्त करना प्रारम्भ किया था, तब से, उसके जीवन की घटनाओं को 'डेबिट' के खाते में दर्ज किया गया है और उससे पूर्व के प्रेममय जीवन को 'क्रेडिट' के खाते में । चित्रगुप्त ने ही उसे बताया कि प्रेम ही जीवन का सार है । परन्तु तब उसके भ्रम-निवारण का कोई लाभ नहीं था ।....

'और श्वेता, मैं तो यह भी कहता हूं कि मनुष्य बिना प्रेम के रह ही नहीं सकता : बचपन में उसे अपने बड़ों से जो प्रेम प्राप्त होता है उसी ऋण से तो यह तब उऋण होता है जब स्वयं अपने बच्चों से प्रेम करता है । जवानी के प्रेम के ऋण का प्रश्न ही नहीं : वह तो नकद सौदा है—दोनों ओर से आदान-प्रतिदान का बराबर का हिसाब रहता है । कभी यह प्रेम श्रद्धा के रूप में प्रकट होता है, कभी वात्सल्य के रूप में, कभी प्रणय के रूप में । कभी-कभी इस प्रेम का एक अत्यन्त उत्तेजक और विस्फोटक रूप उद्दाम वासना के रूप में भी प्रकट हो आता है । परन्तु ज्वार तो समुद्र का असली रूप नहीं है ।

'रवि बाबू के शब्दों में ही जीवन की सार्थकता यह है—"प्रियतम, प्राणों के कुंज में सदा तुम्हारी रागिनी बजती रहे, हृदय-कमल के आसन पर सदा तुम ही विराजमान रहो, नन्दन की सुगन्ध से पुलकित तुम्हारे सुन्दर भवन में सदा विचरण करती रहूं । मेरी यह देह तुम्हारे चरणों की रज से सज्जित रहे ।" श्वेता, मैं तुम से ही पूछता हूं कि ऐसे व्यक्ति से बढ़ कर प्रभु-भक्त और कौन हो सकता है ? यह प्रेम-दीवाना ही असल प्रभु-भक्त हो सकता है । मेरे देश में इश्क-हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) और इश्क-मजाजी (भौतिक प्रेम) को मिलाकर जीवन को दार्शनिकता की जिस गहराई तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंचाया गया है उससे न केवल हमारे दैनिक जीवन में बल्कि हमारी कविता साहित्य, चित्रकला, संगीत और दर्शन में भी विचित्र आध्यात्मिकता की पुट आ गई है। हम इस आध्यात्मिकता के बिना रह नहीं सकते।........

'तुम जानती हो—हमारे यहाँ राधा और कृष्ण की कथा बहुत प्रचलित है? कथा का अर्थ यह नहीं कि वे कोई काल्पनिक पात्र हैं। हमारे लिए वे ऐतिहासिक पात्र हैं, और उतने ही सत्य हैं जितना हमारा अपना अस्तित्व। शायद उससे भी कहीं अधिक। ये राधा और कृष्ण कौन थे?—पति-पत्नी नहीं थे। राधा बरसाने के गोपनायक की पुत्री थी, और कृष्ण गोकुल के ग्राम-प्रधान नन्द के पुत्र थे। परन्तु दोनों का प्रेम?—यह ऐसा बेजोड़ कि धरती पर उसकी तुलना नहीं। दोनों जैसे—एक आत्मा, एक मन। राधा-माधव का यह चरित हमारे काव्यों का उपजीव्य ही नहीं, पूरा जीवन है। और राधा और माधव दोनों भौतिक तत्व नहीं, सर्वथा आध्यात्मिक तत्व हैं, ईश्वर के अवतार हैं। प्रत्येक समाज में, प्रत्येक समय कोई-न-कोई राधा रहती है, कृष्ण भी रहता है, और समाज के कठोर से कठोर विधि-निषेध भी उनको रोक नहीं सकते। परन्तु हमने इस पर आध्यात्मिकता की ओप चढ़ाकर उसे इतना उदात्त बना दिया है कि वह सारा प्रसंग हमारे लिए ग्रहणीय नहीं, प्रत्युत, वरणीय और पूजनीय बन गया है। मानव की आत्मा आदिकाल से चिर-सुन्दर आनन्द-धन की प्राप्ति के लिए जो अहर्निश व्याकुल हुई भंभीरी की तरह घूमती रहती है, राधा और कृष्ण के उपाख्यान द्वारा हमने उसी आकुलता को कविता का चोला पहनाया है।'

मैं बोली—'व्रजेश, तुम बोलते जाओ, और मैं सुनती रहूं। तुम्हारी बातों में इतना रस क्यों है, व्रजेश, बोलो तो सही? बताओ तो सही कि तुम्हारे साथ सम्पर्क से मुझे ऐसा क्यों लगता है कि मैं, इस लोक की प्राणी नहीं, किसी दूसरे लोक की प्राणी हूं। मेरे जीवन में आशा की नई उमंग क्यों उमग-उमग पड़ती हैं? तुमने दुनिया को देखने और समझने की मुझे जो नई दृष्टि दी है, क्या उसी का परिणाम है यह? सच, व्रजेश, कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हें स्वर्ग में प्रेम करना सिखाया गया था, फिर तुम्हें यह जानने के लिए धरती पर भेज दिया गया और मेरे साथ छोड़ दिया गया कि कहीं तुम वह प्रेम भूल तो नहीं गये? यदि ऐसी बात न होती तो मुझे तुम्हारे साथ इतनी एकात्मता क्यों अनुभव होती? कभी-कभी मुझे लगता है कि मैं एक छोटे-से जहाज में बैठी निरन्तर समुद्र में दिशाहीन भटक रही थी, कहीं किनारा नजर नहीं आता था, निराशा के आलम में मैं उस जहाज से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब सामान निकाल-निकालकर समुद्र में फेंकती चली जाती थी और आकस्मिक जलसमाधि की तैयारी कर रही थी। तभी अचानक अज्ञात देश से एक दूसरा जहाज आया। उस जहाज में से एक अजनबी मुसाफिर निकला। उस मुसाफिर ने आकर मुझे बचा लिया। वह अजनबी मुसाफिर और कोई नहीं, व्रजेश, तुम्हीं हो। अब तो बस लगता है—मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती।

'कभी हवा आकर मेरी खिड़की से टकराती है, कभी आकाश में बादल छा जाते हैं और बिजली कड़कती है, कभी आँधी-तूफान की सांय-सांय कानों में बजती है, कभी पेड़ की शाखाएं आँखों के सामने झूमती हैं—और इन सबसे मुझे एक ही आवाज सुनाई देती है—'तू अपनी मंजिल पर पहुंच गई है, यही है तेरा बसेरा।'

अगले दिन मैं व्रजेश को लेकर शादी के दफ्तर में गई। दोनों ने फार्म पर हस्ताक्षर करके यह प्रतिज्ञा की कि हम विवाह-सूत्र में बंधना चाहते हैं। 'यथासमय उत्तर मिल जायगा'—कह कर हमें वापिस भेज दिया गया।

मुझे एक-एक दिन भारी हो रहा था। जब कई दिन बीत गए और उत्तर नहीं मिला, तब मैं खुद गई पूछने के लिए कि कौनसी तारीख को हम यहाँ उपस्थित हों और कब हमें वर-वधू या पति-पत्नी का प्रमाण-पत्र दिया जायेगा?

क्लर्क ने कहा—'यह शादी नहीं हो सकती।'

'क्यों?'

'क्योंकि व्रजेशसिंह एक विदेशी है।'

'परन्तु किसी विदेशी से विवाह करने पर रूस में कोई प्रतिबन्ध तो नहीं है।'

'यह हम कुछ नहीं जानते। ऊपर से ऐसा ही आदेश है।'

मुझे तसल्ली नहीं हुई, तो मैं और ऊपर के अधिकारियों के पास गई।

वहाँ से भी यही सूचना मिली कि और 'ऊपर के अधिकारियों का तथा पार्टी के सेक्रेटरी' का यही आदेश है।

मुझे आश्चर्य हुआ कि विवाह के सम्बन्ध में पार्टी का और ऊपर के अधिकारियों का आदेश चलता है!

तब मैं सब तरह से लड़ने पर आमादा होकर सर्वोच्च अधिकारी के पास गई।

वहाँ सर्वोच्च अधिकारी ने कई नई बातें उठाईं। उसने कहा कि व्रजेशसिंह की पहले दो शादियाँ हो चुकी हैं और उसकी ये दोनों पत्नियां अभी तक जीवित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मेरी भी तो पहले दो शादियां हो चुकी थीं और मेरे दोनों पति शायद जीवित हैं—पता नहीं कहाँ ?)

व्रजेश ने कहा—'मेरी चैकोस्लोवाकिया वाली पत्नी मुझे छोड़कर चली गई है और उससे विवाह-विच्छेद हो चुका है। भारतीय पत्नी से तलाक की दरखास्त मैंने दे रखी है।'

'परन्तु तलाक जब तक मंजूर नहीं होता, तब तक, हम कैसे अनुमति दे सकते हैं ?'

इस पर व्रजेश की प्रत्युत्पन्नमति ने तुरन्त एक हल निकाला। उसने कहा—'मैं अपने आपको मुसलमान घोषित करता हूं। इस्लामी शरियत के हिसाब से दूसरी पत्नी भी जायज है।'

तब सर्वोच्च अधिकारी ने भी पैंतरा बदला। उसने कहा—'स्वेतलाना सारे राष्ट्र की मिल्कियत है, क्योंकि वह हमारे राष्ट्रपिता स्तालिन की पुत्री है, इसलिए रूस यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसकी राष्ट्रीय मिल्कियत किसी विदेशी के हाथ में पड़ जाय।'

तो मैं भी कोई जायदाद हूं ?—वैसी ही जड़ ? मेरी अपनी कोई आशाएँ आकांक्षाएँ नहीं हैं ? मुझे साम्यवादी शासन की मशीन में एक मशीनी पुर्जा ही बन कर रहना होगा ?

पहली बार शासन से विद्रोह की बात मेरे मन में आई। यह कैसा कानून है जो हमें पति-पत्नी के रूपमें साथ-साथ रहने से तो नहीं रोकता, किन्तु हमें परस्पर पति-पत्नी कहने का अधिकार देने को तैयार नहीं ? क्या यह आत्मवंचना नहीं है ? जो शासन ऐसे झूठ को प्रश्रय दे, उसे क्या कहा जाए ?

मेरे साथ विवाह करने के लिए व्रजेश कितनी दूर तक जाने को तैयार था, यह मैंने देख लिया। वह अपनी पहली पत्नी को छोड़ने को तैयार था। वह हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान बनने को तैयार था। वह मुझे भारत ले जाकर वहाँ मेरे साथ रहने को तैयार था। और यदि रूस सरकार मुझे भारत जाने की अनुमति न दे तो वह अपनी सारी सम्पत्ति और जायदाद का मोह छोड़कर मेरे साथ रूस में बसने और वहाँ का नागरिक बनने को तैयार था। वह मेरे लिए क्या कुछ करने को तैयार नहीं था ? क्या आज तक मुझे कभी ऐसा अनुरक्त पति मिला था ? या संसार में और किसी को ऐसा अनुरक्त पति मिला होगा ?

मैंने पूछा—'व्रजेश, "व्रजेश" शब्द का अर्थ क्या है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजेश ने कहा—'क्यों पूछ रही हो ?'

'यों ही ।'

'व्रजेश का अर्थ है—'व्रज' का स्वामी, यह श्रीकृष्ण का पर्यायवाची शब्द है ।'

श्वेता खुशी से उछल पड़ी । बोली—'बस, व्रजेश, फैसला हो गया : तुम मेरे कृष्ण, मैं तुम्हारी राधा । बोलो, अब तो बात बन गई, न ?'

'हाँ, श्वेता, तू मेरी राधा, मैं तेरा कृष्ण । दोनों उसी तरह एकात्म, एक-प्राण, एक-मन ।'

('स्वेतलाना' नामक लोकप्रिय उपन्यास के नवम् अध्याय का एक अंश)

व्यंग्य

कोयल से चमगादड़ तक

—क्षितीश वेदालंकार

एक ज्योतिषी ने हाथ देखकर बताया था कि इतिहास पर शोध करो तो 'पद्म भूषण' पा सकते हो । भारत की राजनीति ने ज्योतिषियों की भविष्यवाणी को असत्य सिद्ध करने का ठेका ले रखा है । ज्योतिषी महोदय को पहले ही आशंका थी, इसलिए वे तो दुर्दिन देखने से पहले ही चल बसे । पर शोध प्रबन्ध लिखा गया, सो लिखा गया । जनता सरकार ने आपातकाल के किसी भी महान कृतित्व को पुरस्कार से वंचित रखने के लिए पद्म भूषण आदि अलंकरण ही समाप्त कर दिए । एक राजनैतिक दल ने जैसे सब प्रश्नों का समाधान सड़कों पर ही तय करने का निश्चय किया है, वैसे ही वह शोध प्रबन्ध अब होली के अवसर पर जनता-जनार्दन के न्यायालय में उपस्थित है ।

विषय प्रवेश

भारत एक महान देश है । उसकी संस्कृति उससे भी महान है । पर उसका इतिहास लिखने वाले निरे 'सूरदास' सिद्ध हुए हैं । उनको बुद्धि का इतना अजीर्ण हो गया है कि वे पारस्परिक मतभेद को ही अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं । 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना', और 'तुण्डे तुण्डे सरस्वती' की कहावत उन्हीं पर लागू होती है । कोई कहता है कि विधर्मियों से स्वधर्म की और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अनवरत प्रयत्न ही गत एक सहस्र वर्ष का इतिहास है। कोई इस काल को पूंजीपतियों और शासकों द्वारा गरीब जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्मिलित शोषण का नाम देता है। विदेशियों द्वारा आर्थिक और राजनैतिक शोषण भी उसी के अन्तर्गत आ जाता है। कुछ कहते हैं कि गत कुछ सौ वर्षों में 'कम्पोजिट कलचर' की कम्पोस्ट खाद पर एक नयी संस्कृति पनपी है। ये सब इतिहासकार अपनी पूर्वाग्रह-युक्त विचार शृंखला के प्रतिबद्ध हैं। हमारी स्थापना है कि कोयल पर बुलबुल की विजय ही भारत का सच्चा सांस्कृतिक इतिहास है।

प्रमाण भाग

(क) कोयल सैंकड़ों-हजारों सालों से इस विशाल देश के वनों और उपवनों में कूकती रही। जनता और उसके प्रतिनिधि कवि उसकी आवाज पर रीझते रहे। कोयलिया की तान पर उनकी हृदय वीणा के तार झंकृत होते रहे। कोयल का स्वर सुनकर विरहिणी अपने परदेसी प्रियतम की सुध में बेसुध होती रही और परदेसी प्रियतम के कलेजे में उसकी कूक अपनी पिकबैनी मृगनैनी के अभाव की हूक जगाती रही। वसन्त के आगमन का तो लक्षण ही कोयल बन गई। नहीं तो कौआ भी काला और कोयल भी काली, दोनों में भेद ही क्या था! परन्तु—

प्राप्ते वसन्त समये
काकः काकः पिकः पिकः।

—ज्यों ही वसन्त आया कि कोयल और कौए का भेद स्पष्ट हो गया।

संस्कृत के (और हिन्दी के भी) कवि तो कोयल पर इतने लट्टू हुए कि न जाने कितनी अन्योक्तियां उसी को लेकर लिखी गईं। वसन्त आ जाए और कोयल की कुहू के स्थान पर कौओं की कांव कांव सुनाई देने लगे, तो संस्कृत का कवि कहेगा ही—

रे रे कोकिल या भज मौनं किंचिदुच्चरय पंचमरागम्।
नो चेत्त्वामिह को जानीते काक कदम्बकापिहिते वृक्षे।

—अरी कोयलिया! तू चुप कैसे बैठी है? कुछ तो बोल, अपना पंचम राग सुना। नहीं तो तुझे कौन जान पाएगा! इस आम के पेड़ पर चारों ओर कौए ही कौए बैठे हैं। तू चुप रही तो लोग तुझे भी कौआ ही समझेंगे। हिन्दी के कवि जब कहते हैं— 'कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ' तो कवि के बहाने से वे कोयल को ही सम्बोधित करते हैं। सारांश—कोयल भारत के कवियों का प्राण है।

(ख) **बुलबुल**—भारत के कवि आत्मरति में इतने लीन रहे कि उन्होंने बुलबुल को अपने पास तक नहीं फटकने दिया। भारतीय अभिजात-वर्ग ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन से चीनांशुक (रेशम) ग्रहण किया, भारतीय ज्योतिर्विदों ने अरब देशों से होराशास्त्र ग्रहण किया, आम जनता ने तुर्की भाषा के कुर्ता-कमीज शब्द भी ग्रहण कर लिये, पर भारतीय बाग-बगीचों को बुलबुल रास नहीं आई।

जो मुगल बादशाह भारत के सत्ता-प्रतिष्ठान के अधिष्ठाता बन कर बैठे थे, पहले उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक उपादानों से तालमेल बिठाने में ही कल्याण समझा। भारतीय कमल का सौरभ, भारतीय कोयल की कुहू ध्वनि, भारतीय रसालों का रस और भारतीय पूर्वजों की शौर्य-गाथाएं उनको भी खूब भाईं। पर शस्य-श्यामला भूमि के सब रसों का उपयोग करके भी जब उन्हें अपने मूल मरु प्रदेश की गरिमा सताने लगी, तब भीम और अर्जुन के स्थान पर सोहराब और रुस्तम आ गए। आम के स्थान पर खजूर आ गया। कमल के स्थान पर नरगिस आ गई और कोयल के स्थान पर बुलबुल आ गई।

राजनीति का असर कवियों पर भी पड़ा और तब नासिख जैसे शायरों ने शायरी में से हिन्दी और संस्कृत के शब्दों का ही नहीं, भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध सभी उपादानों का भी बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया। नासिख ने बड़े गर्व से कहा था—

इस्पहां हमने किए हैं कूचहाए लखनऊ।

—वे लखनऊ के गली कूचों को फारस के गली कूचे बनाने पर तुल गए और उसके बाद से उर्दू की शायरी में से कोयल का ऐसा बहिष्कार हुआ कि सर्वत्र बुलबुल का ही राग सुनाई देने लगा। भारतवासी भी—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलसितां हमारा॥

इत्यादि के द्वारा अपने आपको बुलबुल कहने में गर्व अनुभव करने लगे। इसके बाद तो ऐसा समय आया कि 'भारत-कोकिलाओं' को 'बुलबुले हिन्दो' ने पछाड़ दिया।

जहां तक शेरो-शायरी का सवाल है, चाहे कोयल रहे, चाहे बुलबुल, शायद बहुत अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि कविता में भाव का ही महत्व अधिक है पर अब तो बुलबुल इस सांस्कृतिक दौड़ में कोयल से इतना आगे बढ़ गई कि कव्वालियों से और अपनी अदाओं से जनता का मन मोहने वाली चिर-कुमारी (!)... बेगम भी 'बुलबुले-हिन्द' के खिताब से सुशोभित होने लगी हालांकि इस बुलबुल की असलियत पर भी एक शायर ने फब्ती कसी है—

मालूम है हमें सब बुलबुल तेरी हकीकत।
एक मुश्त उस्तख्वां पर दो पर लगे हुए हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—अरी बुलबुल ! हम तेरी सारी वास्तविकता जानते हैं। मुट्ठी भर हड्डी पर दो पर लगे हुए हैं, बस यही न !

सो जनाब, भारत का गत सैंकड़ों वर्षों का इतिहास कोयल पर बुलबुल की विजय का इतिहास है।

शोध प्रबन्ध का मुख्य कथ्य तो यहां समाप्त हो जाता है पर बिना परिशिष्ट के शोध प्रबन्ध कैसा ? इसलिए प्रबन्ध लिखे जाने के पश्चात जो नई खोजें हुई हैं, उनका उल्लेख भी आवश्यक है।

परिशिष्ट (1)— आधुनिक युग के लेखकों और कवियों को न कोयल से मतलब है, न बुलबुल से। उनकी दृष्टि में ये दोनों दकियानूसी पक्षी हैं, एकदम कालातीत, इसलिए उनकी नित्य नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने अपनी कविताओं में इन दोनों के स्थान पर अन्य दो प्राणियों को चुना है। उनमें से एक है—वैशाखनन्दन और दूसरा है लक्ष्मीवाहन।

गणेश की तरह काव्य के प्रारम्भ में जब तक वैशाखनन्दन की स्तुति न हो, ('मेरे प्यारे सुकुमार गधे !') तब तक मंगलाचरण पूरा नहीं होता, और काव्य की समाप्ति पर जब तक किसी लक्ष्मीवाहन की (साथ में चित्र हो तो और भी अच्छा !) स्तुति न हो काव्य सार्थक नहीं होता। काव्य प्रकाश के उद्भट प्रणेता श्री मम्मट कह ही गए हैं—'काव्यय यशसेऽर्थकृते' (जिस काव्य से यश और अर्थ न मिले, वह व्यर्थ है (व्यर्थ = वि + अर्थ) यों वैशाखनन्दन शोषित किन्तु शिकायत शून्य जनता का सच्चा प्रतिनिधि है, इसलिए जनवादी कवि कहलाने का इससे अच्छा उपाय क्या हो सकता है कि अपनी कविता-कामिनी को गर्दभराज की सवारी कराई जाए।

रहे लक्ष्मीवाहन ! उनसे बच कर जाने का भी रास्ता कहां है ! जिधर भी निकलो—आंखों के आगे वही तो नजर आते हैं—'हर शाख पै बूदम बैठे हैं।' हां, एक ही शर्त है, जिस तरह लक्ष्मीवाहन को केवल रात में ही दिखाई देता है, दिन में नहीं, उसी तरह इन लक्ष्मीवाहनों की स्तुति भी उन्हीं को फलती है जिनकी आंखों अन्धकार में भी काम कर सकती हैं।

परिशिष्ट (2)—ठहरिये ! जिस तरह कोयल और बुलबुल पुराने पड़ गए, उसी तरह इस शोध प्रबन्ध के प्रेस में जाते-जाते वैशाखनन्दन और लक्ष्मीवाहन भी पुराने पड़ गए। अब एक सर्वथा नए प्राणी उभर कर सामने आए हैं। वे हैं—स्वनामधन्य श्री चमगादड़। संस्कृत में उन्हें 'वाग्गुद' कहा गया है—अर्थात् जिनके वाणी और मल निकालने का स्थान एक ही है। जब लोग गाली-वर्षा को भी पुष्प-वर्षा समझते हैं, उस होली के अवसर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी और मल के मेल का प्रतीक यह प्राणी भी कैसा अद्भुत है ! चमगादड़ जानवर भी है, पक्षी भी है—वह अवसर पड़ने पर दोनों में अपने आपको गिनवाने को तैयार रहता है। लक्ष्मीवाहन का दिवान्धपना भी उसमें बरकरार है। बिचारा दिन भर पुराने खंडहरों में सोया रहता है। इसके अलावा आजकल के राजनीतिक दल-बदलुओं पर जितना फिट यह पक्षी बैठता है, उतना फिट और कोई नहीं बैठता। अगर ऐसे दल-बदलुओं की चले तो वे चमगादड़ को ही भारत का राष्ट्रीय पक्षी घोषित करने की मांग कर बैठे तो कोई आश्चर्य नहीं।

('देवता : कुर्सी के' नामक पुस्तक से)

पुरातत्व

श्रीकृष्ण की द्वारका

—क्षितीश वेदालंकार

गत वर्ष मैं सौराष्ट्र की यात्रा पर गया था। अब से 26-27 वर्ष पहले भी गया था। इन दोनों यात्राओं में सोमनाथ और द्वारका की ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक खोज में मेरी विशेष रुचि रही। कुछ विशेष उपलब्धि की बात तो मैं नहीं करता, किन्तु कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के सुसंगत समाधान से मन को आश्वासन अवश्य मिला। जब पहले गया था, तब सोमनाथ के नये मन्दिर का निर्माण सर्वथा प्रारम्भिक अवस्था में था, किन्तु अब उस भव्य मन्दिर का निर्माण पूर्ण होने के निकट है। द्वारकाधीश का मन्दिर जो पहले देखा था उसमें मरम्मत की जरूरत थी। इस बार देखा कि कई स्थानों पर मरम्मत हो चुकी थी और कुछ स्थानों पर मरम्मत चल रही थी। यात्रियों की भीड़ न पहले कम थी, और न अब। पर इस बीच समुद्र गर्भ में डूबी द्वारका नगरी के जो अवशेष पुरातत्त्वज्ञों को मिले हैं, उन्होंने महाभारत और हरिवंश पुराण (जो महाभारत का ही परिशिष्ट समझा जाता है) के अधिकांश विवरण को सत्य सिद्ध कर दिया है।

कंस-वध के पश्चात् जब जरासंध ने अपने दामाद के वध का प्रतिशोध लेने के लिए मथुरा पर बारम्बार आक्रमण किए, तो कृष्ण ने मथुरा को छोड़कर चन्द्रवंश के अन्य लोगों के साथ सुदूर सौराष्ट्रस्थित द्वारका को बसाया। पर श्रीकृष्ण ने जिस द्वारका को बसाया, क्या वर्तमान द्वारका वही श्रीकृष्ण वाली द्वारका है ? महाभारत के आदि पर्व और सभा पर्व में द्वारका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रैवतक पर्वत के पास बताया गया है। वह रैवतक पर्वत अब जूनागढ़ में गिरनार कहलाता है। वास्तव में वह गिरिनगर है। अब वह जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है। गिरनार में दस हजार सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। 5 हजार सीढ़ियों के बाद खुले मैदान में जैनियों के सुन्दर मन्दिर और धर्मशाला बने हुए हैं। अपनी धर्मशाला में वे किसी गैर-जैनी को प्रश्रय नहीं देते। अधिकांश यात्री यहीं तक जाते हैं। इसके बाद की 5 हजार सीढ़ियाँ चढ़ने की हिम्मत बिरले लोग ही करते हैं क्योंकि वहाँ तक चढ़ते-चढ़ते कचूमर निकल जाता है। बाद में सौराष्ट्र के प्रसिद्ध आर्य दानवीर सेठ नानजीभाई कालीदास ने अम्बाजी का एक छोटा-सा मन्दिर शिखर पर भी बनवा दिया है और वहाँ शक्ति के प्रतीक त्रिशूल की स्थापना कर दी है। मैं अपनी पत्नी के साथ शिखर तक गया था और रात का प्रथम प्रहर बीतने तक हम वापिस लौट सके थे।

द्वारका कहाँ थी ?

द्वारका गिरनार के पास रही हो, या न रही हो, पर यह स्थान कभी बहुत प्रसिद्ध रहा होगा, तभी तो सम्राट् अशोक ने गिरनार की तलहटी में ब्राह्मी लिपि में अपना शिलालेख लगवाया था। आदि पर्व और सभा पर्व में भले ही रैवतक पर्वत के निकट द्वारका होनें का उल्लेख हो, पर मुसल पर्व में द्वारका के समुद्र के निकट होने का उल्लेख है। साथ ही उसे 'वारिदुर्ग' (जल में बना किला) और उदधिमंडलस्थम् (समुद्र में स्थित) भी बताया गया है।

इतिहासकारों का कहना है कि यादवों का सौराष्ट्र की ओर यह प्रव्रजन श्रीकृष्ण के समय ही नहीं, उससे तीन सौ वर्ष पहले प्रारम्भ हो चुका था। कृष्ण के ही एक पूर्वज आनर्त के पुत्र रेवत ने समुद्र के बीच में एक टापू पर कुशस्थली बसाई थी और बाद में उसी के ध्वंसावशेषों पर द्वारका बसाई गई। महाभारत के कथनानुसार श्रीकृष्ण ने इस स्थान को इसलिए चुना क्योंकि नारियल के पेड़ तथा अन्य वृक्ष वनस्पतियां प्रभूत मात्रा में थीं और गाय, भैंस, हिरण आदि जानवर भी। उसका धरातल ताम्रवर्णी था और चट्टानें थीं और कांटेदार झाड़ियाँ थीं। फिर भी राजधानी बनाने के लिए स्थान छोटा पड़ता था, इसलिए श्रीकृष्ण ने समुद्र से प्रार्थना की तो समुद्र ने कुछ जमीन और छोड़ दी। इसकी व्याख्या आधुनिक इतिहासकार यह करते हैं कि समुद्रतट को सुखाकर जिस तरह आजकल बम्बई में अनेक बस्तियाँ बसाई गई हैं, वैसे ही तब भी किया गया होगा।

महाभारत में द्वारका की लम्बाई 12 योजन और चौड़ाई 4 योजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताई गई है । ध्यान देने की बात यह है कि इस समय द्वारका से बेट द्वारका (बेट = टापू) 30 किलोमीटर की दूरी पर है, जो लगभग 12 योजन के आसपास ही बैठती है । कहा जाता है कि श्रीकृष्ण का परिवार बेट द्वारका में रहता था, जबकि राजधानी द्वारका नगरी में ही थी । उस समय ये दोनों स्थान एक टापू से जुड़े हुए थे । उसके बाद हरिवंश पुराण के अनुसार वहाँ वीथियाँ और सड़कें बनाई गईं, बाग लगाए गए, मन्दिर और शालाएं बनाई गईं और राजपरिवार के लिए प्रासाद बने, तथा राजधानी के योग्य अन्य मुख्य इमारतें बनाई गई । फिर एक चहारदिवारी बनाई गई जिसके चारों दिशाओं में चार द्वार रखे गए, तभी इसका नाम द्वारावती पड़ा । लगभग 6 साल में राजधानी बनकर तैयार हुई ।

'गेट वे आफ इण्डिया'

श्रीकृष्ण ने इसी स्थान को क्यों चुना इसके भी अनेक हेतु हैं । सबसे पहला तो यह कि इस राजधानी के निर्माण के लिए किसी की जमीन नहीं छीननी पड़ी । बल्कि एक निर्जन टापू को आबाद किया गया । दूसरा हेतु यह कि वह एक स्वाभाविक बन्दरगाह था जो सामुद्रिक पोतों के लिए अच्छा शरण-स्थान था और उनको सुरक्षा प्रदान करता था । और तीसरा हेतु यह कि इस स्थान से अफ्रीकी देशों, अरब देशों तथा अन्य देशों से होने वाले व्यापार पर नियंत्रण रखा जा सकता था । इसी प्रकार के बन्दरगाह सोमनाथ और पोरबन्दर भी रहे होंगे । पोरबन्दर में 'बन्दर' शब्द इसी बन्दरगाह का सूचक है । सोमनाथ के निकट वेरावल और प्रभासपत्तन अब भी बन्दरगाह का ही काम करते हैं । प्रभासपत्तन में 'पत्तन' शब्द बन्दरगाह का ही पर्यायवाची है । इन स्थानों की तीर्थ के रूप में प्रसिद्धि उनके प्रमुख व्यापारिक केन्द्र होने के कारण भी रही होगी । एक तरह से यह कहा जा सकता है कि जिस तरह आजकल बम्बई को अंग्रेजों ने यूरोप के साथ व्यापार के मुख्य केन्द्र के रूप में बनाया और बसाया तथा वहाँ समुद्र के तट पर ही 'गेट वे आफ इण्डिया' बनाया, इसी प्रकार इस युग में द्वारका पश्चिमी देशों से व्यापार का प्रमुख केन्द्र और गेट वे आफ इण्डिया (भारत का द्वार) बना होगा—इसी में 'द्वारका' नाम की सार्थकता है ।

स्वर्णमयी नगरी

द्वारका के स्वर्ण नगरी होने की बात भी इसी से स्पष्ट होती है । जिस तरह आजकल आम भारतवासियों की दृष्टि में अपने धन-धान्य, ठाट-बाट और चकाचौंध के कारण बम्बई 'सोने की नगरी' है, या रामायण-काल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ऐश्वर्य और विलास के कारण लंका स्वर्णमयी कहलाती थीं, उसी तरह विदेशों से व्यापार का प्रमुख केन्द्र होने के कारण द्वारका भी धन-धान्य और ऐश्वर्य के सम्पन्न रही होगी और जन-साधारण में 'स्वर्णनगरी' के नाम से प्रसिद्ध होगी। इस समृद्धि के कारण सम्भव है कि वहाँ के प्रासादों और मन्दिरों के कंगूरे सचमुच सोने के मढ़े हों, तो कोई आश्चर्य नहीं।

फिर हरिवंश पुराण के अनुसार ही, श्रीकृष्ण की यह द्वारका 36 वर्ष तक खूब फली-फूली और श्रीकृष्ण के इस धराधाम से जाते ही उनकी द्वारका भी समुद्र में समा गई। परन्तु इसका आभास श्रीकृष्ण को पहले ही हो गया था। उन्होंने अर्जुन को बुलाकर कहा था कि सब महिलाओं और बच्चों को हस्तिनापुर ले जाओ और एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर इस नगरी को खाली कर दो। जब जनता का अन्तिम समूह नगरी को छोड़ रहा था, तभी समुद्र की लहरों का पानी गलियों और सड़कों तक पहुंचना प्रारम्भ हो गया। बाद में तो ज्वार का पानी इतना चढ़ा कि मकानों के अन्दर घुस गया, छतों तक चढ़ गया और देखते ही देखते द्वारका समुद्र गर्भ में समा गई।

पिछले दिनों द्वारका और बेट द्वारका के पास समुद्रगर्भ में जो खुदाई हुई है उसमें श्रीकृष्ण वाली द्वारका के ही अवशेष मिले हैं। पुरातत्वज्ञों ने अभी उन अवशेषों को साढ़े तीन हजार वरस पुराना माना है उसी खुदाई से यह भी स्पष्ट हुआ है कि द्वारका पांच बार बसाई गई और उतनी ही बार वह समुद्र गर्भ में समा गई। इसका रहस्य क्या है? प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि श्रीकृष्ण को उसके डूबने का पहले ही आभास कैसे हो गया था?

ज्वार और भाटे का करिश्मा

द्वारका की बगल में ही गोमती नदी है। वह सूखी पड़ी रहती है। पर जब समुद्र में ज्वार आता है तो पूरी नदी पानी से लबालब भर जाती है। उसके बाद जब भाटा आता है तो सारी नदी का पानी वापिस समुद्र में चला जाता है। नदी फिर सूखी की सूखी। द्वारका के निवासी इस बात को जानते हैं। वे पूरी तरह सावधान रहते हैं कि नदी में कब पानी आता है और कब चला जाता है। अब से कई वर्ष पहले दिल्ली के स्कूलों के कुछ विद्यार्थी द्वारका की यात्रा पर गए थे। उन्हें इस रहस्य का पता नहीं था। वे तैरने के प्रलोभन से नदी में कूद पड़े। थोड़ी हीं देर में नदी में भाटा आ गया। 5 विद्यार्थी और एक अध्यापक उसकी भेंट चढ़ गए। सब देखते ही रह गए। कोई कुछ नहीं कर सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार द्वारका के डूब जाने के पश्चात् फिर दुबारा वह कब बसाई गई, इसके उत्तर में समुद्री विद्या (ओशनोग्राफी) के विशेषज्ञ डा. एस. आर. राव का कहना है कि अब से 1000 वर्ष पहले तक हमारे पास इस बारे में कहने को कुछ नहीं था। पर अकस्मात् 50 ई. में एक ग्रीक पुस्तक, पेरिप्लस में किसी अज्ञात नाविक ने द्वारका का उल्लेख किया है। उसने इसे कच्छ की खाड़ी में स्थित 'ब्रेक' नाम दिया है। उसने अपनी पुस्तक में अन्य नाविकों को सलाह दी है कि वे इस भाग से सावधान रहें। उसकी चेतावनी केवल समुद्रवर्ती चट्टानों के कारण नहीं थी, बल्कि समुद्र गर्भ में समाए उस नगर के कारण भी थी जिसके ध्वंसावशेषों पर अब भले ही पानी की काफी गहरी परत चढ़ गई हो, परन्तु किसी जमाने में वहां पानी इतना गहरा नहीं था कि जहाज उन अवशेषों पर से सुरक्षित रह कर गुजर सकें। जिस समय द्वारका समुद्र में समाई, लगभग उसी समय के आसपास बहरीन की तटवर्ती बस्तियां भी समुद्र में समा गई थीं।

जो भी कुछ हो, इस प्रसंग से इतना तो स्पष्ट ही है कि ईसा की पहली शती तक द्वारका पुन: एक बन्दरगाह बन गया था, वहां तक जलपोतों का आवागमन होता था और उसके बाद का अब तक इतिहास निर्बाध रूप से प्राप्त होता है। द्वारका का वर्तमान मन्दिर भी केवल 500 वर्ष पुराना हा माना जाता है।

एक नया सिद्धान्त

समुद्रविद्या विशेषज्ञों और पुरातत्वज्ञों ने इस घटना की व्याख्या के लिए कुछ नये सिद्धान्तों का भी आविष्कार किया है। उनका कहना है कि द्वारका के डूबने के बाद पिछले साढ़े तीन हजार वर्षों में समुद्र में 6 बार भयंकर ज्वार और भाटे आए हैं। यही कारण हो सकता है एक के बाद एक द्वारका को 6 बार इस विपत्ति का सामना करना पड़ा। समुद्रों में यह भयंकर स्थिति तब आती है जब ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका के निकटवर्ती हिमखण्ड ध्रुवीय शिखरों के निश्चित अवधि के बाद उष्ण हो जाने पर पिघल जाते हैं। उससे समुद्रों का जल स्तर चढ़ जाता है। हडसन की खाड़ी के अध्ययन से पता लगता है कि हर 550 वर्ष के बाद ऐसी स्थिति आती है। हर 567 वर्षों के बाद सौर मंडल के ग्रहों का भी एक प्रमुख संगम होता है। हो सकता कि समुद्रों के भयंकर ज्वार और भाटे पर उसका भी कुछ असर पड़ता हो। भूतलीय इतिहास के इस सिद्धान्त के अनुसार वर्तमान समय से 6000 से लेकर 18000 वर्ष पूर्व के बीच समुद्रों का जल-तल 150 मीटर तक चढ़ा है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां जाकर स्थिर हो गया है। हमारा आज का जलवायु उसी जल-तल की स्थिरता का परिणाम है। इसी काल में मानवीय सभ्यता में और बुद्धिकौशल में विशेष उन्नति हुई है।

800 ई. पू. से लेकर 250 ई. पू. तक सभ्यता के विकास में एक बुद्धिमत्ता की लहर आई। इसी काल में बौद्ध मत, जैन मत, और उपनिषत्-परक हिन्दुत्व भारत में, कनफ्यूशियसवाद और ताओवाद चीन में, जरदुश्ती मत ईरान में और यहूदी मत पश्चिमी एशिया में उदित हुए।

ईसा के बाद के 250 से लेकर 800 वर्ष तक भी लगभग इसी प्रकार की विशिष्ट दो ऐतिहासिक धाराओं की पहचान की जा सकती हैं। अन्तिम ऐतिहासिक लहर को 'औपनिवेशिक लहर' कह सकते हैं जो 1350ई. के आस-पास प्रारम्भ हुई और जिसके कारण कठोर शीत से घबराकर यूरोपीय शक्तियों ने संसार के भिन्न-भिन्न गरम प्रदेशों में अपने उपनिवेश बसाने प्रारम्भ किए। उन्नीसवीं सदी तक आते-आते उपनिवेशवाद की वह लहर भी समाप्त हो गई। इन पांच सदियों में क्रमशः स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, फ्रांस और ब्रिटेन का प्रायः एक एक सदी तक बोलबाला रहा।

विज्ञान के क्षेत्र में समुद्रों का, उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों का तथा पेड़ों के तनों पर पड़ने वाले छल्लों का (जिनके आधार पर पेड़ों की आयु निर्धारित की जाती है) अध्ययन करने से यह पता लगता है कि गत् 11,000 वर्षों में हर 550 वर्ष बाद ऐसी नृतत्वीय लहरें चलती रही हैं जिन्होंने मानवीय इतिहास को विशेष रूप से प्रभावित किया है।

द्वारका सम्बन्धी इस विवरण से मैं स्वयं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, उसका उल्लेख पाठकों के समक्ष करना चाहता हूं।

मेरे निष्कर्ष

द्वारका के समुद्र गर्भ स्थित अवशेषों को इतिहासकारों ने 3500 वर्ष पुराना और सिन्धु सभ्यता कालीन माना है। सिन्धु सभ्यता को अब तक इतिहासकार तीन हजार वर्ष से लेकर पांच हजार वर्ष तक प्राचीन मानते हैं। पाश्चात्य इतिहासकारों ने उसे अनार्य सभ्यता बताया। उन्हीं के उच्छिष्टभोजी कुछ भारतीय इतिहासकार भी उन्हीं की हां में हां मिलाते हुए यह कहते रहे कि सिन्धु सभ्यता अर्थात् अनार्य सभ्यता अत्यन्त समृद्ध थी और विदेशों से आए जंगली आर्यों ने अपने शस्त्रबल से उसे नष्ट कर दिया। मोएन-जो-दड़ो और हड़प्पा उसी समृद्ध अनार्य सभ्यता के अवशेष हैं। परन्तु आर्यों के विदेशों से यहां आने का आज तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। न ही किसी भारतीय ग्रन्थ में इसका उल्लेख है।

सिन्धु सभ्यता 5 हजार वर्ष पुरानी है, यह बात सही है। इसका अर्थ हुआ कि वह महाभारतकालीन है। महाभारत को हुए भी 5 हजार वर्ष ही होते हैं। तथाकथित सिन्धु सभ्यता न केवल महाभारतकालीन है, वरन् आर्य सभ्यता ही है, अनार्य नहीं। वह सभ्यता अपने विलास-वैभव और समृद्धि के कारण स्वयं ही ध्वस्त हुई, जैसे कि रोमन और ग्रीक साम्राज्य नष्ट हो गए। बड़े-बड़े समृद्ध शहर भूकम्प, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भी नामशेष हो जाते हैं, किसी के आक्रमण से उनके नष्ट होने की कल्पना व्यर्थ है। उदाहरण के लिए, मोएन-जो-दड़ो सिन्ध की बाढ़ के कारण ध्वस्त हुआ और द्वारका समुद्र के ज्वार के कारण। इसीलिए समुद्र गर्भ स्थित अवशेष यदि सिन्धु सभ्यता के अन्य अवशेषों से मिलते-जुलते हैं,तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। वे उसके महाभारतकालीन होने के ही प्रमाण हैं—जो विशुद्ध आर्य सभ्यता के ही प्रतीक हैं, अनार्य सभ्यता के नहीं। पुरातत्वज्ञ यदि द्वारका के समुद्र गर्भ स्थित उन अवशेषों को 3500 वर्ष पुराना मानते हैं तो उनकी इस धारणा में भी यही भ्रान्ति प्रमुख है कि महाभारत का युद्ध केवल साढ़े तीन हजार वर्ष पहले हुआ। महाभारत के युद्ध को पांच हजार वर्ष पुराना मानते ही जहां सिन्धु सभ्यता के काल की स्पष्ट संगति लग जाती है वहां उस सभ्यता को अनार्य मानने और आर्यों द्वारा उसके विनाश की तथा आर्यों के विदेशों से आने की कल्पना भी स्वयं धराशायी हो जाती है।

महाभारत के काल में आर्यों का नैतिक पतन और भौतिक अभ्युदय दोनों साथ साथ चल रहे थे। भौतिक समृद्धि के साथ नैतिक पतन भी इतिहास से ही प्रमाणित है। अत्यधिक मद्यपान के कारण स्वयं श्रीकृष्ण के सामने ही यदुवंश का विनाश क्या इतिहास की कोई छोटी त्रासदी है? अपनी समृद्धि के कारण स्वर्णमयी कहलाने वाली द्वारका यदि भयंकर समुद्री ज्वार के रूप में प्राकृतिक प्रकोप का शिकार हुई तो यदुवंश का विनाश मानवीय नैतिक त्रासदी का परिणाम है।

उस काल की समृद्धि का भी एक विशेष कारण है। भरतवंशियों ने उस समय पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण में जो अपनी विजय-यात्राएं कीं, उनसे समस्त पूर्वी और पश्चिमी एशिया तथा अफ्रीकी देश भी अप्रभावित नहीं रहे। समुद्री व्यापार और आवागमन भी खूब बढ़ा। अपनी अनेक प्रकार की प्राकृतिक सम्पदाओं, पण्य-वस्तुओं, कला-कौशल और ज्ञान-विज्ञान का भारत ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना निर्यात (और आयात भी) किया उससे इसकी समृद्धि दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। तभी अरब सागर का नाम संस्कृत साहित्य में 'रत्नाकर' पड़ा—क्योंकि उसके माध्यम से रत्नों की खेप पर खेप भारत आती जाती थी। भारतीय वस्तुओं की विदेशों में अत्यधिक मांग थी। जब द्वारका के माध्यम से श्रीकृष्ण ने पश्चिमी एशिया और अफ्रीकी देशों के साथ व्यापार पर अपना नियंत्रण स्थापित किया, तो द्वारका को 'स्वर्णमयी' होना ही था।

ओखामण्डल

द्वारका और बेट द्वारका जिस प्रदेश में स्थित है वह ओखामण्डल कहलाता है। यह ओखामण्डल क्या 'उषामण्डल' नहीं है ? पाठक पूछेंगे—यह 'उषा' कौन ? उत्तर है— श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध की पत्नी का नाम उषा था। उसी उषा के नाम से यह स्थान उषामण्डल कहलाया। उषा को हरिवंश पुराण में बाणासुर की कन्या बताया गया है। तब अब अगला प्रश्न होगा— यह बाणासुर कौन है ?

असीरिया (आधुनिक ईराक) के इतिहास में एक बनीपाल नामक राजा का उल्लेख मिलता है। लगता है कि वह बनीपाल ही पुराण-वर्णित बाणासुर है। 'असुर' इसलिए कि वह असीरिया का निवासी था। असुर शब्द में राक्षसपने का भाव उतना नहीं जितना विदेशी होने का भाव है। जिस प्रकार 'म्लेच्छ' शब्द में भी भ्रष्टता के बजाय मूलतः गैर-जबान बोलने वाले (म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि) का भाव ही अधिक था। विदेशी होने के कारण उनका खान-पान और बोलचाल आर्यों से भिन्न हो, इसमें आश्चर्य क्या है ? इसलिए जब विदेशियों को आत्मसात् करने में असमर्थता के कारण भारतीयों में उनसे घृणा की प्रवृत्ति पैदा हुई तब असुर शब्द का अर्थ भी राक्षस हो गया। असीरिया के राजा बाणासुर को पराजित कर श्रीकृष्ण ने उसकी कन्या उषा से अनिरुद्ध का विवाह किया और उसी की स्मृति में इस प्रदेश का नाम उषामण्डल पड़ा। महाभारत काल में विदेशी कन्याओं से विवाह की बात भी कोई असामान्य बात नहीं थी।

इस प्रकार वर्तमान द्वारका और ओखामण्डल एकदम वही न सही, पर महाभारतकालीन ही हैं— मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं। आगे सुधीजन विचार करें।

['आर्य जगत्' के 27 अगस्त और 3 सितम्बर 1989 के अंकों में प्रकाशित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंशवृक्ष

- खुशालीराम (गोत्र सिंहल, निवास-ग्राम कनीना, जि. महेन्द्रगढ़, हरयाणा)
  - लाल जी
    - पतराम
      - रामानन्द
        - शम्भुराम
        - माणकचन्द
          - क्षितीश कुमार / पवित्रादेवी
            - विश्ववारा / डा. वेदव्रत
              - वरिम रेणु
              - अदिति
            - विनयादित्य / अर्चना
              - अनिभेष
              - पारिजात
            - शीलादित्य / अंजु
              - श्रुतकीर्ति
              - दिव्यकीर्ति
            - स्नेहरश्मि / प्रह्लादचन्द्र
          - कमलादेवी / कुन्दनलाल
          - चन्द्रकला / दुर्गाप्रसाद
          - सन्तलाल / शकुन्तला
        - बाबूलाल
      - गुलाबराय
      - नन्दराम

[सन् 1909 में श्री रामानन्द बद्रीनाथधाम की यात्रा पर गए थे। पुरानी वंशावलि वहां के पण्डे की बही से प्राप्त हुई।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन परिचय

जन्म : 16 सितम्बर, 1916, (आश्विन शुक्ला एकादशी-विजया-दशमी के बाद भरत-मिलाप के दिन-संवत् 1973 वि.)

जन्मस्थान : पुरानी दिल्ली (मुहल्ला जोगीवाड़ा)

स्कूली शिक्षा : चर्खे वालान कर्मशियल हाईस्कूल में तीसरी कक्षा तक

गुरुकुल प्रवेश : 1. महाविद्यालय ज्वालापुर सन् 1925
2. गुरुकुल कुरूक्षेत्र, सन् 1927
3. गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, सन् 1933
4. गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, सन् 1935

संस्कृत भाषण : आर्यसमाज चावड़ी बाजार (जो बाद में आर्यसमाज दीवानहाल के नाम से विख्यात हुआ) की रजत-जयन्ती (सन् 1934) पर आधा घण्टे तक संस्कृत में धारा प्रवाह भाषण

हैदराबाद सत्याग्रह : 2 फरवरी, 1939 को हैदराबाद शहर में पहुंच कर सुल्तान बाजार के चौराहे पर सत्याग्रह—गुरुकुल के प्रथम जत्थे का नेतृत्व

वेदालंकार : सन् 1939 की वैशाखी (13 अप्रैल) पर गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी के दीक्षान्त समारोह में जेल में होने के कारण अनुपस्थित रहने पर भी उपाधि प्रदान।

कारावास से मुक्ति : 5 अगस्त, 1939।

प्रभात आश्रम, मेरठ : श्री पं. बुद्धदेव विद्यालंकार का सान्निध्य-अक्तूबर, 1939।

उपदेशक : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा उपदेशक नियुक्त होकर मध्यप्रदेश और विदर्भ में नागपुर को मुख्यालय बनाकर सन् 1941 की जनगणना में जनता को 'आर्य' लिखवाने की प्रेरणा और प्रचार-सन् 1940।

सन् 1941 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में उप-देशक के रूप में नियुक्ति—पंजाब-सिन्ध-विलोचिस्तान में वैदिक धर्म और आर्यसमाज का प्रचार।

निष्कासन : सन् 1942 में, दक्षिण हैदराबाद के वार्षिकोत्सव पर ओजस्वी व्याख्यान के कारण निजाम रियासत में 5 वर्ष तक प्रवेश निषिद्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह : राजस्थान के प्रसिद्ध समाजसेवी, निष्काम राष्ट्रकर्मी, दृढ़ आर्यसमाजी श्री जयदेव आर्य की सुपुत्री, कन्या गुरुकुल हाथरस की स्नातिका, कु. पवित्रादेवी से अन्तर्जातीय विवाह—23 जून 1944 ।

पत्रकार : देश-विभाजन के बाद, 16 अक्तूबर, 1947 को 'अर्जुन' दैनिक में उप सम्पादक के रूप में नियुक्ति । कुछ समय तक 'साप्ताहिक अर्जुन' के सम्पादक ।

15 मार्च, 1953 को दैनिक 'हिन्दुस्तान' में नियुक्ति । क्रमशः उप सम्पादक, मुख्य उप सम्पादक, सहायक सम्पादक और साहित्य सम्पादक के रूप में कार्य । समाचार और फीचर लेखन-सम्पादन के अलावा 'एशिया के प्रांगण में', 'भारत के झरोखे से' 'विश्व-वातायन','यत्र-तत्र-सर्वत्र' आदि स्तम्भों में नियमित रूप से लेखन । अग्रलेख तथा पत्रकारिता सम्बन्धी अनेक विधाओं में लेखन । श्रेष्ठ कार्य के लिए पत्र की ओर से तीन बार पुरस्कृत ।

एम. ए. : (संस्कृत) : आगरा विश्वविद्यालय (मेरठ कालेज) से सन् 1954 में प्रथम श्रेणी में ।

अभिनय : मेरठ कालेज के छात्र के रूप में संस्कृत के 'मुद्राराक्षस' नामक प्रसिद्ध नाटक में मुख्य पात्र—चाणक्य—का प्रशंसनीय अभिनय । इस नाटक के दो प्रदर्शन मेरठ में और दो प्रदर्शन दिल्ली में हुए— सन् 1954

अवकाश ग्रहण : 16 मार्च, 1979 को दैनिक 'हिन्दुस्तान' से कार्य निवृत्त

आर्य जगत् (साप्ताहिक) : 1 जून, 1979 से 'आर्य जगत्' के सम्पादक । सम्प्रति वहीं कार्यरत । जीवन के 73 वर्ष पार कर लेने पर भी निरन्तर कर्मशील और विद्याव्यसनी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचित और सम्पादित कृतियों का संक्षिप्त परिचय

—डॉ. वेदव्रत 'आलोक'

1. 'आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति'

सन् 1939, प्रकाशक— गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, कनखल रोड हरिद्वार। गुरुकुल से हैदराबाद सत्याग्रह में जाने वाले पहले जत्थे का वर्णन है। जिसका नेतृत्व स्वयं क्षितीश जी ने किया था। इसकी भूमिका आचार्य स्वामी अभयदेव जी ने लिखी थी। सत्याग्रह में सम्मिलित होने वाले अन्य स्नातकों का भी परिचय दिया गया था।

2, 'जातिभेद का अभिशाप

सन् 1939, प्रकाशक—आर्यकुमार सभा, मुरादाबाद । ऐतिहासिक उदाहरणों के माध्यम से जातिभेद के कारण देश को होने वाली हानियों का दिग्दर्शन है। यह पुस्तक आर्यकुमार सभा की परीक्षा में नियत की गई थी।

3. 'जल-बिन्दु'

सन् 1949, प्रकाशक—साहित्य मन्दिर 4/16 रूप नगर, दिल्ली-6। गुजराती में 'धूमकेतु' नाम से विख्यात यशस्वी साहित्यकार श्री गोवर्धनराम जोशी की इसी नाम वाली रचना का हिन्दी में अनुवाद है।

4. 'आर्य समाज की विचारधारा'

(लघु पुस्तिका) सन् 1939, प्रकाशक—आर्योदय, पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली—2। इसमें आर्यसमाज की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व राजनीतिक मान्यताओं का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

5. 'स्वेतलाना (उपन्यास)'

सन् 1939—प्रकाशक—सुबोध पॉकेट बुक्स, नई सड़क, दिल्ली—6। क्रेमलिन की राजकुमारी, स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना के जीवन पर लिखा गया यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ कि एक ही महीने में इसका दूसरा परिवर्धित संस्करण दुगने मूल्य पर निकाला गया। इसमें लेखक की भावुक और अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न साहित्य सृजन-क्षमता के दर्शन होते हैं, जो इनके गहरे देश प्रेम का भी परिचायक है। इस पुस्तक का गुजराती और मराठी में अनुवाद होना इसकी लोकप्रियता का एक और प्रमाण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6. 'सातवलेकर अभिनन्दन ग्रन्थ'

सन् 1968, प्रकाशक—सातवलेकर अभिनन्दन समिति, मण्डी हाऊस, नई दिल्ली-11 वेदों के प्रसिद्ध विद्वान वेदमूर्ति श्री पं. दामोदर सातवलेकर के दिल्ली में सार्वजनिक अभिनन्दन के अवसर पर उन्हें भेंट करने के लिए यह ग्रन्थ तैयार किया गया जिसका पूरा भार क्षितीश जी को सौंपा गया, क्योंकि अभिनन्दन समिति को उनसे बढ़ कर वेदों का विद्वान अन्य कोई पत्रकार दिखाई नहीं दिया। क्षितीश जी ने इसे गुरुपूजा का अलभ्य अवसर मानकर इस कार्य को सहर्ष स्वीकार किया और अभिनन्दन समिति की ओर से बहुत आग्रह किए जाने पर भी पारिश्रमिक का एक पैसा नहीं लिया। इस ग्रन्थ में सातवलेकर जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ उनके क्रान्तिकारी वैदिक चिन्तन का सुन्दर प्रस्तुतिकरण हुआ है।

7. 'श्री कृष्ण सन्देश'

(जुगलकिशोर बिरला स्मृति अंक)– सन् 1969, प्रकाशक–श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा। भारत, भारतीय संस्कृति और हिन्दुत्व के निष्ठावान् उपासक बिरला जी की द्वितीय पुण्यतिथि के अवसर पर प्रकाशित इस विशेषांक का सम्पादन जिस कुशलता के साथ क्षितीश जी ने किया उसे सभी ने सराहा।

8. 'गांधी जी के हास्य-विनोद'

सन् 1969, प्रकाशक—सुबोध पॉकेट बुक्स। इसकी भूमिका काका कालेलकर ने लिखी। गांधी जी की जन्मशती पर उनके एक सौ विनोद-प्रसंगों का यह विशिष्ट प्रकाशन राष्ट्रपिता के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप प्रस्तुत किया गया था।

9. 'मारीशस-स्मारिका'

सन् 1973, प्रकाशक-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-21 सन् 1973 में सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन मारीशस में सम्पन्न हुआ था। उस सम्मेलन का पूर्ण विवरण, मारीशस का संक्षिप्त इतिहास सम्मेलन में सम्मिलित अधिकांश आर्यों के चित्र, जलपोत के 635 भारत-यात्रियों की पूरी सूची, विविध सम्मेलनों के अध्यक्षों के भाषण तथा कुछ अन्य उपयोगी सामग्री संकलित है। इस स्मारिका ने भारत और मारीशस के सम्बन्धों को दृढ़ और स्थायी बनाने में अच्छी भूमिका निभाई।

10. 'बंगलादेश : स्वतंत्रता के बाद'

सन् 1973, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली। उपन्यास से भी अधिक रोचक यह कृति उस वर्ष हिन्दी में सर्वोत्तम यात्रा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तान्त के रूप में समादृत हुई और हरियाणा सरकार की ओर से पुरस्कृत हुई। लेखक की साहसिक यायावरी और वर्णन-वैदग्ध्य की परिचायक।

11. 'ईश्वरः वैज्ञानिकों की दृष्टि में'

सन् 1976, प्रकाशक—जनज्ञान प्रकाशन, करौल बाग,नई दिल्ली-11 यह पुस्तक अंग्रेज़ी की 'दि एविडेंस आफ गॉड इन ऐक्सपेंडिंग यूनिवर्स' (ले. जानक्लोवर मोन्स्मा) नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें विज्ञान की विविध शाखाओं के संसार-प्रसिद्ध पाश्चात्य वैज्ञानिकों के ईश्वर सम्बन्धी विचार संकलित किए गए हैं। वैज्ञानिक लोग ईश्वर को नहीं मानते, इस भ्रम का निवारण करने वाली पुस्तक।

12. 'दयानन्द दिव्य दर्शन'

सन् 1976, प्रकाशक—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, रामलीला मैदान, महर्षि दयानन्द भवन, दिल्ली-2। बहुरंगी चित्र कलकत्ता के प्रसिद्ध कलाकार श्री चारुचन्द—के बनाए हुए हैं और आलेख क्षितीश जी ने लिखा है। विशेषता यह है कि इसमें ऋषि के जन्म से लेकर देहावसान पर्यन्त जीवनी का प्रांजल शैली में ऐसे ढंग से वर्णन किया गया है कि जीवनी का क्रम भी नहीं टूटता और चित्र का परिचय अलग से न दिए जाने पर भी उस वर्णन में स्वयं मुखर हो उठता है। प्रत्येक घटना को चित्र से बाकी बची जगह में समेटने के लिए शब्दों को गिन गिनकर लिखने में पत्रकारिता की परीक्षा थी। चौ. चरणसिंह ने वित्तमंत्री के रूप में पुस्तक का विमोचन किया और लेखक को सम्मानित किया।

बाद में इसी पुस्तक के आलेख को 'दिव्य-दयानन्द' के नाम से अलग पुस्तक का रूप देकर आर्य प्रकाशन, अजमेरी गेट, दिल्ली ने प्रकाशित किया।

13. 'ओ मेरे राजहंस !'

सन् 1977, प्रकाशक—विद्या प्रकाशन, दरियागंज,दिल्ली-2। दैनिक 'हिन्दुस्तान' में रविवार के दिन जो साहित्यिक रम्य अग्रलेख लिखे जाते थे, उनका संकलन।

14. 'फिर इस अन्दाज से बहार आई'

सन् 1978, प्रकाशक—किताबघर, गांधीनगर, दिल्ली—32। इस पुस्तक में भी ललित अग्रलेखों का संकलन है।

15. 'देवताः कुर्सी के'

सन् 1978, प्रकाशक—अलंकार प्रकाशन, गांधीनगर, दिल्ली-32। ललित अग्रलेखों का संकलन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त तीनों पुस्तकों में लेखक की साहित्यिक और राजनीतिक सूझबूझ, अनेक भाषाओं की विज्ञता और साहित्य की सर्वोत्तम समझी जाने वाली व्यंजना वृत्ति का सुन्दर परिपाक हुआ है। आपातकाल के दिनों में लिखे गए लेखों में साहित्यिक ढंग से की गई आलोचना मन मोहती है। इन अग्रलेखों का पुस्तकाकार छपना इनकी लोकप्रियता का प्रमाण है। नया आयाम है।

16. 'सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी स्मारिका'

अक्टूबर 1979, प्रकाशक—आर्य प्रादेशिक उपसभा, हरियाणा। पानीपत में हुए सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह के अवसर पर निकली स्मारिका जिसमें सत्यार्थ प्रकाश के सभी समुल्लासों के प्रमुख विषयों के सम्बन्ध में तथा अन्य अनेक दृष्टियों से सत्यार्थ प्रकाश का महत्व प्रतिपादित करने वाले लेख संकलित हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री चौ. चरणसिंह ने, जो स्वयं दृढ़ आर्यसमाजी थे, इस समारोह का उद्घाटन करते हुए स्मारिका का विमोचन किया।

17. 'लन्दन स्मारिका'

सन् 1980, प्रकाशक—आर्यसमाज लन्दन, यूनाइटेड किंगडम। लन्दन में हुए सार्वभौम आर्य महासम्मेलन (23 से 25 अगस्त, 1980) के अवसर पर प्रकाशित। अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में ऋषि दयानन्द और आर्य-समाज के सम्बन्ध में उत्कृष्ट और प्रामाणिक सामग्री। स्मारिका के तीन खण्ड हैं—(1) पहले और बाद में (Before and After,, (2) उनकी दृष्टि में (Through their eyes), (3) उपलब्धि और सम्भावनाएं (Achievement and Prospects)। साज-सज्जा, भारतीय संस्कृति के परिचायक लघु चित्रांकन और सार-गर्भित सामग्री की दृष्टि से बेजोड़। आर्यसमाज लन्दन ने इस स्मारिका के लिए क्षितीश जी को पांच हजार रु. पारिश्रमिक पुरस्कार स्वरूप दिए।

18. 'भारत को हिन्दू (आर्य) राज्य घोषित करो'

18 अक्टूबर 1981, प्रकाशक—आर्य प्रादेशिक सभा, दिल्ली-1। विराट् हिन्दू मंच की स्थापना के अवसर पर 'आर्यजगत्' का विशेषांक पुस्तक रूप में प्रकाशित। 'हिन्दू' के राष्ट्रीय स्वरूप पर देश के प्रमुख बुद्धिजीवियों के विचार और लेख। हिन्दुत्व के सही रूप को उभारने में विशेष योगदान।

19. 'निजाम की जेल में'

मई,1986, प्रकाशक—दि वर्ड पब्लिकेशन्स, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-19 सन् 1939 में हैदराबाद निजाम की रियासत में आर्यसमाज की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सत्याग्रह क्यों किया गया, किस प्रकार वहां हिन्दुओं के धार्मिक और नागरिक मानवाधिकारों का हनन हो रहा था—इसका पूरा ऐतिहासिक और प्रमाणिक विवेचन रियासत के रिकार्डों के दस्तावेजों के आधार पर। साथ ही जेलों में किस प्रकार अमानवीय अत्याचारों का बोलबाला था इसका यथार्थ वर्णन सत्याग्रह के सबसे पहले जत्थे की आपबीती के माध्यम से, सब सर्वाधिकारियों के और उस समय के प्रमुख आर्य नेताओं के तथा सरदार पटेल के समक्ष हाथ जोड़ कर झुक कर नमस्कार निवेदन करते हुए निजामुलमुतक उसमान अलीखां का ऐतिहासिक चित्र भी दिया गया है। रियासत के भारत में विलय में आर्यवीरों की भूमिका का वर्णन।

20, 'तूफान के दौर से पंजाब'

सितम्बर, 1984। प्रकाशक—दि वर्ड पब्लिकेशन्स, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-19। पंजाब की समस्या और खालिस्तान की असलियत के बारे में ऐतिहासिक आधार पर इतनी खोज अन्य किसी पुस्तक में नहीं। अन्तिम आवरण पृष्ठ पर दिए गए 'क्या आप विश्वास करेंगे' शीर्षक के नीचे कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनसे कोई भी पाठक चौंक सकता है। पर तथ्य तो तथ्य है। केवल तीन मास में ही प्रथम संस्करण। समाप्त। दिसम्बर 1984 में दूसरा परिवर्धित संस्करण। वह भी समाप्त। तीसरा संस्करण सन्, 85 में, जनता के आग्रह पर अंग्रेजी में।

21. डी. ए. वी. शताब्दी स्मारिका

15 नवम्बर, 1987,प्रकाशक—डी. ए. वी. शताब्दी स्मारिका समिति चित्रगुप्त रोड, नई दिल्ली। चार सौ पृष्ठों की यह भारी भरकम स्मारिका डी.ए.वी. आन्दोलन के सौ वर्ष पूरे होने पर प्रकाशित हुई। डी.ए.वी. आन्दोलन का पूरा इतिहास संक्षिप्त रूप से वर्णित। शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर देश के प्रमुख शिक्षाशास्त्रियों के अंग्रेजी और हिन्दी में लेख। इस स्मारिका को तैयार करने में पत्रकारिता सम्बन्धी कौशल और परिश्रम का जैसा तालमेल था उससे प्रसन्न होकर डी. ए. वी. शताब्दी स्मारिका समिति ने सम्पादक को दस हजार रु. पारिश्रमिक/पुरस्कार दिया, जो उपराष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा के कर–कमलों से प्रदान किया गया।

22. 'हिन्द की चादर में दाग'

सन् 1988, प्रकाशक—स्वामी सत्य प्रकाश स्मृति प्रकाशन, बरेली। 'आर्य जगत्' साप्ताहिक के सन् 1986 के अग्रलेखों का संकलन जो जनता के आग्रह पर तैयार किया गया। इसी प्रकार अन्य वर्षों के भी अग्रलेखों के संकलन छापने की उक्त प्रकाशन की योजना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्यजगत्' के विशेषांक के रूप में 'ऋषि निर्वाण शताब्दी स्मारिका' 'ऋषि बोधांक' 'क्रान्तिवीर अंक' और 'संस्कृत रक्षा विशेषांक' चिर स्मरणीय रहेंगे।

23. अप्रकाशित कृतियां

1. वैशम्पायन उवाच—किशोरावस्था के बालकों के लिए बाणभट्ट के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'कादम्बरी' की कथा।

2. हिन्दी ही क्यों ?—हिन्दी का अनेक दृष्टियों से महत्व प्रतिपादित करने वाले विद्वान् मनीषियों के लेखों का संकलन।

3, मेरी कैलाश मानसरोवर यात्रा, 4. मेरी उत्तराखंड यात्रा, 5. पंडिम के दुर्गम पथ पर, 6. हिमालय की कठिन यात्राएं, 7. भारत से बाहर की यात्राएं, 8. राष्ट्र का परिवर्तन (अंग्रजी से अनूदित), 9. मधुर आकांक्षा (अंग्रेजी से अनूदित)

उपाधि और सम्मान

वेदालंकार—गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से, सन् 1939

एम. ए. —आगरा विश्वविद्यालय से, 1954

आर्यरत्न —ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी पर सन् 1983 में 'आर्यरत्न' की उपाधि, शाल और एक हजार एक रु. की राशि से सम्मानित।

दक्षिण दिल्ली वेदप्रचार मंडल—दक्षिण दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों की ओर से सन् 1981 में 'भारत को हिन्दू (आर्य) राज्य घोषित करो' ग्रन्थ के लिए विशेष सम्मान और शाल प्रदान।

आर्यसमाज नयाबांस—सन् 1988 की जन्माष्टमी पर आर्यसमाज नयाबांस, दिल्ली की ओर से मान-पत्र, शाल और एक हजार एक रु. की राशि से सम्मान।

आर्यसमाज लाजपतनगर—सन् 1988 में शाल और पांच सौ रु. की राशि से से सम्मान।

आर्यसमाज पहाड़गंज—सन् 1988 के दिसम्बर मास में शाल और एक सौ एक रु. की राशि से सम्मान।

आर्यसमाज करौलबाग और भारतीय दलितोद्धार सभा—शाल और दो हजार एक रु. की राशि से सम्मान।

आर्यसमाज अनारकली मन्दिर मार्ग—20 नवम्बर, 1988 में दिल्ली आर्य केन्द्रीय युवक परिषद् की ओर से सम्मान।

आर्यसमाज दीवान हाल—17 अगस्त, 1989 को हैदराबाद आर्य सत्याग्रह की स्वर्ण-जयन्ती पर सार्वदेशिक सभा तथा दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों की ओर से प्रशस्ति-पत्र तथा शाल देकर सम्मान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक कार्य

1. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के एक वर्ष तक उपमंत्री, सन् 1961
2. आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पुस्तकाध्यक्ष—सन् 1963-64
3. आर्यसमाज नया बांस के प्रधान—सन् 1959-60-61
4. सार्वभौम आर्य महासम्मेलन लन्दन के प्रचार-मंत्री—सन् 1980
5. ऋषि निर्वाण शताब्दी अजमेर महासम्मेलन (सन् 1983) के प्रचार-मंत्री, कार्यक्रम और मंच-व्यवस्थापक।
6. भारतीय साहित्यकार संघ के तीन वर्ष तक प्रधान।
7. दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचारमंत्री और कार्यकारिणी के सदस्य।
8. पुरुषोत्तम हिन्दी भवन न्यास के सदस्य।
9. रत्नाकर मंडल (आनन्द लोक) के सदस्य।
10. नागरीलिपि परिषद् और अन्धत्व निवारण समिति के आजीवन सदस्य।

यात्राएं

1. कैलाश-मानसरोवर, सन् 1937
2. चकरौता से शिमला, शिमला से कुल्लू, कुल्लू से डलहौजी-चम्बा, पठानकोट, सन् 1938
3. अमरकंटक, और बस्तर, सन् 1940
4. पण्डिम का प्रथम भारतीय पर्वतारोहण अभियान, सन् 1951
5. कश्मीर से नूरीछम और कोंसरपीर की यात्रा, सन् 1944
6. पांगी की दुर्गम यात्रा, 1961
7. कश्मीर से कन्याकुमारी और द्वारका से इम्फाल तक भारत दर्शन।
8. उत्तराखंड—यमुनोत्री, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बद्रीनाथ, सन् 1983
9. रिवालसर, मण्डी, कुल्लू, मनाली, रटांग जोत—सन् 1984
10. विदेश—
    1. तिब्बत
    2. नेपाल
    3. बंगलादेश
    4. मारीशस
    5. केनिया-नैरोबी
    6. लन्दन-ब्रिटेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनश्च:

मौलिक चिन्तक क्षितीश जी

—वासुदेव शास्त्री एम. ए.

प्रि. दयानन्द बालिका महाविद्यालय, महावीर गंज, ब्यावर

क्षितीश जी के विषय में लेखनी उठाते हुए यही समस्या सामने है कि उनके जीवन के किस पक्ष को पकड़ा जाए तथा किस को छोड़ा जावे। वे एक मूर्धन्य पत्रकार, श्रेष्ठ लेखक, नए शब्दों के आविष्कर्ता, ओजस्वी वक्ता तथा मनीषी हैं।

उनका विस्मयकारी एक पक्ष यह भी है कि वे छात्र जीवन में हॉकी के एक श्रेष्ठ खिलाड़ी भी रहे हैं। उनका जीवन सदाशयता, संवेदनशीलता एवं भावुकता से ओत प्रोत है। विद्यार्थी जीवन से लेकर अद्यावधि वे जहां भी रहे, उनकी मेधा एवं प्रतिभा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मुखरित होता रहा। अध्ययन काल के अन्तिम वर्ष सन् 1939 में निजाम हैदराबाद के विरुद्ध हुए आर्य-सत्याग्रह के प्रथम जत्थे के वे प्रमुख सदस्य थे। उन्होंने अनेक साहसिक यात्राएं की हैं। बंगला देश बनने के पश्चात् वहां की यात्रा करके वे अपनी जान से खेले हैं। गुरुकुल छोड़ते ही आर्यसमाज का प्रचार करते हुए मध्यप्रदेश की अरण्यानि में फादर एल्विन से उसके शिविर में जाकर उससे साक्षात्कार करने वाले वे अन्यतम व्यक्ति हैं। वे आर्यसमाज के मंच के प्रमुख वक्ता रहे हैं तथा आज भी हैं।

उन्होंने अपनी पत्रकारिता अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र मूर्धन्य पत्रकार पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की छत्रछाया में "अर्जुन" से प्रारम्भ की। कुछ ही समय पश्चात् वे "दैनिक हिन्दुस्तान" में चले गए। वर्षों तक वे हिन्दुस्तान का 'यत्र तत्र सर्वत्र' स्तम्भ लिखते रहे। आपातकाल के समय जो सम्पादकीय उन्होंने दैनिक हिन्दुस्तान में लिखे, वह आग से खेलने का खतरा मोल लेने वाली बात थी। लाक्षणिक ग्रन्थों में काव्य की परिभाषा "काव्यस्य आत्मा ध्वनि:" कहा गया है, उसी का अनुवर्तन कर वे अपने सम्पादकीयों में अक्षरों के कलाकार बने रहे।

इस भूमिका के पश्चात् इनका जो सर्वश्रेष्ठ पक्ष है—वह है उनका मौलिक चिन्तन। आर्यसमाज के दृष्टिकोण से उनका एक मौलिक चिन्तन है। जिसे वे त्रिभुज का रूप देकर स्पष्ट करते हैं। उनका कथन है कि इस त्रिभुज का आधार यदि आर्यसमाज है तो इसकी दो भुजाएं राष्ट्र और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद हैं। आर्यसमाज से यदि राष्ट्र और वेद को निकाल दें तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। आर्यसमाज ने सदा भारत राष्ट्र की अस्मिता की पहचान कराई है तथा संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद को संस्कृति के शिखर पर पुनः अभिषिक्त किया है। वेद की सार्वकालिकता एवं सार्वभौमिकता को स्वीकृति दिलाने हेतु महर्षि दयानन्द ने सन् 1876 में दिल्ली में अजमेरी गेट के बाहर कुतुब रोड पर अपना डेरा जमाकर, वहां देश के चुने हुए नेताओं-मौलाना सर सैयद अहमद खां, केशवचन्द्र सेन आदि को एकत्र कर वेद को राष्ट्र का सर्वमान्य ग्रन्थ घोषित करने का प्रस्ताव उनके समक्ष रखा, किन्तु संकीर्ण विचारधारा और साम्प्रदायिकता से ग्रस्त ये लोग सहमत नहीं हो सके तथा वार्ता वहीं भङ्ग हो गई।

क्षितीश जी ने इस चिन्तन को मूर्त रूप देकर स्पष्ट किया है कि आर्यसमाज, वेद तथा राष्ट्र इन तीनों भुजाओं से बने त्रिभुज की एक भी भुजा यदि अलग कर दी जावे तो ऋषि दयानन्द की राष्ट्र के पुनर्जागरण में देन का कोई स्वरूप ही नहीं रहेगा। ऋषि दयानन्द की इस मौलिकता को इस मौलिक चिन्तनशील मनीषी ने पकड़कर उसका सही स्वरूप समाज के सामने प्रस्तुत किया है। ऋषि दयानन्द इसीलिए युग-प्रवर्तक कहलाए कि वे किसी भी जाति अथवा सम्प्रदाय से ऊपर उठे हुए थे। वेद उनके लिए राष्ट्रीय ग्रन्थ और प्रत्येक भारतीय की अस्मिता का प्रतीक भारत राष्ट्र, तथा इन दोनों का आर्यसमाज था।

इस त्रिभुज सिद्धान्त को उन्होंने एक नया व्यापक राष्ट्रीय आयाम भी दिया है, जो उनकी अद्‌भुत कल्पना-शक्ति, विद्वत्ता और प्रखर राष्ट्रवादी चिन्तन का द्योतक है। उनका कहना है कि भारत का भूगोल भी दो त्रिभुजों से बना है। एक त्रिभुज विन्ध्याचल से ऊपर है और दूसरा त्रिभुज विन्ध्याचल के नीचे है। भारत के मध्य भाग में कटि की मेखला की तरह पड़ा यह पर्वत भारत के उत्तर और दक्षिण भाग को जोड़ने वाली कड़ी है। ऊपर वाला त्रिभुज कैलाश-मानसरोवर से प्रारम्भ होता है—जो भारत की उत्तरी सीमा है। इस उत्तरी सीमा को जनमानस में प्रतिष्ठित करने के लिए ही पौराणिक अलंकार के रूप में कैलाश पर्वत पर देवाधिदेव शिव को प्रतिष्ठित किया गया है ताकि भारत का बच्चा-बच्चा यह याद रखे कि इस राष्ट्र की उत्तरी सीमा कैलाश है। वही इस ऊपर के त्रिभुज का शीर्ष बिन्दु है। इस त्रिभुज की एक भुजा है—पूर्वगामी ब्रह्मपुत्र नदी (मनुस्मृति के शब्दों में 'दृष्टद्वती'), और दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजा है—पश्चिमगामी सिन्धु नदी (मनुस्मृति के शब्दों में 'सरस्वती') और तीसरी भुजा है - विन्ध्याचल जो त्रिभुज का आधार है। यह हुआ उत्तरी भारत।

दक्षिण भारत का दूसरा त्रिभुज है, जो ऊपर के त्रिभुज से उल्टा पड़ा है। इस दूसरे त्रिभुज का शीर्ष बिन्दु है—कन्याकुमारी—जहां पार्वती चिर-कुमारी के रूप में (पौराणिक अलंकार की दृष्टि से) तपस्यारत है। इस त्रिभुज की एक भुजा है पूर्वी घाट और दूसरी भुजा है—पश्चिमी घाट। ये दोनों पर्वत शृंखलाएं दक्षिण भारत की पूर्वी और पश्चिमी सीमा निर्धारित करती हैं। इस त्रिभुज का आधार फिर मध्यवर्गी विन्ध्याचल है। इन दोनों त्रिभुजों से भारत का भूगोल बना है—इसी को शतपथ ब्राह्मण ने 'उपभधा-प्रउग' कहा है। इसलिए यह कोई नवीन कल्पना नहीं, भारत के प्राचीन ऋषियों का राष्ट्रदर्शन है।

कन्याकुमारी में तपस्यारत पार्वती का और कैलाश पर विराजमान शिवजी का विवाह ही भारत की भावात्मक एकता का आधार है। बिना दक्षिण और उत्तर भारत के ऐक्य के भारत की राष्ट्रीयता अधूरी है।

इस त्रिभुजाकार स्वरूप के जन्मदाता श्री क्षितीश जी हैं, उनकी इस मौलिकता तथा चिन्तनशीलता के लिए शत शत नमन।

क्षितीश जी का कद छोटा है जिसे देखकर पौराणिक वामनावतार की कल्पना साकार हो जाती है। चिन्तन के क्षेत्र में वे विष्णु के वामनावतार को चरितार्थ करते प्रतीत होते हैं। उनकी आयु के 73वें वर्ष की पूर्ति पर उनके स्वस्थ चिरायुष्य की मंगलकामना है।

मेरे भैया और भाभी

— कमलादेवी, पूर्व अध्यापिका

मैं उनसे दो साल छोटी हूं। अपने जीवन में जिस उतार-चढ़ाव से और जिन विषम परिस्थितियों से मुझे गुजरना पड़ा है, वह मैं ही जानती हूं। पर भाई साहब ने सब परिस्थितियों में मुझे जिस प्रकार सहारा दिया है, वह भी मैं ही जानती हूं।

इस अवसर पर मुझे बचपन की, उनके गुरुकुल में जाने से पहले और जाने के बाद की, तथा गुरुकुल से स्नातक बनकर निकलने के बाद की अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाएं याद आ रही हैं। वह दृश्य मुझे कभी नहीं भूलता जब वे गुरुकुल से स्नातक बन कर गांव में पहली बार आए थे और तब गांव वालों ने किस प्रकार 'हमारे इलाके का सबसे पहला गुरुकुल का स्नातक' कह कर उनका बैण्ड-बाजे के साथ धूमधाम से हार्दिक स्वागत किया था।

पर एक घटना तो मेरे स्मृति-पटल पर ऐसे अंकित है, जैसे कल ही घटी हो।

हरियाणा के प्रसिद्ध आर्य नेता, संसदसदस्य, हरियाणा-केसरी श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती एक बार हमारे गांव कतीना में आए थे। उनसे किसी ने कह दिया कि क्षितीश कुमार जी इसी गांव के रहने वाले हैं। सिद्धान्ती जी ने तुरन्त नीचे झुक कर जमीन पर से थोड़ी सी मिट्टी उठाई और उसे माथे से लगाते हुए बोले – "धन्य है यह धरती जिसने ऐसा नर-रत्न पैदा किया है।" मैं भी वहीं खड़ी यह सब देख रही थी। इस दृश्य को देखकर मेरी आंखों से हर्ष के आंसू निकल पड़े और मन ही मन गर्व हुआ कि ऐसे भाई की बहिन बनने का सौभाग्य मुझे मिला है।

एक बात भाभी के बारे में भी।

हमारे पिताजी भाभी को देख कर प्रसन्नता से खिल उठते थे और कभी कभी मुझसे कहा करते थे—"बेटा! क्षितीश ने तपस्या की है। उसी का यह फल है कि उसे ऐसी पत्नी मिली है। नहीं तो मेरा ऐसा भाग्य कहां कि ऐसी बहू मेरे घर आती?" मेरी भाभी ने कभी मुझे माता-पिता का अभाव अनुभव नहीं होने दिया।

ऐसे भाई और भाभी को पाकर मैं सचमुच ही धन्य हुई। मैं तो दोनों को ही हृदय से सदा दुआ देती रहती हूं।

—ग्राम कतीना,
जिला महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

करें कौनसा सुमन समर्पित !

—डॉ. वेदव्रत 'आलोक'

श्रीमच्चन्दन वृक्ष ! सन्ति बहवस्ते शाखिनः कानने
येषां सौरभमात्रकं निवसति प्रायेण पुष्पश्रिया।
प्रत्यंगं सुकृतेन तेन शुचिना ख्यातः प्रसिद्धात्मना
यो वै गन्धगुणस्त्वया प्रकटितः क्वासाविहप्रेक्ष्यते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए आपके सौरभ से सुरभित हम जीवन में।
करें कौनसा सुमन सर्मापित माली को उपवन में ?

लेखन प्रवचन में भरते शास्वत वाणी का चमत्कार।
अप्रतिहत अभिव्यक्ति आपकी सफल विरुद 'वेदालंकार' ।।
पाठक-श्रोता की भावभूमि पर राज्य आपका है क्षितीश।
शुभकृत्यों में सोत्साह जुटे, इसलिए कहाये क्या 'कुमार' !

यह सुरभि नाम की फैल रही सब आर्य जनों के मन में।
वे करें कौन से भाव भेंट निज प्रेरक को चिन्तन में ?

व्यापक सत्ता पर ईश्वर-विश्वास जमाया है ऐसे।
धर्म मानते नैतिकता कर्तव्य कर्म पूजा जैसे ।।
समभाव तथा समदृष्टि लिये रहते हो जीवन्मुक्त सदा।
पुरुषार्थ-चतुष्टय लक्ष्य आपका सिद्ध न हो, सम्भव कैसे ?

शास्त्रज्ञान का किया समन्वय, ध्यान दिया क्रियान्वयन में।
कर्म कौन से करें, सफल हों, कर्मठ चित्त-प्रसादन में ।।
हुए आपके सौरभ से ही सुरभित हम जीवन में।
करें सर्मापित सुमन कौन सा माली को उपवन में ।।

तन मन में दाक्षिण्य पूर्णता, साहस की साक्षात् मूर्तिता।
मृदु-दृढ़ता, निर्भीक नम्रता, सबल तर्क युक्त न्यायधर्मिता ।।
जो विरुद्ध से गुण हैं, वे भी साथ-साथ आ बसे आप में।
यथापेक्ष है मुखर वाग्मिता, किन्तु दूर है पुरोभागिता ।।

तुलना किससे करें आपकी महद् गुणों के सन्तोलन में।
करें कौन से गुण-संवर्धन योगी के समता-धन में ।।

हे चक्रचरण ! चिर यायावर ! ! तुमने नापा सारा स्वदेश।
देशान्तर में जा जा खोजा, जांचा-भांपा पूरा विदेश ।।
गिरि-गह्वर वन-कानन घूमे, भूगोल देख इतिहास समझ।
निष्कर्ष निकाले मानवीय, वैदिक संस्कृति का ले संदेश ।।

हस्तामलक सी बनी संसृति, पैठे हो इसके कण कण में।
अब करें कौनसा शब्द सर्मापित खोजी हो विश्वायन में ।।

हे तात ! आपका निर्देशन जब जब चाहा उपलब्ध हुआ।
वात्सल्य-मधुरता पाकर शुभ, मेरा चिन्तन भी सभ्य हुआ।
गुणधाम पिताश्री गुरुवर से अभिवादन को सौभाग्य मान।
यह नमन आपके चरणों में करके मैं भी कृतकृत्य हुआ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपवन के रक्षक बनकर सबको बांधा अपनेपन में ।
मैं करूं कौनसा स्तवन समर्पित त्राता के अभिवन्दन में ?
हम हुए आपके ही सौरभ से सुरभित इस जीवन में ।
फिर करें कौनसा सुमन समर्पित माली को उपवन में ?

प्रखर प्रतिभा की प्रतिमा

—त. शि. क. कण्णन, प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता

एक अच्छा लेखक होना बड़ी बात है, एक अच्छा वक्ता और भी मनोहारी बात है । पर इनके साथ एक सुदृढ़ सामाजिक, धार्मिक कार्यकर्त्ता होना सोने में सुहागे की बात है । श्री क्षितीश जी वेदालंकार का व्यक्तित्व इन त्रिगुणों का समन्वय है । उनके व्यक्तित्व में से इनमें से किसी भी एक तत्व को अलग नहीं किया जा सकता । जीवन भर स्व-अर्जित इस अनुपम साधना के फल को समाज में उन्होंने यथाशक्ति पुष्कल रूप में बिखरा दिया है ।

विविध गुणों के कारण उनका व्यापक विस्तृत बहुआयामी कार्यक्षेत्र होने से मित्रों, परिचितों, स्नेही जनों का बहुत विशद परिवार है । धर्म, समाज, पत्रकारिता एवं साहित्य के कार्यक्षेत्र में उनकी सक्रियता प्रत्यक्ष दर्शित होती है । श्री क्षितीश वेदालंकार एक स्वावलम्बी, स्वाभिमानी, परिश्रमी, अध्यवसायी, कर्मठ, चुस्त, मेहनती, अध्येता, सुविज्ञ, संस्कृत के पण्डित, विवेकशील सम्पादक हैं ।

आज के चाटुकारिता-प्रधान जन-जीवन में, पत्रकारिता सम्बन्धी सेवा काल में, कुछ ऐसी विषम परिस्थितियां भी आईं, जब उन्हें अनचाहा संकट भी झेलना पड़ा, पर उन्होंने उसे गुलाब के फूल की भांति मुस्कराते हुए सुवास दिया, कभी भी साथ चिपके कांटे की कतई परवाह नहीं की । अतः एकाध विरोधी भी उनकी स्नेही-मण्डली का सदस्य बने बिना नहीं रहा क्योंकि उनका राग-द्वेष-रहित स्नेही स्वभाव किसी को भी प्रभावित किए बिना नहीं छोड़ता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त, जागरूक, आत्मीय, भावपूर्ण आतिथेय धर्म-परायण, हिन्दी सेवा में तत्पर, व्यस्त लेखक। बस यह है श्री क्षितीश वेदालंकार का स्वरूप। धुन के पक्के, नियम से सधे। भई, मार्च में यह अंक निकालना है। पर बाबूजी अब तो फरवरी का दूसरा सप्ताह हो गया है। कैसे होगा? संक्षिप्त उत्तर होता—कोई नहीं, अरे भाई, अभी तो 15 दिन बाकी हैं। लगे रहो, सब हो जायेगा। रात 12 बजे तक बेतहाशा जूझते रहे। और यह लो, समय से पहले उनका अंक प्रस्तुत। कभी भी कोई काम हाथ में लिया तो जब तक उसे पूरा नहीं कर लेते, दम नहीं लेते। स्वाभिमानी जीवन पर उसमें रत्ती भर भी दम्भ नहीं। सदा निर्मल पावन गंगा के समान अग्रसर होते हुए जीवन का सहज सरल प्रवाह। अत्यन्त व्यस्त, नियमित कार्यप्रणाली, अतः प्रायः प्रतिदिन किसी न किसी साहित्यिक, धार्मिक या सामाजिक समारोह में उनके दर्शन हो ही जायेंगे। वेदालंकार जी! आपको भी बोलना है। स्वीकृति में सिर हिला दिया। और जब बोले, तो अपने ज्ञान स्रोत से सबको आश्चर्यचकित कर दिया। किसी भी विषय पर नपे तुले शब्दों में तथ्य पूर्ण सदाबहार वक्ता।

श्री क्षितीश जी छात्र-जीवन से ही प्रबल राष्ट्रवादी रहे हैं। हैदराबाद आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने से उन्हें कारावास भी भोगना पड़ा। यदि वे चाहते तो आज के स्वनाम धन्य नेताओं की भांति दौड़ धूप कर कहीं के कहीं पहुंच जाते। पर नहीं, वह भी क्या जीवन है, जिसमें प्रतिक्षण दूसरों की ओर ताकना पड़े। अनावश्यक, अनचाहा, चापलूसी का व्यवहार उनके सौम्य गुणों से दूर की बात थी। पत्रकारिता का मार्ग चुना, तो उसमें उठते-उठते शीर्ष स्थान पर पहुंच गए। दैनिक हिन्दुस्तान में पाठक उनकी लिखी पंक्तियां पढ़ने को तरसता। और लो आज का काम समाप्त हुआ, घर चलने को तैयार होते तो एक हल्की सी अचानक सूचना—आज का सम्पादकीय आपको लिखना है। नम्रता की उस मूर्ति की लेखनी फिर कागज पर सरपट दौड़ती, और कुछ ही देर में वह तैयार। सम्पादकीय अग्रलेख, 'यत्र तत्र सर्वत्र' आदि स्थायी स्तम्भ उनकी विलक्षण लेखनी के शब्द सौन्दर्य में थिरक उठते। बढ़िया लिखते। बस एक बार ही लिखते। मोती से अक्षर। कहीं कोई कांट-छांट नहीं। स्पष्ट भाषा, सुन्दर अक्षर, सुलझी हुई भावाभिव्यक्ति। पर्यटन, साहित्यिक, राजनीतिक, हास्य-व्यंग्य—जो भी लिखते बहुत अच्छा लिखते।

आज उनके सम्बन्ध में मैं अपने भाव कैसे लिखूं? कितना लिखूं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अच्छा स्वाध्यायी, चिन्तक लेखक होना बहुत बड़ी बात है, फिर वक्ता होना और दुर्लभ है। श्री क्षितीश जी वेदालंकार की पैनी लेखनी न जाने कितने लेखकों के लिए प्रकाश स्तम्भ की तरह पथ प्रदर्शिका बनी है, बनेगी।

ऐसे तपस्वी, मनीषी, साहित्य सेवी के प्रति सहज श्रद्धा से नत मस्तक होते हुए भी यही प्रार्थना है कि —

शुभास्ते पन्थानः सन्तुः

उनका जीवन पथ सदा शुभ हो—उनके लिए भी, औरों के लिए भी।

—8 अलवार पेट, मद्रास

श्री क्षितीश वेदालंकार महाभागानामभिनन्दनम्

यदा धरण्यां परिवर्धते बहुः, अधर्म कर्मप्रसरो दुरत्ययः।
तदा समेषां परमानुकम्पया, दिवो भुवं प्रेरयते जनं प्रभुः ॥1॥

अतः समृद्धं श्रुतिसम्प्रतिष्ठितम्, विशुद्धसिद्धान्तमिमं भुवोऽञ्चले।
ऋषिं दयानन्द सरस्वती यतिं, प्रमोदलोकान् नुनुदे स्वयं हरिः ॥2॥

आस्थापयच्चार्यसमाजनामिकां, संस्थामसौ वैदिकधर्म गुप्तये।
तदीय मार्गे चलितुं सुवृत्तयो, नरा अनेके ह्यभवन् प्रवर्त्तिताः ॥3॥

स्वनामधन्यः खलु तेषु वै नृषु, सदुत्तमश्लोकगुणी सुधीवरः।
स्वदेश-रागेण समुज्ज्वलन्मनाः, स्ववेदमार्गावन-सुव्रतक्षमः ॥4॥

स्वमातृकुक्षेः कृतकृत्यतां शुभां पुनर्विधातुं यशसा सचात्मनः।
एकादशी नाम तिथौ स पुण्यभाक्, त्रिसप्ततौ हायन ऊनविंशके ॥5॥

लेभे जनुश्चाश्विन शुक्लपक्षके, सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतः।
दिल्ल्यां 'क्षितीशः' श्रुतिपारदृश्वनां, वरो वरेण्यप्रतिमः प्रभाववान् ॥6॥

पितुर्हृदः कामनया प्रणोदितः, ज्वालापुरीये पुनरिन्द्रप्रस्थके।
ततः कुरुक्षेत्र सुधन्यनामके, गुरोः कुले साधु प्रवेशमाप्तवान् ॥7॥

अनेहसाऽल्पेन कुशाग्रधीरयं, दिवौकसां वाच्यधिगम्य योग्यताम्।
प्रभाववधार्य समाज "चावड़ी" समुतसवे संस्कृतभाषणं व्यधात् ॥8॥

उपस्थिता सा विदुषां तु मण्डली, निशम्य धाराप्रवहं सुभाषणम्।
प्रशंसयन्ती मुमुदे सुनिर्भरं, क्षितीशवालं प्रतिभाप्रमण्डितम् ॥9॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजामोत्पीडाया विविधबहुपत्रेषु चरितम्,
प्रसिद्धिं सम्प्राप्तं सकल जनता-धर्म सरणिम् ।
विनष्टां कर्तुं वै श्रुतिमतसुपुष्टां सुखकरीं,
निजामीयो मीरः सुचिरकृतसंकल्प उदितः ॥10॥
तदा हिन्दू जाति प्रखर कुविनाशं बहुतरं,
समीक्ष्यार्यव्रातो गृहगृहसमुद्बोधनकरम् ।
प्रदध्मौशंखं स्वं तुमुलतरनादं प्रतिदिशम्,
युवानः संजाता सपदि खलु सन्नद्धकटयः ॥11॥
प्रकृत्या विद्रोही बुधजनगुरुणां प्रकथनं,
समुल्लंध्याधीतिक्रममपि विहायैव सहसा ।
समुत्साही धीरो विकट परिपीडाप्रघटनां,
निजामीयां कारां सपदि परिभोक्तुं कृतमनाः ॥12॥

हैदराबाद कारां वै, यातुं कृतमना व्रती ।
स्नातकीयपरीक्षां स्वां, त्यक्तुं द्रागुद्यतोऽभवत् ॥13॥
कारामभियियासूनां, प्रथम व्रातगामिनाम् ।
जनानां नेतृतां चक्रे, ताराणामिव चन्द्रमाः ॥14॥
कारागार निवासतो ह्यवसरो नालम्भिसम्मेलितुं,
तस्मिंश्चैव परीक्षणे च सततं प्रत्येककक्षासु सः ।
सर्वेषु प्रथमस्थितिं खलु सदा लेभेऽतएव द्रुतम्,
आचार्याः सममानयन् वटुमिमं दत्वाह्युपाधिंमुदा ॥15॥

स्वदेशधमविनदक्षिणसचयं,
युवा क्षितीशो विदुषां वरस्तदा ।
स्व सर्वदेशीय सभोपदेशको,
बभूव धर्मस्य प्रचारणे रतः ॥16॥
सुविधयाऽलंकृतभाजिनीमिमां,
क्षितिं पवित्रां सहधर्मिणीमिव ।
विवाह्य विश्वे खलु सार्थनामिकां,
क्षितीश इत्थं व्यदधत्तु विश्रुतिम् ॥17॥
तदीयमोजस्वि प्रभाषणं तदा,
निजामराज्ये समभूत् कदाचन ।
प्रवेश एतस्य निषेधितो मुहुः,
उपद्रवाशंकित शासनानुगैः ॥18॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा हिमाद्रि प्रभवापगारय:,
पुरश्चिताश्मप्रचयप्रबन्धनैः ।
सहस्रधारा मुखत: स्रवत्यधो,
तिरोहितोऽपि प्रबलप्रवेगवान् ।।19।।
तथास्य सत्क्रान्तिधरा विचारणा,
अदम्यसत्साहसमण्डिता दृढा ।
विभिन्न पत्र प्रमुख प्रलेखना,
सहस्रधाराभिरवाकिरद् भुवि ।।20।।

'अर्जुने' दैनिके पूर्वं, सार्धमिन्द्रेण धीमता ।
'हिन्दुस्ताने' ततः पत्रे, पत्रकारो ह्यभूदयम् ।।21।।
साफल्यं च तथा लेभे, कूटनीतिषु पण्डितः ।
यथाऽभिनिन्ये चाणक्ये, मुद्राराक्षस नाटके ।।22।।

अयं कृति बुद्धिमतां समाजिनां, गन्तव्यमार्ग प्रतिदर्शकोऽभवत् ।
प्रतिष्ठितिं सार्वजनीन कर्मसु, लेभे त्वनन्य प्रतिभाविभूषितः ।।23।।

दिवौकसां वांग्लजनप्रभाषितां, सुवाचमालम्ब्य सभासुभाषणैः,
प्रकाममासाद्य जनेषु विश्रुतिं, प्रलेखनैरार्यजगत्-सुपत्रके ।।24।।

साम्पादकं कार्यमथाद्दवान्नयं, पथप्रदर्शं व्यदधात् धुरिस्थितः ।
स्वमान्यराष्ट्रप्रभुरार्यभाषया, समाललम्बे वुधमानसस्थितिम् ।।25।।

व्यवच्छेत्सीः प्रजातन्तुं, मेतिवेदव्यवस्थया ।
समाजसेवया साकं, गृहस्थं पर्यपालयत् ।।26।।
पवित्रायां क्षितावस्यां, विश्ववारां स्वसंस्कृतिम् ।
विनयेन समापन्नां, शीलेन च समन्विताम् ।।27।।
स्नेहरश्मिप्रभातां ताम्, आदित्यो यथा दिवि ।
वेदालङ्कारसम्भूषः, क्षितीशः पर्यकामयत् ।।28।।

अभूत् कृतार्थो विनयोऽर्चनामिमाम्,
अवाप्य शीलोऽप्यलमञ्जुमालिकाम् ।
सुधन्यभागा अभवन्निमे समे,
पवित्र चरणाम्बुज सेवनेन वाम् ।।29।।

धरां 'पवित्रां' जननीं प्रगे मुदा, सुपादपद्म प्रतिपूजया सदा ।
प्रसादयन्त्यौ विनयेन शीलवत्-स्नुषे तु सौभाग्यफले भविष्यतः ।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिप्रसन्नः श्वसुरः सुरोपमः, बुधः क्षितीशोऽखिलसम्पदां स्वकाम् ।
शुभाशिषा सम्वलितां मनोरमां, प्रियां पवित्रामपि चार्थभिष्यति ।।31।।
शुभाशिषां राशिभिराशु लेभिरे, अतश्चतुर्वर्गफलं त्विमे समे ।
क्षणे क्षणे यत् प्रमुदः प्रवर्धनम्, कुलोज्वलत् कीर्तिकरं दिने दिने ।।32।।

अनिमेषाभिधानंप्राक्, पारिजातं द्वितीयकम् ।
श्रुतकीर्तिं ततो दिव्य-कीर्तिं जज्ञे चतुष्टयम् ।।33।।
पौत्राणां किलकेलिजातकिलकारिप्राप्तमुद्भानुना,
नित्यं मानस पंकजानि विकसेयुर्वः प्रभाते गृहे ।
क्रीडाधूलिमलीमसीन नितरां भूयासुरंगानि वः,
भूयाद् मानसिको मुदः कलकलैर्वः शान्तिभंगोभृशम् ।।34।।

विद्वद्वर क्षितीशस्य, जन्मग्रन्थि समुत्सवे ।
भूयाद् वै निर्मलाशस्तिविशुद्धानन्दा शुभा ।।35।।

रक्षत् त्वां विश्ववारां नयविनयवतीं संस्कृतिं स्नेहशीलाम्,
प्रह्लादाढ्यां पवित्रां सरससुमनसामर्चनामञ्जुमालाम् ।
स्तुत्यामालोकदाभि परिदधमलां वन्द्य वेदव्रतोऽयम्,
वेदालंकार भूतः शुभशतशरदो जीवताय श्री क्षितीशः ।।36।।

दिव्यश्रुत श्रुतिविभूषित कीर्त्तिवल्लीम्,
सत्पारिजरत सुरभि परिपोषयन् यः ।
पश्यन्ति निर्मलधियोऽप्यनिमेषनेत्राः,
यं जीवताच् शतमसौ शरदां क्षितीशः ।।37।।

इति शुभं भूयात् ।

श्रीमदाश्रवः
—विशुद्धानन्दः

सम्मान-समारोह की एक झलक

(विशेष संवाददाता द्वारा)

15 अक्टूबर, 1989

अहमदाबाद मेल प्रातः सवा आठ बजे अजमेर स्टेशन पहुंची। कुछ विशिष्ट अतिथि गाड़ी से उतरे और हाथों में पुष्प मालाएं लिये दस-बारह व्यक्ति वैदिक धर्म की जय, भारत माता की जय और वेदालंकार जी की जय बोलते हुए आगे बढ़े। अन्य यात्री चौकन्ने होकर देखने लगे कि कौनसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक नेता आया है। पर देखा तो कोई सरकारी तामझाम नहीं, सीधे-साधे जनसामान्य से दिखने वाले तीन चार व्यक्ति खड़े हैं और लोग उन्हें पुष्पमालाएं पहना रहे हैं। इन्हीं के बीच में खड़े हैं खद्दर की धोती, खद्दर का कुर्ता और जवाहर जाकेट पहने अपने साथियों से भी अधिक सामान्य एक व्यक्ति। अच्छा ये हैं—क्षितीश वेदालंकार, इनके नाम की चर्चा और फोटो तो कभी समाचार पत्र में नहीं देखी। अरे होंगे कोई, न जाने कितने ऐसे ही आते जाते रहते हैं। सब यात्री अपने-अपने रास्ते ! और यह छोटी सी मण्डली अपने स्वागतकर्त्ताओं से घिरी स्टेशन के बाहर।

बाहर दो जीपें खड़ी थीं। सामान्य होते हुए भी असामान्य स्वागत पाकर अतिथिगण सरकारी गेस्ट हाउस पहुंचे। सरकारी गेस्ट हाउस क्यों ? भई ये पत्रकार हैं, सरकारी व्यक्ति न होते हुए भी सरकार तक इनका आदर करती है, क्योंकि कभी कभी ये सरकार को भी नाकों चने चबवा देते हैं। इसलिए राजस्थान के सरकारी सूचना निदेशक और जन-सम्पर्क अधिकारी भी, इनके आतिथ्य में पीछे नहीं रहना चाहते।

सरकारी सूचना केन्द्र के सभागार में ही सम्मान समारोह साढ़े दस बजे आरम्भ हुआ। प्रथम मंगलाचरण और उसके बाद दयानन्द आर्य बालिका महाविद्यालय, ब्यावर की छात्राओं द्वारा संस्कृत में लय-तालबद्ध मधुर स्वागत-गीतिका। राजस्थान के युवा और प्रतिभाशाली पत्रकार श्री अनिल लोढ़ा ने समारोह का संचालन करते हुए विभिन्न संस्थाओं और विशिष्ट व्यक्तियों को वेदालंकार जी तथा अन्य विशिष्ट अतिथियों के माल्यार्पण द्वारा स्वागत के लिए आमंत्रित किया। वेदालंकार जी जब पुष्पमालाओं से गले तक लद गए, तो सबको करबद्ध नमस्कार निवेदन करते हुए मालाओं को सामने की मेज पर रख शान्त-स्थिर भाव से बैठ गए।

राजस्थान के जाने-माने पत्रकार, दैनिक नवज्योति के समाचार सम्पादक, अजमेर स्वतंत्रता सेनानी संघ के मंत्री और जिला पत्रकार संघ के पूर्व अध्यक्ष श्री मोहनराज भंडारी ने स्वागताध्यक्ष के रूप में स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व की मिशनरी पत्रकारिता तथा नैतिक मूल्यों के संदर्भ में आधुनिक पत्रकारिता के गिरते स्तर की चर्चा की और श्री क्षितीश वेदालंकार को आदर्शों का पालन करने वाली पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधि बताया। उन्होंने सभी समागत पत्रकार बन्धुओं का, विशिष्ट अतिथियों का और सभा में उपस्थित अन्य श्रोतृवर्ग का शब्द पुष्पों से स्वागत किया।

उसके बाद आर्यसमाज केसरगंज, अजमेर के मंत्री, डी.ए.वी. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य और 1989 के नवम्बर में हुए चुनावों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वाचित संसदसदस्य श्री रासासिंह, 'परोपकारी' मासिक के सम्पादक श्री धर्मवीर एम. ए., डी. ए. वी. कालेज में दयानन्द पीठ के अध्यक्ष विद्वद्वर्य डा. बाबूराम शास्त्री और दिल्ली से गए 'अमेरिकन रिपोर्टर' (हिन्दी) के पूर्व सम्पादक तथा गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के पूर्व मुख्याधिष्ठाता श्री श्री वीरेन्द्रसिंह पंवार ने अपने विचार प्रकट किए। किसी ने क्षितीश जी के स्वतंत्रता सेनानी रूप की, किसी ने उनके साहित्यकार रूप की, किसी ने उनके पत्रकार रूप की, किसी ने उनके ओजस्वी वक्ता रूप की, किसी ने उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा की और किसी ने उनकी विद्वत्ता की चर्चा की।

लेखनी का धनी प्रायः वक्ता नहीं होता, वक्ता प्रायः लेखक नहीं होता। कोई लेखक और वक्ता दोनों होकर भी राष्ट्र-चिन्तक नहीं होता। राष्ट्र-चिन्तक होकर भी कोई संस्कृतनिष्ठ और संस्कृतिक-निष्ठ नहीं होता। ये सब गुण होने पर भी कोई जीवन में सरल-सादा जीवन और उच्च विचार का अनुगामी नहीं होता। वेदालंकार जी में इन सब गुणों का एक साथ समावेश हो जाने से मणि-कांचन सहयोग का उदाहरण तो है ही, सोने में सुगन्ध का भी परिचायक है।—यह सार था इन वक्ताओं के विचारों का।

दिल्ली में संस्कृत के वरिष्ठ प्रवक्ता डा. वेदव्रत आलोक ने वेदालंकार जी के अभिनन्दन में कविता पढ़ी और उसे सुन्दर तथा कलापूर्ण रूप से जड़वा कर उन्हें सादर भेंट की।

तदनन्तर समारोह के अध्यक्ष, हिन्दी और अंग्रेजी में कुल मिलाकर लगभग सौ पुस्तकों के प्रणेता, कवि, पत्रकार, पुरातत्वज्ञ, भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के निदेशक डा. श्यामसिंह 'शशि' ने वेदालंकार जी को शाल ओढ़ा कर सम्मानित किया, श्री पंवार ने अंगवस्त्र ओढ़ाया, श्री सुभाष विद्यालंकार एडवोकेट ने, जो दिल्ली प्रशासन के पूर्व सूचना निदेशक रह चुके हैं, उन्हें श्रीफल भेंट किया और 'नया युगपुरुष' के संचालक श्री नवीन शर्मा ने स्मृति चिन्ह के रूप में राजस्थान की एक कलाकृति मेज घड़ी भेंट की। (यह अभिनन्दन समारोह 'नया युगपुरुष' की ओर से ही आयोजित किया गया था।)

'हिन्दुस्तान' दैनिक (दिल्ली) के समाचार-सम्पादक, विदेशों में तथा भारत में भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में अनेक खोजपूर्ण ग्रन्थों के प्रणेता, प्रगतिशील विचारों के प्रखर पुरस्कर्ता डा. विश्वमित्र उपाध्याय ने 'राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा' (श्री क्षितीश वेदालंकार का व्यक्तित्व और कृतित्व) नामक इसी अवसर पर प्रकाशित ग्रन्थ का विमोचन करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षितीश जी को समर्पित किया। वेदालंकार जी ने मंच पर उपस्थित विशिष्ट अतिथियों को अपने हस्ताक्षर करके एक एक पुस्तक सस्नेह भेंट की।

डा. उपाध्याय ने आजादी से पूर्व की पत्रकारिता का इतिहास बताते हुए राष्ट्र के लिए बड़े से बड़े बलिदान के निमित्त सदा तैयार रहने वाले राष्ट्र चेतनाओं का जब ओज पूर्ण भाषा में वर्णन किया तो श्रोता रोमांचित हो उठे। फिर जब उन्होंने बड़े दुःख भरे शब्दों में आज की व्यावसायिकता प्रधान, चाटुकारिता-प्रधान और चरित्र हनन प्रधान पत्रकारिता का उल्लेख किया तो दोनों स्थितियों के विपरीत ध्रुव साकार हो उठे। उन्होंने कहा कि जिनके पूर्वजों ने शोषण-मुक्त समाज का स्वप्न लिया था आज उन्हीं के वंशज भ्रष्टाचार में अपना सानी नहीं रखते।

उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि क्षितीश जी मेरे पत्रकारिता के गुरु हैं, हमने उनसे स्वाभिमान-पूर्वक, अपने सिद्धान्तों पर अड़िग रहते हुए काम करना सीखा है। क्षितीश जी ने अपने उदाहरण से अपने साथियों को सदा निस्वार्थ भाव से निज कर्तव्य पालन की प्रेरणा दी है। यही कारण है कि 'हिन्दुस्तान' से कार्य-निवृत्त होने के पश्चात् भी हमारे जैसे उनके साथी उन्हें अत्यन्त कृतज्ञ भाव से उन्हें याद करते हैं। उन्होंने राष्ट्र और हिन्दी भाषा की जो सेवा की है और दफ्तरी छल-छन्द से दूर रह कर जन हित का आदर्श उपस्थित किया है, उसके प्रति हम सब विनयावनत हैं।

श्री सुभाष विद्यालंकार ने अपने संक्षिप्त भाषण में इतना ही कहा कि राष्ट्र को आगे सही दिशा में चलाना है, तो हमें सच्चरित्र और राष्ट्र के लिए बलिदानी भावना रखने वाले पूज्य नायकों का सम्मान करना होगा और अपूज्यों की अवहेलना करनी होगी।

श्री क्षितीश वेदालंकार ने अपने अभिनन्दन के उत्तर में राजस्थान की वीरप्रसविनी बलिदानी भूमि को और क्रान्तिकारियों की गढ़ी, राजधानी न होते हुए भी संस्कारधानी अजमेर नगरी को प्रणाम करते हुए कहा कि
...पबने आज जिन गुणों का बखान करते हुए मेरा इतना हार्दिक
...िया है, उससे मैं निश्चित ही अभिभूत हूं। पर उसमें आपकी
...गुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्' की महानता ही अधिक
...किंचन व्यक्ति के छोटे से कृतित्व को भी इतना
...जैसा ही स्नेह है जो बुजुर्गों के हृदय में अपने
...र उमड़ पड़ता है। प्रभु ऐसी कृपा करें
...र मुझमें सदा बनी रहे।

आप
अभिनन्दन।
उदारता और 'पर
...होती है — कि एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा कि आपने मेरा अभिनन्दन नहीं किया, प्रत्युत उन आदर्शों का किया है जिन्हे आप फलीभूत देखना चाहते हैं और जो आपको प्रिय हैं। सच तो यह है कि मुझे भी वे ही आदर्श प्रिय हैं और मैंने उन पर यथाशक्ति चलने का प्रयत्न किया है और उसका आधुनिक दृष्टि से पर्याप्त दण्ड भी भोगा है। आदर्श का कष्टकाकीर्ण मार्ग चलने वालों को कांटों का डर तो मन से निकाल कर ही चलना होता है, अन्यथा मार्ग छोड़ना पड़ता है। ऐसे लोगों से पथ भरा पड़ा है जो बड़े उत्साह से आगे बढ़े थे, पर जब कांटे चुभने से पांव लहूलुहान हो गए, तो वापस लौट गए। पर वे देखो— मंजिल तक जितने मीलों के निशान बने हैं वे उन्हीं के पद चिन्हों के स्मारक हैं जो पांव लहूलुहान होने पर भी रुके नहीं, पीछे नहीं लौटे और लगातार आगे बढ़ते गए। यदि वे अदम्य साहसी यह साहस नहीं दिखाते तो आज मंजिल तक जाने की दिशा कैसे पता लगती।

उन्होंने कहा कि पत्रकार का आराध्य राजा या सरकार नहीं, न ही वह पूंजीपति है जो अखबार का मालिक है, बल्कि उसका आराध्य वह जनता-जनार्दन है जो बेजुबान है, जो शोषित और पीड़ित है, जो दलित और उपेक्षित है। राजा के द्वारा भी, समाज के द्वारा भी। पत्रकार उन्हीं गूंगों की वाणी बनता है और ऊंचे पदों पर पसरे सत्तासीन बहरे कानों तक और मदहोश आंखों तक उनकी आवाज पहुंचाता है। यह काम खतरे से खाली नहीं है, पर ऐसा कौनसा भला काम है, जो खतरे से खाली हो। अपनी जान पर खेल कर भी पत्रकार तथ्यों की तह तक पहुंचता है और उसे जग-जाहिर करता है। इसे कुछ लोग पत्रकारों की आवारगी कह सकते हैं पर तथ्यों की गहराई तक पहुंचने के लिए यह आवारगी जरूरी है। उसे ऐसे स्थानों पर भी जाना पड़ सकता है जहां कदम रखना भले आदमियों को बदनाम करने के लिए काफी होता है और युद्ध के उन मोर्चों पर भी, जहां प्रतिक्षण मृत्यु सिर पर नाचती है।

अपने जीवन के कुछ रोचक प्रसंगों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि पत्रकार का इससे बड़ा पुरस्कार भी और कुछ नहीं है कि पाठक उसके विचारों से प्रभावित हों, उन विचारों को अपने लिए हितकारी समझें और उन विचार से प्रेरणा ग्रहण कर के मन में सत्य के लिए आग्रह और असत्य के अस्वीकार की उमंग उनमें पैदा हो।

श्रोताओं से खचाखच भरे सभागार में अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा. शशि ने श्री क्षितीश वेदालंकार को अपना 'अग्रज भ्राता' सम्बोधित करते हुए कहा कि इनके अन्य गुणों के अलावा इनका यायावरी का गुण भी है, जिसने मुझे बहुत आकर्षित किया है, क्योंकि मैंने भी अपने जीवन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत यायावरी की है—खास कर आदिवासी, भारत की वन्य-जातियां और यूरोप के जिप्सी (रोमनी—जो मूलतः भारत से ही जाकर यूरोप के अनेक देशों में बसे बिखरे हैं और जिनके काले बाल और काली आँखें उनकी विशेष पहचान बने हुए हैं) मेरे अध्ययन का प्रिय विषय रहे हैं।

उन्होंने कहा कि आधुनिक युग में जितना नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है, इतना इससे पहले कभी नहीं हुआ। परन्तु इस अवमूल्यन में कोई एक वर्ग नहीं, हम सब ही भागीदार हैं। इसलिए हमें जहां अपने आपको नैतिक दृष्टि से ऊंचा उठाना होगा, वहां विश्वमानव को भी सही दिशा देनी होगी। जिस भारत को अन्य देशों के लिए नैतिक मूल्यों के परिपालन का उदाहरण उपस्थित करना था, यदि वह स्वयं गढ्ढे में गिरेगा, तो अन्य देश कहां जाएंगे? इसलिए पहले हमें अपने आपको, फिर समाज के हरेक वर्ग को, फिर राष्ट्र को और अन्त में संसार को उस दिशा में चलने की प्रेरणा देनी होगी, तभी हम 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के वैदिक आदर्श को पूरा कर सकेंगे।

अन्त में 'नया युगपुरुष' के सम्पादक श्री वीरेन्द्र कुमार आर्य ने सबको सहयोग के लिए धन्यवाद दिया। वे धन्यवाद दे ही रहे थे कि श्री सुभाष विद्यालंकार ने बीच में ही खड़े होकर श्री वीरेन्द्र कुमार आर्य को माल्यार्पण करते हुए कहा कि यही उत्साही नवयुवक इस समस्त समारोह का सूत्रधार रहा है और इसी के प्रयत्न से यह समारोह इतने अनुकरणीय ढंग से सम्पन्न हो सका है, इसी युवक के प्रयत्न से 'राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा' जैसा सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ इतने स्वल्प समय में तैयार हो सका है।

फिर श्री विद्यालंकार ने समस्त कार्यक्रम के कुशल संचालन के लिए प्रतिभाशाली कवि और पत्रकार श्री अनिल लोढ़ा को भी धन्यवाद दिया। श्री लोढ़ा ने उन महानुभावों से क्षमा-याचना की जो इस समारोह में दो शब्द बोलने को अत्यन्त उत्सुक थे, पर समय के अभाव से उन्हें अवसर नहीं दिया जा सका। ऐसे लोगों में स्थानीय और बाहर से आए कई विशिष्ट व्यक्ति भी थे।

समारोह में उपस्थित सभी लोगों के लिए भोजन की और जल-पान की समुचित व्यवस्था थी। समारोह में शामिल होने के लिए दिल्ली, जयपुर और ब्यावर तक से लोग आए थे।

अधिकांश श्रोता यही कहते हुए विदा हुए कि स्वागत तो बहुत देखे, पर किसी पत्रकार का ऐसा हार्दिक स्वागत अभी तक नहीं देखा। सभी ने कार्यक्रम के प्रत्येक अंग की सुचारू व्यवस्था को भी सराहा। इस समारोह को लोग चिरकाल तक याद रखेंगे।

पूरे कार्यक्रम की तीन घण्टे की, वीडियो फिल्म भी तैयार की गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षितीश वेदालंकार सम्मान-समारोह

राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा श्री क्षितीश जी वेदालंकार को शाल ओढ़ाकर सम्मानित करते हुए डॉ. श्यामसिंह शशि। पास ही बैठे हैं डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय।

'राष्ट्रीय पत्रकारिता के पुरोधा' नामक पुस्तक का विमोचन करते हुए डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय। पास में खड़े हैं: क्षितीश जी, डॉ. शशि व श्री सुभाष विद्यालंकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled 1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Acc. no.
Class no.
Cat. no.
Tag etc.
Checked
Any Other

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री क्षितीश वेदालंकार अभिनन्दन ग्रंथ

यह अभिनन्दन ग्रन्थ श्री क्षितीश वेदालंकार के बहुआयामी व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय है। वे उस युग के पत्रकार हैं जब पत्रकारिता एक 'कैरियर' नहीं, राष्ट्र-सेवा का माध्यम थी। वे लेखनी के ही नहीं वाणी के भी धनी हैं। वे लेखक अच्छे हैं या वक्ता, यह निर्णय करना कठिन है।

भारतीय संस्कृति में रचे-बसे होकर भी वे परम्परावादी नहीं हैं। उनका चिन्तन सर्वदा राष्ट्रपरक रहता है— प्रगतिशील विचारधारा के साथ समन्वय का साधक भी। यथा-स्थितिवादी न होकर वे सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति के पक्षधर हैं — पर वैचारिक क्रान्ति के माध्यम से, हिंसा से नहीं।

स्वभाव से मृदु, शान्त-शीतल, पर अन्दर से नितान्त विद्रोही। छल-कपट की दुनिया से दूर। सादा और संयमित जीवन। देश-विदेश और हिमालय के परिभ्रमण में रुचि। वैदिक वाङ्मय के पाण्डित्य ने उनकी पत्रकारिता और वक्तृता दोनों को एक विरली धार दी है। सुविधा-भोगी राजपथ के बजाय कंटकाकीर्ण जनपथ के इस राही का केवल एक व्यसन है, विद्याव्यसन। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' के अभ्यासी होने के कारण फल के प्रति सदा अनासक्त। ७४वें वर्ष में प्रविष्ट होने पर भी निरन्तर कर्मशील।

ऐसा व्यक्तित्व किसके लिए प्रेरणा-प्रद नहीं होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar